Dhingra Family Foundation
USA

विभोम स्वर

RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814
वर्ष : 6, अंक : 22
जुलाई-सितम्बर 2021
मूल्य 50 रुपये

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

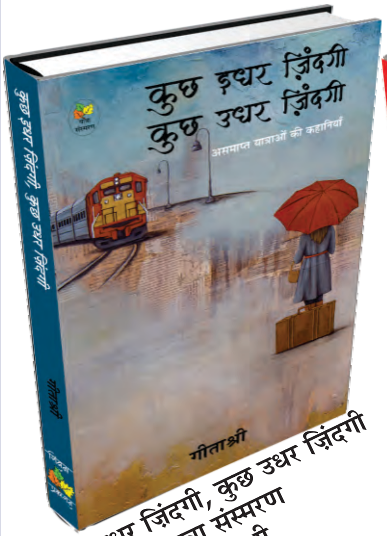

कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी
यात्रा संस्मरण
गीताश्री

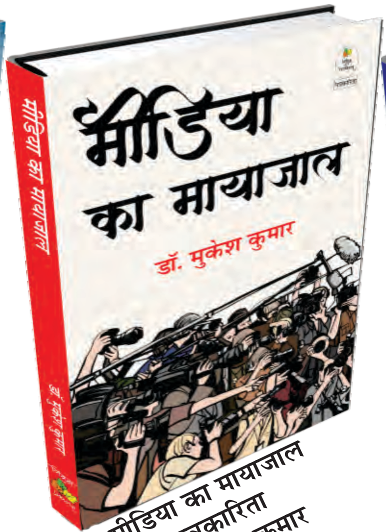

मीडिया का मायाजाल
पत्रकारिता
डॉ. मुकेश कुमार

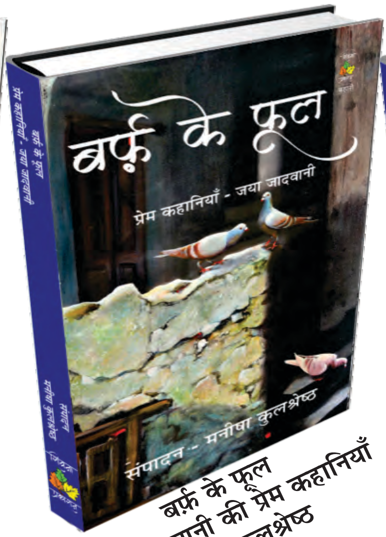

बर्फ़ के फूल
जया जादवानी की प्रेम कहानियाँ
मनीषा कुलश्रेष्ठ

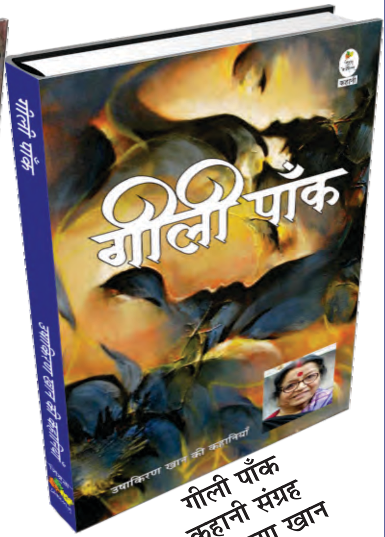

गीली पाँक
कहानी संग्रह
उषाकिरण खान

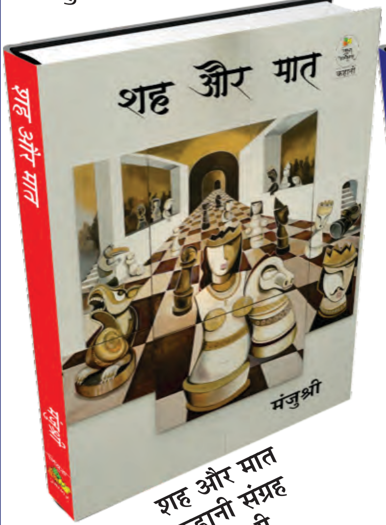

शह और मात
कहानी संग्रह
मंजुश्री

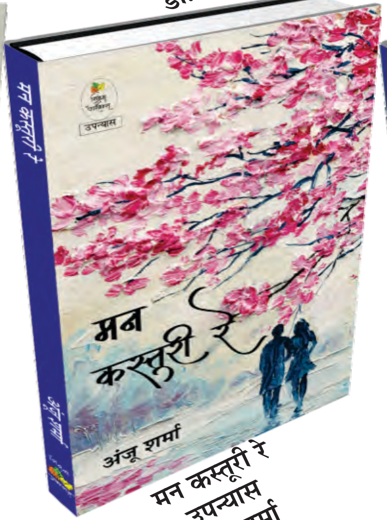

मन कस्तूरी रे
उपन्यास
अंजू शर्मा

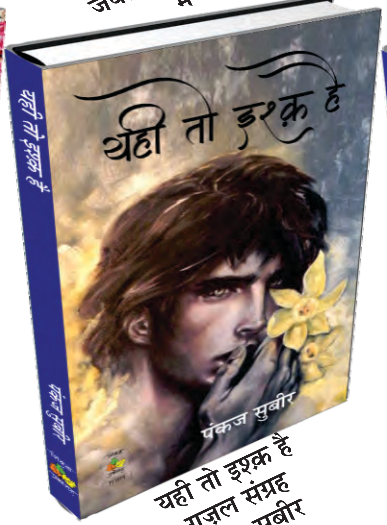

यही तो इश्क़ है
ग़ज़ल संग्रह
पंकज सुबीर

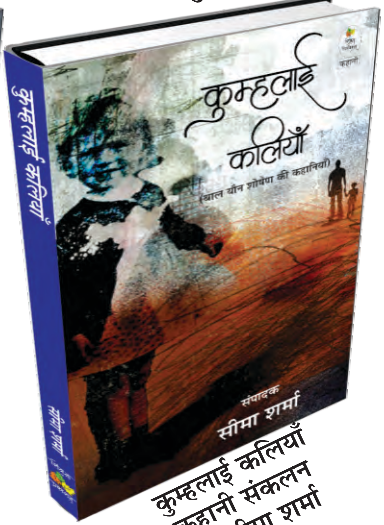

कुम्हलाई कलियाँ
कहानी संकलन
डॉ. सीमा शर्मा

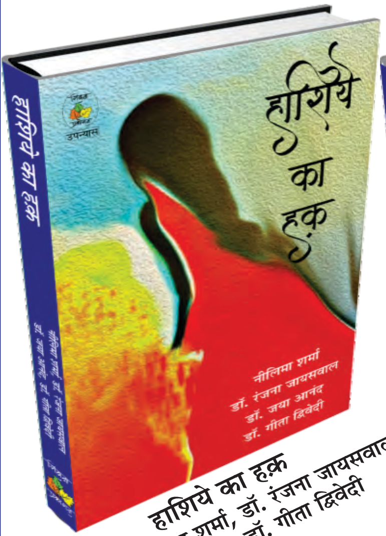

हाशिये का हक़
उपन्यास- नीलिमा शर्मा, डॉ. रंजना जायसवाल,
डॉ. जया आनंद, डॉ. गीता द्विवेदी

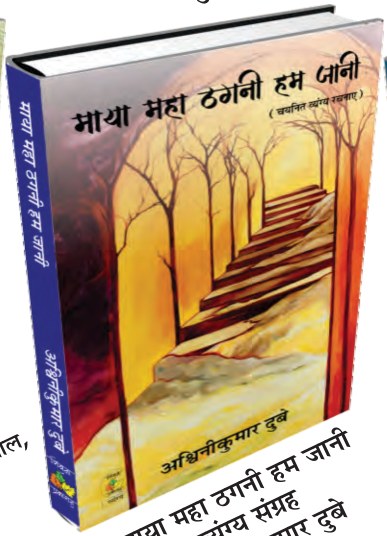

माया महा ठगनी हम जानी
व्यंग्य संग्रह
अश्विनी कुमार दुबे

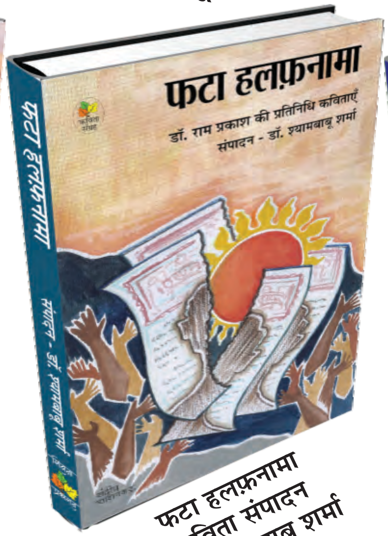

फटा हलफ़नामा
कविता संपादन
डॉ. श्याम बाबू शर्मा

द= देह, दरद और दिल
कहानी संग्रह
विभा रानी

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं
प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 22, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2021
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

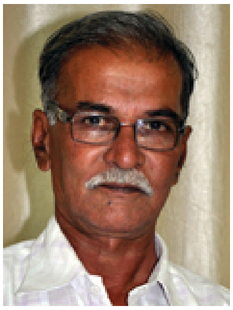

आवरण चित्र
राजेन्द्र शर्मा

रेखाचित्र
मार्टिन जॉन

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 22,

त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2021

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

विस्मृति के द्वार

शिब्बन लाल की बहन, रोती नहीं

उषा प्रियम्वदा 6

कथा कहानी

जूठा सेब

प्रज्ञा पाण्डेय 12

उसकी मौत

विकेश निझावन 17

अँधेरों के बीच

अरुणा सब्बरवाल 20

कौन सुने ?

कादम्बरी मेहरा 26

मिशन - एन.पी.ए.

डॉ. रमेश यादव 30

सेहरे का सगुन

कामेश्वर 34

स्वाभिमान

सेवक नैयर 39

देवता

अरुण अर्णव खरे 45

सन्नाटा

छाया श्रीवास्तव 48

भाषांतर

यथार्थ के क्रूर चक्र (मलयालम कहानी)

लेखिका - कमला दास

अनुवादक - अनामिका अनु 52

शंख घोष की कविताएँ

अनुवादक - रोहित प्रसाद पथिक 85

व्यंग्य

लोकार्पण

श्रीकांत आप्टे 54

संस्मरण

हम भी कमीने, तुम भी कमीने

ज़ेबा अल्वी 56

रामरतन अवस्थी जी मेरे पहले साहित्यिक गुरु

वीरेन्द्र जैन 64

यादों के झरोखे से

रेडियो का देशी इलाज करते पिता

गोविन्द सेन 66

जन्माष्टमी

शोभा रस्तोगी 69

समाचार

विष्णु प्रभाकर राष्ट्रीय प्रोत्साहन सम्मान 68

पहली कहानी

आख़िरी ख़त

अदिति सिंह भदौरिया 72

लघुकथा

खेती

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज 74

लिप्यांतरण

ग़ालिब अंड गोएटे

मूल रचना – हाजी लक़ लक़

अनुवाद – अख़तर अली 75

कविताएँ

खेमकरण 'सोमन' 77

एकता कानूनगो बक्षी 78

प्रकाश मनु 79

प्रतिभा चौहान 80

चंचला प्रियदर्शिनी 82

दीपक शर्मा 'दीप' 83

ग़ज़ल

दौलतराम प्रजापति 85

धर्मेन्द्र गुप्त 86

सुभाष पाठक 'ज़िया' 87

आख़िरी पन्ना 88

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :

1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is “Zero”)

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांसफ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

जीवन जीने की एक भिन्न शैली सामने आने वाली है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

अदृश्य शत्रु कोविड-19 से जूझते हुए, आर्थिक संकट का सामना करते हुए, अमेरिका तेज़ी से इन चुनौतियों और आपत्तियों से उभर आया है। अब हालत यह है कि नौ मिलियन नौकरियाँ उपलब्ध हैं, और उम्मीदवार नहीं मिल रहे। ये नौकरियाँ सरकार ने नहीं निकालीं। यह सब ग़ैर-सरकारी क्षेत्र की देन है। सरकार इतनी नौकरियाँ निकाल भी नहीं सकती। हर काम ऑन लाइन होने से सरकारी क्षेत्रों में नौकरियाँ कम हो गई हैं।

अमेरिका सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। इसे पूँजीवादी कह कर भड़ास निकाली जा सकती है, पर इसकी कार्य-प्रणाली उदाहरण है, विचारणीय है।

यहाँ प्राइवेट कंपनियों और निजी क्षेत्रों को बढ़ावा दिया जाता है ताकि देश को सुचारू रूप से चलाया जा सके।

साठ साल पहले नासा ने अंतरिक्ष में उड़ान भरी थी। 11 जुलाई 2021 में एक उद्योगपति रिचर्ड ब्रेनसन ने सत्रह वर्ष के परिश्रम के बाद अंतरिक्ष पर्यटन की शुरूआत की है। पहली उड़ान में एक भारतीय महिला इंजीनियर श्रीशा भी थी। छह सौ पचास लोगों ने अंतरिक्ष में जाने के लिए अग्रिम बुकिंग भी करवा ली है। सामान्य जीवन जीने का प्रयत्न किया जा रहा है...

कोविड-19 की पहली लहर के दौरान पूरा विश्व यही समझता था, कि इसके समाप्त होते ही जन जीवन फिर से सामान्य हो जाएगा। सामान्य तो हो रहा है, लेकिन अलग तरीके से। पहली लहर के नुक़सान के बाद दूसरी लहर जो क्षति पहुँचा रही है, विश्व अभी उसका सामना कर रहा है, तीसरी लहर का डर बना हुआ है। ऐसे में कोविड से पहले जैसी स्थिति होनी संभव नहीं है। जान-माल की जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति तो कभी संभव ही नहीं।

यह माना जा रहा है, कोविड वायरस हर साल फ़्लू की तरह प्रकट होगा। जहाँ अधिकतर लोगों ने वैक्सीन लगवा ली होगी, वहाँ इसे मैनेज करना आसान होगा।

संपादकीय

हाँ, लोगों ने अब इस शत्रु के साथ जीना सीख लिया है, पर इसका स्वरूप पहले से बहुत अलग होगा। हर क्षेत्र में आकस्मिक परिवर्तन आए हैं, जिनसे सामंजस्य स्थापित करने में समय लग रहा है।

तकनीकी और बड़ी-छोटी जिन कंपनियों ने अमेरिका में अपने कर्मचारियों को घर से यानी ऑनलाइन कंप्यूटर पर काम करने का विकल्प दे कर प्रेरित किया है, वे कर्मचारी महँगे शहरों में रहने की बजाए अब गाँव, छोटे शहरों या कस्बों की ओर मुड़ रहे हैं। जहाँ रहन-सहन सस्ता है और वातावरण स्वच्छ। प्राकृतिक स्थानों में लोग स्थानांतरित हो रहे हैं।

कभी-कभार मीटिंग के लिए हवाई यात्रा कर लिया करेंगे। पर काम घर से हो रहे हैं, इसलिए यात्राएँ कम हो गई हैं।

स्कूलों और कॉलेजों की शिक्षा में भी बहुत अंतर आ गया है। ऑनलाइन शिक्षा दिए जाने से स्कूल और कॉलेज शुरू होने के बावजूद भी कुछ विषय ऑनलाइन पढ़ाए जाएँगे।

लम्बे लॉकडाउन में कई विश्वविद्यालयों ने अलग-अलग क्षेत्रों में ऑनलाइन कोर्सेज़, ऑनलाइन डिग्री के लिए दाखिला देकर पढ़ाना शुरू कर दिया था; क्योंकि वे समझ गए हैं कि कोरोना जैसे अदृश्य शत्रु अब पैदा होते रहेंगे और जीवन पहले जैसा कभी भी नहीं हो पाएगा। ऑनलाइन शिक्षा का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। घर बैठे कई महिला-पुरुषों ने ऑनलाइन व्यावसायिक प्रशिक्षण लेकर अपने काम शुरू कर दिए हैं। अनगिनत घरेलू महिलाओं ने इस समय का सदुपयोग किया है, और अपने छोटे-छोटे धंधे शुरू कर लिए हैं; जिनकी बिक्री ऑनलाइन ही होती है।

बच्चों के स्कूल और अब कॉलेज खुलने के बाद ही पता चलेगा कि लोगों का जीवन किस दिशा की ओर मुड़ता है; क्योंकि पूरी सावधानियाँ बरती जाएँगी, पूरे प्रोटोकॉल फॉलो किए जाएँगे पर अभी भी कोरोना का डर तो है, देखते हैं ऊँट किस करवट बदलता है...जिन लोगों ने वैक्सीन नहीं ली, वे यहाँ डेल्टा स्ट्रेन के शिकार हो रहे हैं। मृत्यु दर के आँकड़े बढ़ रहे हैं।

जीवन जीने की एक भिन्न शैली सामने आने वाली है। तकनीक और ऑनलाइन सर्विसेज़ जीवन में एक अप्रत्याशित परिवर्तन लाने वाली है। खेती-बाड़ी और कृषिकर्म ड्रोन से संपन्न करवाए जाएँगे। पर्यावरण में घनघोर परिवर्तन आएगा, क्योंकि आवाजाही कम हो जाएगी।

बैटरी से चलने वाली कारें और स्वचालित कारों को बनाने की होड़ लगी हुई है, ताकि पर्यावरण की रक्षा की जा सके। पर्यावरण के बारे में नहीं सोचा जाएगा तो प्रकृति बार-बार सबक सिखाएगी।

कोरोना ने एक बात स्पष्ट कर दी है, विश्व के हर व्यक्ति को तरह-तरह की चुनौतियों के लिए तैयार रहना पड़ेगा। भविष्य में कोरोना जैसे कई शत्रु आक्रमण कर सकते हैं। अगर देश और जनता तैयार नहीं होंगे तो इससे भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी परिवार की ओर से साहित्यकार रमेश उपाध्याय, नरेंद्र कोहली, रामरतन अवस्थी, मुशर्रफ़ आलम जौक़ी, ज़हीर कुरैशी, शंख घोष, मंज़ूर एहतेशाम, श्याम मुंशी, महेंद्र गगन, कुँवर बेचैन, प्रभु जोशी, चंडीदत्त शुक्ल, युगेश शर्मा, दिवाकर भट्ट, राजेश झरपुरे, राजकुमार केसरवानी को भावभीनी श्रद्धांजलि!!

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

बच्चों के अंदर की निश्छलता के कारण ही जानवर उनके बहुत जल्दी मित्र बन जाते हैं। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं, वैसे-वैसे यह निश्छलता हमारे अंदर से समाप्त होती जाती है। मासूमियत को भी प्रकृति पहचानती है और क्रूरता को भी। प्रकृति के पास बने रहने के लिए आवश्यक है अंदर से बच्चा बने रहना।

मित्रनामा

जून की धूप में शीतल हवा

'विभोम-स्वर' जून की धूप में शीतल हवा है जो मुझ मानुष मन को बहुत सकून प्रदान करती है। कभी लगता है कि आप पेड़ों की भाँति चुपके-चुपके अपना कार्य कर रहे हैं या नदी बन, बहते हुए अपने मुकाम पर पहुँचने-पहुँचाने की तैयारी में हैं। आपकी सबसे अच्छी बात यह है कि आप नए लेखकों को छापते बहुत हैं। इस मानसिकता की पत्रिकाएँ बहुत कम होती हैं। बहरहाल... जनवरी-मार्च 2021 अंक मिला। एक साथ बहुत कहानियाँ और नए लेखकों को पढ़ने का अवसर पा रहा हूँ। स्वस्थ जीवन की शुभकामनाएँ और लाख-लाख दुआओं के साथ।

-खेमकरण 'सोमन', द्वारा बुलकी साहनी, प्रथम कुँज, अम्बिका विहार, भूरारानी, वार्ड-3 2 , रूद्रपुर, जिला- ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड-263153,

मोबाइल: 09045022156

000

दिलकश संस्मरण

अफ़रोज़ ताज का 'चश्मे की खोज' लेख पढ़ा। दिल बाग-बाग हो गया। बेहद खूबसूरत अंदाज़े-बयाँ। चश्मा छीनकर अम्मी गायब हो गई, वे किताबें पढ़कर नहीं दुनियावालों को देखकर लिखते थे, इस बंदे ने दो शब्दों के अर्थ ही बदल डाले। पहला 'बकवास' और दूसरा 'समझदार', पन्नों पर चूरन रखकर खा चुके होंगे। सबसे आख़िर में किताब का मिलना।

ऐसा दिलकश संस्मरण कम ही देखने में आता है। मुबारकबाद!

-श्रीकांत आप्टे, जी-1/81, गुलमोहर कालोनी, भोपाल, 462039

000

बहुत पठनीय संस्मरण

अफ़रोज़ ताज का लिखा संस्मरण 'चश्मे की खोज' विभोम-स्वर पत्रिका में आज ही पढ़ा। आपने चश्मे के बहाने अपनी अम्मी को तो अंतरमन से याद किया ही लेकिन चश्मे के कितने, कैसे-कैसे प्रयोग होते हैं, आलेख के बहाने उनका भी रोचक अनुसंधान आपने प्रस्तुत किया है। आपके लेखन में हास्य व्यंग्य का भी अच्छा खासा पुट है जो इसे बहुत पठनीय बनाता है।

लिखते समय आपने अम्मी को अपनी यादों में कुछ ऐसे ज़िंदा किया, जैसे चश्मा किताब नहीं, आपको आपकी अम्मी ही मिल गई। सच कहूँ तो आपके इस भाषाई प्रयोग ने माँ को याद करते हुए मेरी आँखों से भी आँसुओं की कुछ बूँदें निकाली, कुछ धाराएँ बहाईं।

-रतिभान त्रिपाठी, लखनऊ

7905252032/9415225285

000

अगले अंक का इंतज़ार

यह तो जानती थी कि उषा प्रियम्वदा अमेरिका में ही कहीं रहती हैं, पर उन्हें ढूँढ़ने की कोशिश नहीं की, हालाँकि उनके लेखन की प्रशंसक हूँ। पचपन खम्भे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, अंतर्वंशी उपन्यास और वापिसी कहानी कौन भूल सकता है। विभोम-स्वर का अप्रैल-जून 2021 अंक खोला और खोलते ही संपादकीय के बाद अपनी प्रिय लेखिका को देख कर हैरान रह गई। विस्मृतियों के द्वार पढ़ कर उषा जी के बारे में बहुत कुछ जानने को मिला। अंत में जब क्रमश:(अगले अंक में जारी रहेगा) पढ़ा, तो दिल बल्लियों उछला। अब अगले अंक का इंतज़ार है....

-सरोज श्रीवास्तव, 1105 Sunset Hits, Columbus, Ohio 43202

000

उषा प्रियम्वदा का संस्मरण बोनस

विभोम-स्वर का अप्रैल-जून 2021 अंक मिला। कहानियाँ एक से बढ़कर एक। उषा प्रियम्वदा का संस्मरण ऐसा बोनस निकला, जिसकी उम्मीद शायद किसी पाठक को नहीं थी। इसकी पहले से कोई पब्लिसिटी भी नहीं की गई थी। नई पीढ़ी जो पुराने लेखकों को भूलती जा रही है, ऐसे सिलसिले से उन्हें नए लेखकों के साथ पुराने लेखकों का भी पता रहेगा। अगले अंक की प्रतीक्षा है...

-प्रतीक्षा माथुर, विकासपुरी, दिल्ली

000

'आख़िरी पन्ना' पढ़ कर दिल ख़ुश

महोदय,

'विभोम-स्वर' का अप्रैल-जून २१ अंक मिला। आपका 'आख़िरी पन्ना' पढ़ कर दिल ख़ुश हुआ। आभारी हूँ कि आपने मेरे ही नहीं, मेरे जैसे अनेक लेखकों के मन की बात कह दी। धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका आदि पत्रिकाएँ बंद हुईं, समाचार पत्रों ने भी साहित्य से जी चुराना शुरू कर दिया। अब तो कादम्बिनी और नया ज्ञानोदय भी बंद हो गए। प्रिंट मीडिया ने तो साहित्य को लंगड़ा घोड़ा समझ ताँगों में जुतने को छोड़ दिया। कभी साहित्यकार, संपादक बनते थे, अब एम.बी.ए. मैनेजर या पत्रकार। आपने सही कहा- "यही तो मैं पूछ रहा हूँ कि जो लिख नहीं रहा, उसका यहाँ क्या काम ? मगर काम को तो छोड़िये वह तो यहाँ सर्वेसर्वा बना बैठा है।" संभवत: आप पहले स्थापित लेखक हैं, जिसने इस कटु सत्य को इस प्रकार उजागर किया है।

अंक का संपादकीय ज्ञानवर्धक है। और 'धीरे रे खुले किवाड़' रोचक था। 'भ्रम', 'मास्टरनी का जादूमंतर' और 'चिन्ना वीदू' कहानियाँ स्त्री विमर्श से अभिप्रेरित प्रतीत होती हैं। 'छतरी', 'अनछुआ' और 'कब्ज़े का मकान' सामाजिक विसंगतियों को स्वर प्रदान करती हैं। 'पानी की परत' किशोर मन और 'फटा हुआ बस्ता' बालमन की कोमल भावनाओं की मर्मस्पर्शी कहानियाँ हैं। लघुकथाएँ और कविताएँ गागर में सागर समान हैं।

कुल मिलाकर अंक सराहनीय व संग्रहणीय था।

सादर

-योगेन्द्र शर्मा, 86, खत्रियान, बिजनौर उप्र 246701, मोबाइल 989741032

000

शिब्बन लाल की बहन, रोती नहीं

उषा प्रियम्वदा

उषा प्रियम्वदा
1219 शोर वुड बुलेवार्ड,
मैडिसन , विस्कॉन्सिन, 53705, यू एस ए
मोबाइल-608-238-3681
ईमेल- unilsson@facstaff.wisc.edu

उन्नीस सौ सैंतालीस में दादा भी अन्य राजनीतिक क़ैदियों की तरह जेल से छूटे- पाँच साल, फाँसी की सज़ा, फिर उसे बदल कर आजन्म क़ैद पर उसमें सैलिटेरी कन्फ़ाइनमेंट; क्या-क्या नहीं झेला होगा पर शायद उन सालों ने और कर्त्तव्यनिष्ठ और कर्मठ बना दिया।

जेल से छूटकर कानपुर आए, शिब्बन लाल का स्वागत करने के लिए हज़ारों की भीड़ उमड़ी। मैंने सालों से दादा को देखा भी न था, उनकी मुखाकृति भी स्मृति में धुँधली पड़ गई थी।

घर में उत्साह का माहौल था- माँ ने चूल्हे पर दादा के लिए खीर बनाई और जाली की अलमारी में ठंडी होने के लिए रख दी। मैंने भी अपनी खादी की साड़ियों में सबसे पसंदीदा फालसई रंग की साड़ी पहन ली, जिस पर रुपहला बॉर्डर था। माँ ने थाली सजा ली और छोटी दादी ने निर्णय सुना दिया, शिब्बन लाल जब ऊपर के खंड में आएँगे तब मैं उनका रोली अक्षत से टीका करूँगी, बाद में अन्य लड़कियाँ और स्त्रियाँ। छोटी दादी का यह प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास हो गया और इस अवसर की महत्ता समझते हुए इन्दो बुआ भी अपने सरूप नगर के बंगले से हमारे घर परेड आ गईं।

शायद दोपहर के तीन बज गए थे, सारा परिवार बिना खाए-पिये दादा की प्रतीक्षा कर रहा था। तभी छोटे चाचा, जो दादा के घर पहुँचने की सूचना देने के लिए अग्रिम ड्यूटी पर तैनात किए गए थे -बदहवास से घर में घुसे-और बहुत नाटकीय ढंग से अनाउंस करते हुए बोले- "शिब्बन लाल ने गोविंद को गले लगा कर भेंट लिया...."

यह सुनकर घर की सभी स्त्रियाँ स्तब्ध रह गईं।

चाचा ने आगे बताया, "जब शिब्बन लाल रेल गाड़ी से उतरे तो हम सब ने उन्हें मालाएँ पहनाईं। उनकी दृष्टि गोविंद और बनवारी पर पड़ी जो सबसे अलग, दूर माला लिये खड़े थे। वह आगे बढ़े और गोविंद को गले लगा लिया, वह तो फूट- फूट कर रोने लगा। बनवारी तो भाग खड़ा हुआ कि कहीं उसे भी गले न लगा लें- बनवारी और उसका परिवार हमारे घर का

शौचालय साफ़ करता था। इस सूचना में अंतर्निहित संकेत था कि हरिजन गोविंद को गले लगा कर दादा अपवित्र हो गए थे। यह महात्मा गाँधी के नियमों का पालन करने वाले दादा से कौन कहेगा कि पहले नहाओ फिर घर में घुसो-

छोटी दादी बहुत पसो पेश में थीं, बाक़ी सारे लोग मौन और स्तब्ध थे।

तभी दादा घर में घुसे और बेझिझक हमारे आगे आकर खड़े हो गए। मैंने थाली उठा ली, फिर दादी को देखा-वह अभी असमंजस में ही थीं- मैंने माँ की ओर दृष्टि डाली उन्होंने आँख के इशारे से कहा कि टीका करो।

मैंने कई सालों के रक्षा बंधन और भाई दूज की कसर निकालते हुए उनके प्रशस्त ललाट पर रोली का लम्बा सा टीका लगाया लगा दिया- फिर उसके ऊपर चावल छिड़के। दादा, चाचाओं के साथ चारपाई पर बैठ गए, मालाएँ उतार कर अलग रख दीं और स्निग्ध दृष्टि से प्रियजनों का मुआयना किया। मुंशी चाचा के बच्चे मालाओं के लिए आपस में खींचतानी करने लगे- माँ ने जाली की अलमारी से ही खीर का कटोरा निकालकर उन्हें पकड़ा दिया, और उस क्षण में बरसों से चली आई छुआछूत, जूठी, सकरी, कच्ची-पक्की रसोई और ऊँच- नीच, हरिजन और सवर्ण परम्परा ढह गई। मुझे महसूस हो रहा था कि अब हम सारी देहरियों को पार कर एक नए समय में प्रवेश कर रहे हैं, हमने नई, विस्तृत, खुली हुई दुनिया में क़दम रख दिया है।

000

उस छह साल, नहीं साढ़े पाँच साल की लड़की को कोई क्यों बताएगा कि यह सब क्या हो रहा है। ढाई साल पहले पापा मर चुके हैं, अब घर ख़ाली करना पड़ रहा है। बड़े-बड़े तख़्त, जिस पर पिता के मुवक्किल आकर बैठते थे, पड़ोस के वकील जगदीश माथुर उठवा कर ले जा रहे हैं। उनकी लॉ की किताबें भी, जिनकी लाल, एक सार जिल्दें थीं, शायद उन्हीं के घर जा रही हैं। नीचे वाला कमरा बहुत बड़ा है, जिसमें शीशे की ऊँची-ऊँची शीशम की आलमारियाँ हैं, एक में आदमक़द

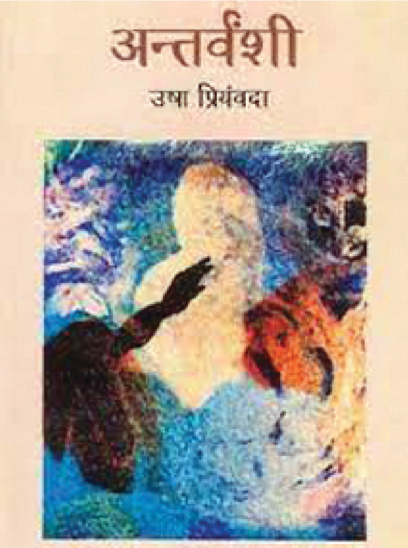

शीशा है। पास ही ऊपर जाने की सीढ़ियाँ हैं, जिन पर वह अँधेरे से डरती हुई लड़की साँस रोक कर ऊपर चढ़ने लगती है। चारों ओर विघटन है, पर उसे क्या मालूम, उसे कोई कुछ क्यों बताएगा। बच्चों को ये बातें नहीं बताई जातीं। पर वह देख रही है क़तार के क़तार लोग कुछ न कुछ उठाकर ले ही जा रहे हैं, यहाँ तक कि वह नया चमचमाता सूटकेस, जो उसका था, जो उसे लॉटरी के टिकट पर मिला था। बड़े मकान की इन्दो बुआ का मुँह लगा नौकर बंसी कंधे पर उठाकर ले जाता दिखाई देता है- खिलौनों वाला कमरा सब वैसे ही छोड़ दिया जाता है।

परेड की रामलीला के दशहरे के दिन एक चाँदी के रुपये में ख़रीदा मिट्टी का चूल्हा-चक्की, तवा, करछी- और सिर पर मटकी लिये लाल लहँगे और हरी चुनरी वाली गुजरिया, कंधे पर काँवर उठाए हुए श्रवण कुमार और दो डलियों में दो पुतले- उसके बाद क़तार की क़तार मिट्टी के गणेश, लक्ष्मी; पिछली कई दिवालियों के- यह सब उसने, उस पाँच, साढ़े पाँच साल की लड़की, ने सहेज कर रखा है, वह घंटों उस छोटे से, कोने वाले कमरे में अपने इन्हीं खिलौनों से खेलती रहती है। कभी-कभी रमेश आ जाता है, पड़ोस के बुटियर बाबू का बेटा, उससे कई वर्ष बड़ा, पर छोटी बहन द्वारा नीचे धकेल दिए जाने के कारण वह स्थायी रूप से दिमाग़ी चोट से ग्रस्त है, पर उसकी मुस्कान कितनी सरल है, वह जब भी आता है तो कमरे के आगे खड़ा होकर उसका नाम लेता है, झिझकती आवाज़ में, असमंजस में-- और जब उसकी पुकार सुनकर लड़की बाहर निकलती है, तो रमेश का चेहरा उसे पहचान कर एक मीठी, स्निग्ध मुस्कान से भर उठता है- ऊऽऽऽ षाऽऽऽ वह झिझकते हुए कहता है जैसे अपने को विश्वास दिलाना चाहता हो कि वह सही जगह है और यह लड़की वही है जो उसके खेल की साथिन है।

वह घंटों उन मिट्टी के खिलौनों से खेलते हैं। रमेश को चूल्हा-चक्की पसंद है। वह चूल्हे में कल्पित आग जलाता है, बटलोई रखता है, फिर तवा, फिर तश्तरी में खाना परोस कर कहता है-- लो -- बिलकुल वैसे ही जैसे वह रोज़ अपनी माँ को देखता है-- लड़की चुप रहती है, उसने प्रशंसा करना या अधिक बातें करना नहीं सीखा है। दोनों अलग-अलग तश्तरियों में झूठमूठ का भोजन करते हैं, बर्तन धोते हैं और वापस रख देते हैं। उसे कब, कहाँ, किसके साथ खाना मिलता था, यह सब याद नहीं है। ऊपर के खंड में न बैठक थी, न डाइनिंग रूम, बस एक क़तार में चार कमरे थे, और सामने बरामदा, फिर खुला आँगन, उसके बाद घर का दूसरा दरवाज़ा, जिससे नौकर चाकर और बनवारी या उसकी बहू सफ़ाई करने आती थी, उस दरवाज़े से उतरो तो सामने खुला हुआ गैरेज था जिसमें ईंटों पर पापा की हरे रंग की फ़ोर्ड मोटर खड़ी रहती थी- उनके मरने के कई बरस बाद भी- सबसे पहले जो कमरा था वह सबसे बड़ी बहन कमला का था, उसके बाद के दो कमरों में माँ, मैं और मेरी मझली बहन कम्मन, चौथा कमरा सबसे बड़ा था, रसोई के पास, उसमें दादी रहती थीं, अपनी दिवंगत बेटी की सौत के साथ- उसके बाद रसोई थी और उसमें भी एक दरवाज़ा पड़ोसी जगदीश बाबू की छत पर खुलता था- उसी दरवाज़े से हम बच्चे उन खुली -खुली छतों पर खेलने जाते थे। उसी से पड़ोस की स्त्रियाँ अंदर आती थीं-उसी दरवाज़े की चौखट पर गिरने से मेरा सिर फटा था और उसी दरवाज़े से माँ ने मरी हुई महराजिन का भूत कमरे में लुप्त होते देखा था पर तब घर में किसी को मालूम नहीं था कि

गाँव गई हुई महराजिन मर चुकी हैं। उस घर में सिर्फ़ माँ को ही भूत प्रेत दिखाई देते थे, कभी छत पर, कभी अपने कमरे में घुसते हुए जो तुरंत बड़े- बड़े काले कुत्तों में बदल जाते थे।

अगर सामने से आना चाहो, उस दरवाज़े से मर्द ही आते थे, सीढ़ियाँ चढ़कर छज्जे से गुज़र कर दरवाज़े के अंदर! और मर्द भी कौन? मामा जी या उनके बेटे प्रकाश या लल्लू, जिनसे रिश्ता क्या था उस लड़की को बहुत बरसों तक पता नहीं चला, या खुख्खों या भैया होरीलाल, दादा, शिब्बन लाल कभी कभार; क्योंकि वह स्वतंत्रता सेनानी होने के कारण अधिकतर जेल में रहते थे।

बस, उसे वह दिन याद है जबकि श्यामलाल के हाते में भयंकर सफ़ाई हुई थी, तख़्त बाहर निकाले गए थे, यह जगदीश माथुर के घर जाने से पहले की बात रही होगी, छिड़काव हुआ था- लड़की को खद्दर की छींटदार नई फ्रॉक पहनाई गई थी और कहा गया था कि जवाहर-लाल नेहरू को झुककर नमस्ते करना और तब माला पहनाना। खद्दर की उस मोटी खुरदुरी, छींटदार फ्रॉक की स्मृति कभी उसकी त्वचा से अलग नहीं हुई- कभी भी।

रेल के पहियों की खटर-खटर से वह जाग गई। हाथ में पैसा था- रेल कानपुर छोड़कर गंगा के पुल से गुज़र रही थी। उसने हाथ से पैसा उछाल कर गंगा जी में फेंक दिया। उसे मालूम नहीं था कि यह उसकी जीवन यात्राओं का पहला चरण था और घर से बेघर होने का भी।

000

लखनऊ में हीबेट रोड, लाटूश रोड, सुंदर बाग़ के घर बार-बार बदलने के बाद अब हम पार्क रोड में थे, घर नए बने हुए थे- सामने की सड़क अभी ठीक से बनी नहीं थी, कच्ची पक्की गड्ढे वाली- बरसात में घर के आगे काफ़ी पानी भर जाता था और मुहल्ले के बच्चे उसने कूदते-फाँदते रहते थे, सिंह साहब की तीन लड़कियाँ डेज़ी, पैन्ज़ी और डिलिया- उसके साथ पद्मा, जिसे दूसरे बच्चे चिढ़ाने के लिए पद्दों कह कर पुकारते थे।

हमारे घर के आगे लोहे का जँगला था,

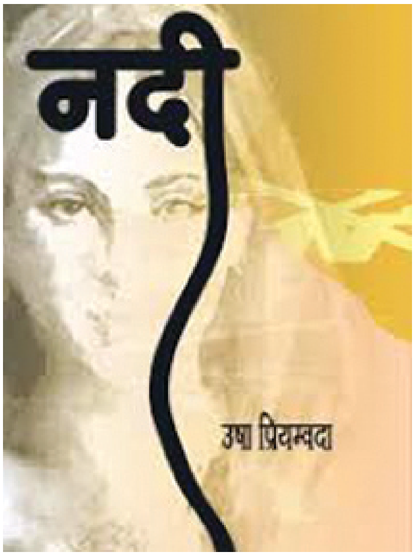

उसके बाद एक लंबी चौड़ी बारादरी, जँगले के साथ क्यारियाँ थीं जिनमें हरसिंगार और मधुमालती समय-समय पर फूलती रहती थीं- उन दिनों बड़े भाई शिब्बन लाल जेल से छूटकर घर पर थे और चीनी मिलों पर रिपोर्ट लिख रहे थे। वह इलाहाबाद से एम.ए करके गोरखपुर प्रोफ़ेसर हो गए थे; वहीं उनकी भेंट महात्मा गाँधी से हुई और उन्हीं ने दादा को महाराजगंज के पिछले इलाक़े और वहाँ चीनी मिलों में काम करने वाले मज़दूरों की दुखद स्थिति को सुधारने का आदेश दिया। दादा उसी काम में लीन हो गए, स्वतंत्रता संग्राम में एक दम समर्पित। घर में जो बातें होती थीं- हम बच्चे सुनते थे और जान गए थे कि हम पराधीन हैं - अंग्रेज़ हमारे शासक और शोषक हैं- हमें पड़ोस के सिंह साहब या पद्मा के ठेकेदार पिता की तरह उनकी चाकरी नहीं करनी चाहिए- हमें छींटदार खादी की फ्रॉक में ही प्रसन्न रहना चाहिए, डेज़ी या पैन्ज़ी की तरह मुलायम नरम मख़मल में नहीं।

दादा प्राय: बाहर बरामदे के आगे खुली ज़मीन पर बैठे-बैठे रिपोर्ट लिखने में लीन रहते थे। कभी-कभी हरसिंगार के फूल गिरकर उनके बालों में उलझ जाते थे पर उन्हें पता ही नहीं चलता। तपस्यारत एक साधक की तरह। हम बच्चे चुप रहते थे, शोर नहीं मचाते थे, न हम, न हमारे साथी। दादा का व्यक्तित्व ही ऐसा था, उनकी पूरी भावमुद्रा बहुत सहज और स्नेहिल होती थी, उनके नेत्रों में मेधा और एक वैचारिक व्यक्ति की आँखों में होने वाला तेज रहता था-- कभी-कभी वह लिखना रोक कर, सर उठाकर सड़क पर खेलते हम बच्चों को देखने लगते; तब उनके चेहरे पर एक बहुत स्नेहिल मुस्कान आ जाती थी।

पार्क रोड के घर में जो बात मुझे बहुत अच्छी लगती थी, वह थी उसकी लखनऊ ज़ू की निकटता। दिन-रात समय- असमय हमें हाथियों की चिंघाड़ और शेरों की दहाड़ें सुनाई देती रहती थीं। शायद उसी समय से मुझे पशु-पक्षियों से लगाव प्रारंभ हो गया। शिब्बन लाल से छोटे भाई होरी लाल, जिन्हें हम तीनों बहनें 'भैया' कहती थी, रोज़ सुबह हमें ज़ू की सैर कराने ले जाते थे हमें- यानी मुझे, और मँझली बहन कम्मन। हम लोग जिस पगडंडी से घुसते उसके समाप्त होते ही पक्षियों का घेरा आता था, सबसे पहले मोर, जिनमें एक सफ़ेद मोर हमेशा पंख फैलाए नाचता मिलता था, मैं देर तक वहीं रुकी हुई उसे देखती रहती थी, जिस वस्तु को न पा सको पर प्यार करते रहो, ऐसा ही कुछ संबंध मेरे और सफ़ेद मोर में बन गया था- वह हमारे पास आते ही और घेरे के बाहर खड़े होते ही पूरे पंख फैलाकर नाचने लगता था- और मुझे लगता था कि इतने आने वालों में शायद विशिष्ट हूँ- तभी तो मेरे पास आते ही वह नाचने लगता है। मोरों के बाद रंग बिरंगे काकातुआ, तोते और तरह-तरह के पक्षी कलरव किया करते थे, उसके बाद लकड़बग्घे और ऊदबिलाव।

इतना सब पार करने के बाद वह घेरा आता था जहाँ राजसी मुद्रा में बबर शेर बैठा रहता था, पास में दो शेरनियाँ और उछलते कूदते उनके बच्चे। शेर कभी-कभी मुँह खोल कर दहाड़ देता था- तब हमारा पूरा शरीर दहल जाता था और हम उस दहाड़ की प्रतीक्षा करते रहते थे।

आस-पास हरे उद्यान थे, मोर पंखी के झाड़ और रंग बिरंगे फूल, जब कभी हमारी छोटी मौसी सौभाग्यवती, जो लखनऊ में ही रहती थीं, बच्चों सहित माँ के पास आतीं तो हमारा ज़ू जाना अनिवार्य होता था। उनके बड़े बेटे सुधीर से जो मुझसे तीन साल छोटा था, मेरी बहुत पटती थी, जब तक घास पर चादरें और बैड कवर बिछते, टिफ़िन कैरियर से

पूरियाँ, आलू की कचौड़ियाँ और तरकारी निकलती हम दोनों मोर पंख के झुरमुट के आस-पास दौड़ते, भागते, खेलते, हँसते, खिलखिलाते रहते। कभी-कभी बहुत बड़प्पन से सुधीर का हाथ पकड़ कर हम शेर के बाड़े की ओर चले जाते। बाड़े के चारों ओर ख़ूब गहरी और चौड़ी नहर थी, उसके बाद जंगले; यानी दर्शक सुरक्षित रहते थे- हम लोग खड़े-खड़े उस परिवार को देखते रहते जहाँ शेरों के बच्चे उछलते, कूदते- भागते, दौड़ते दिखाई देते थे। कभी-कभी शेर धूप से उठकर अपने कटघरे की ओर चल देता तो हम उसकी मंथर, शाही चाल को बिना पलक झपकाए देखते रहते- बहुत वर्षों बाद, डेनिश लेखिका, इसाक डैनिसन की 'आउट ऑफ़ अफ्रीका' पढ़ते हुए मुझे अपने बचपन के उस बबर शेर की याद आ गई और जब मैंने उनका बंदूक लेकर अपने घोड़ों के बाड़े में आए अफ्रीका के शेरों को मारना पढ़ा तो मुझे बहूत दु:ख लगा पर जब उन्होंने अपने प्रेमी की क़ब्र पर दो शेरों को नियमित रूप से आते-जाते और रहते देखा, तो उस समय उन्होंने जो महसूस किया, बिलकुल वैसा ही उनके शब्द पढ़ते हुए मैंने अनुभव करते पाया, यह उनकी लेखनी का जादू था -इसी वर्ष, कितने वर्षों बाद लखनऊ जाने का अवसर मिला- मेरी सिर्फ़ दो ख़्वाहिशें थीं, पार्क रोड का घर देखना और ज़ू जाना। जिस दिन हमें ज़ू जाना था उस दिन ज़ू बंद था और तुषार के विवाह समारोह की व्यवस्था में अगले दिन कोई साथी नहीं मिला -पार्क रोड के उस घर की तलाश में हम इधर-उधर चक्कर लगाते रहे पर वह सड़क नहीं मिली और पता मुझे याद नहीं था। पर पार्क रोड के उस घर में बिताया बचपन कभी नहीं भुला पाई -और भुलाना भी नहीं, क्योंकि वहीं तो -तारा भाभी ने मुझे वह महामंत्र दिया था, जिसे संजोये मैंने पूरा जीवन काट दिया।

तारा भाभी प्यारे लाल अग्रवाल की दूसरी पत्नी थीं, गोरी, हँसमुख, वार्तालाप प्रवीण! प्यारे लाल अग्रवाल, मेरे भाइयों के मित्र थे, और कानपुर की कांग्रेस पार्टी के सेक्रेटरी- तारा भाभी प्राय: लखनऊ आती रहती थीं और

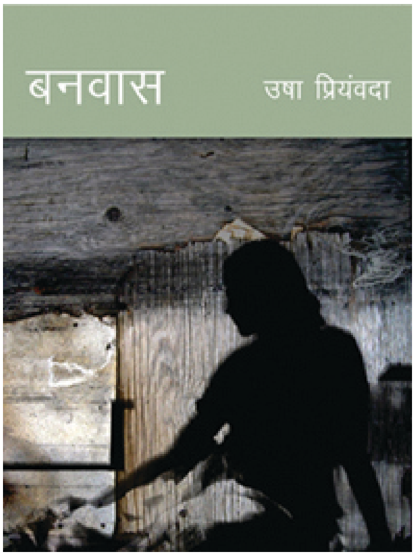

उनके द्वारा भी हमारे बाल्यजीवन में कितनी नई-नई खिड़कियाँ खुलती रहतीं, उनकी कश्मीर में अमरनाथ यात्रा, दक्षिण में कांग्रेस पार्टी का अधिवेशन मगर सबसे रोचक वृत्तान्त होता था चंद्रशेखर आज़ाद को पुलिस छापे से बचाने की साहसपूर्ण रोमांचक कहानी, जिसे बार-बार सुनने पर भी हमारा जी नहीं भरता था- किस प्रकार इस नाटे क़द की, एक दम गोरी, स्त्री ने अंग्रेज़ों की पुलिस को चकमा दिया- वह कहानी कभी बाद में--

तो तारा भाभी हमारे यहाँ लखनऊ आई हुई थीं- उस दिन शायद रविवार था- स्कूल की छुट्टी थी, सारे बच्चे मिल कर सड़क पर खेल रहे थे, भाग-दौड़, धक्का-मुक्की, शोरगुल करते हुए- मैंने उस दिन एक नई फ्रॉक पहनी थी, जो न जाने क्यों खादी की नहीं थी, फ्रॉक पर हरे रंग की नावें में छपी हुई थीं, आड़ी-तिरछी,उल्टी-सीधी -उस कपड़े का नर्म-नर्म चिकनापन मेरा शरीर सहला रहा था -तभी किसी ने मुझे धक्का दिया और मैं सड़क पर गिर पड़ी -मेरे घुटने छिल गए और तेज़ दर्द हुआ, उठकर खड़े होते हुए मैंने देखा, मेरी फ्राक फट गई थी, उसमें हुए छेद के पीछे से मेरा खून बहता घुटना दिखाई दे रहा था -मैंने दुख भरी चीख मारी, मेरी फ़ेवरेट फ्रॉक फट गई, घुटनों में दर्द था वह अलग, उसके ऊपर से मेरा रोना सुन कर भाई होरी लाल हाथ में टिंचर आयोडीन की शीशी और फुरहरी लेकर आते दिखाई दिए -टिंचर की छरछराहट और दर्द का ध्यान आते ही मेरी चीखें और बढ़ गईं- उनके पीछे-पीछे तारा भाभी भीं - पास आकर उन्होंने शांत स्वर में, मेरा हाथ पकड़कर कहा ''शिब्बन लाल की बहन रोती नहीं---''

मेरा रोना बंद होने में कुछ समय लगा, क्योंकि भाई तो ज़ख़्मी घुटनों पर टिंचर लगाने लगे थे, मेरी आवाज़ बंद हो गई थी, मगर हिचकियाँ आ रही थीं- तारा भाभी ने इस बार पुचकारते हुए कहा, '' क्रांतिकारियों के घर की लड़कियाँ रोती नहीं।'' मैंने होंठ भींच लिए, क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आज़ाद -स्वतंत्रता सेनानी, शिब्बन लाल!

000

फास्ट फॉरवर्ड -बरसों-बरसों बाद, मैं अस्पताल में हूँ, मृत्यु और जीवन के बीच झूलती हुई, मेरे हृदय की झिल्ली में पानी भर गया है, किसी समय हार्ट अटैक हो सकता है, हृदय धड़कना बंद कर सकता है। तब ओपन हार्ट सर्जरी ने इतनी प्रगति नहीं की थी-काफ़ी रिस्क थी, डॉक्टर पानी धीरे-धीरे कम कर रहे थे। समय लग रहा था- मैं अमेरिका में अकेली थी- नितांत अकेली। अस्पताल में मुझसे मिलने मेरे सहयोगी अवध किशोर नारायण आए थे, साथ में पत्नी, पाँच बच्चों की माँ- ''आप सब इतना अकेले कैसे झेल रही हैं।'' श्रीमती नारायण ने कहा, ''न कोई संगी न साथ !'' तो नारायण जी ने व्यंग्य से कहा, '' आख़िरकार शिब्बन लाल की बहन हैं ना !'' बात खट से सीने में जाकर लगी, सच ही तो है न ! मैं मुस्करा दी- '' आप सही कह रहे हैं।-''

000

दादा का कार्यक्षेत्र हमें, परिवार को मालूम था, महराजगंज गोरखपुर- वह कहाँ रहते थे, कैसे खाते-पीते थे, यह सब वह दिल्ली के पारिवारिक जीवन से अलग रखते थे। दिल्ली में मेरी माँ थीं, छोटे विधुर भाई होरी लाल और उनकी छोटी -छोटी तीन बेटियाँ- सविता, सबसे बड़ी जिसका नामकरण माँ ने किया था, बीच की रेखा- माता-पिता का दिया नाम, जिसमें मैंने 'सु' जोड़ दिया था, और सबसे छोटी छाया, जिसके जन्म के दो घंटे बाद ही उसकी माँ की रक्त-स्त्राव से मृत्यु हो गई थी, और जिसे मेरी माँ ने हृदय से लगाकर बहुत प्यार, दुलार और ममत्व से पाला था। जब

दादा पार्लियामेंट के सदस्य होते तब परिवार फ़िरोज़शाह रोड के बंगले में रहता और जब दादा इलेक्शन हार जाते तो इधर-उधर, भटकता रहता, कभी किसी मित्र, या संबंधी के घर टिक जाता या फिर रामनगर या पटेल नगर जैसे मोहल्लों में किराये के घर में- मैं इलाहाबाद में पढ़ रही थी और हर छुट्टी घर आती थी, शाम को जनता एक्सप्रेस की लकड़ी की बेंच पर कभी बैठकर, कभी सोते हुए। जब रेल जमना के पुल से गुज़रती तो मेरा पूरा शरीर पुलक उठता; क्योंकि स्नेहिल भाई और ममतामयी माँ के साथ समय बिताने के विचार से! भतीजियाँ भी मुझे बहुत प्यार करती थीं, अपनी तरह से। फ़िरोज़शाह रोड के वह वर्ष सुखद होते।

जब विभाजन के बाद पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को भूमि मिल रही थी, पड़ोसी ने दादा से प्लॉट ख़रीदने को कहा था- दादा ने साफ़ मना कर दिया, कि वह भूमि शरणार्थियों के लिए है, उसे ख़रीदना अनैतिक होगा। माँ ने हलके से कहा भी, कि दिल्ली में प्लॉट लेकर घर बना लें- तो भी दादा ने हँसकर कहा, " प्लॉट, किस के लिए? मेरे न बीवी है, न बाल-बच्चे-"

माँ हमेशा की तरह चुप रह गईं।

1981 में वह ऐसी घटना हुई जिस का कम से कम मुझे मानों गुमान तक न था, पाँच बार लोक सभा के लिए सदस्य निर्वाचित शिब्बन लाल अपने ही कार्यक्षेत्र में चुनाव हार गए थे। जब मैं दिल्ली पहुँचीं तो वह फ़िरोज़ शाह रोड के प्रांगण में अकेले बैठे हुए थे, उनके चारों ओर कागज़ों और पत्रों का अम्बार था- "दादा" मैं और कुछ न कह सकी। स्वर अवरुद्ध हो गया। दादा ने मुझे आँखें उठाकर देखा- "गीता के वचन भूल गई। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सुखदुख में एक समान रहता है"- दादा ने जेल के एकांत कारावास में गीता, उपनिषद आदि का गहन अध्ययन किया था।

आपत्तिकाल में, न जाने क्यों गीता के प्रबुद्ध वचन मेरी याद से फिसल कर लोप हो जाते हैं।

घर का नक़्शा यह था, दादा, छोटे भाई होरी लाल और उनकी तीनों बेटियों के प्रति

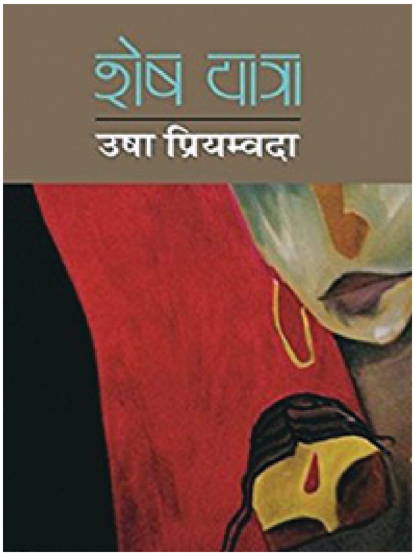

अपना कर्त्तव्य निभा चुके थे- तीनों विवाहित, पति प्रेम में आकंठ लिप्त, बाल बच्चे वाली थीं, घर में बचे, बूढ़ी मेरी माँ और भाई होरी लाल- और दादा स्वयं।

बड़ी पोती के पति महाराजगंज के एक कॉलेज के प्रिंसिपल थे, मगर उन्हें उस ग्रामीण वातावरण की बजाए दिल्ली में फ़िरोज़शाह रोड पर सबसे बड़े दामाद की तरह रहना अच्छा लगता था। और उनका वैसा सम्मान भी था। सबकी राय से सविता ने ग़ाज़ियाबाद में ज़मीन लेकर बड़ा सा घर बनवाया था, जिसमें दादा ने सामग्री और राशि दोनों से पर्याप्त मात्रा में सहायता की थी, यह मानी हुई बात थी कि वृद्धावस्था में ताऊ, पिता और दादी एक खंड में रहेंगे-जो तब किराये पर चढ़ा हुआ था। घर का सामान बटोरा जाने लगा, तभी सविता का संदेशा आया कि उसके पति वृद्ध दादी को साथ रखने के लिए तैयार नहीं हैं! उसके पति सामने से व्यवहार कुशल और मिठ बोले थे, ऊपर से माँ के प्रति आदर, न निरादर, मगर उनके मन में क्या चल रहा था ये कौन जानता! शायद वह तीन वृद्ध संबंधियों को अपनी छत के नीचे रखने को तैयार नहीं थे, जिन्होंने उनकी पत्नी को पाल पोस कर बड़ा किया था और घर के बड़े पौत्र दामाद होने के कारण महीनों उनकी ख़ातिरदारी की जा चुकी थी और उन्होंने काफ़ी बचत भी की थी। घर में यह परंपरा थी, समर्थ व्यक्ति दूसरे के प्रति अपनी पूरी ज़िम्मेदारी निबाहता था, उदाहरण सामने था, अपनी पत्नी और बच्चे न होते हुए भी दादा शिब्बन लाल ने अपने मामा को उनके मृत्यु काल में दिया वचन जीवन पर्यन्त निबाहा था, मेरी माँ और हम तीन बहनों की पूरी ज़िम्मेदारी सँभाली थी और छोटे भाई होरी लाल की बेटियों को पढ़ा-लिखाकर उनकी इच्छा अनुसार सजातीय विवाह किये थे। मेरी बड़ी बहन कमला के पति यदुपति सहाय ने भी, अपनी लेक्चरर की तनख़्वाह में कमला की छोटी बहनों को बरसों साथ रखकर पढ़ाया लिखाया था इसलिए यह अपेक्षा करना जो विशाल ग्रह शिब्बन लाल की सहायता से बना है, उसमें परिवार के तीनों वरिष्ठ संबंधी रहेंगे सविता के अपने पिता, दादी, जिन्होंने छह वर्ष की आयु से पाला पोसा था, और ताऊ, जिनके पुरुषार्थ से सारे परिवार को प्रश्रय मिला था।

सविता पति की अंधभक्त थी, उसने तोते की भाँति पति का संदेश सुना दिया। माँ गाज़ियाबाद जाकर रहने के लिए उत्साहित नहीं थीं, पर सिर पर एक छत तो होती। मैंने सुना वह कई दिन तक रोती रहीं, - चुपचाप, जैसी उनकी ज़िंदगी भर आदत रही, अंतत: घर बिखर गया, पिता होरी लाल को भी उस घर में जगह नहीं मिली, गाज़ियाबाद में एक किराये के घर में रहने लगे, अस्सी साल की आयु में माँ एक बार फिर बेघर हो गई, जैसे बरसों पहले होरी लाल की पत्नी द्वारा निष्कासित कर दी गई थी, उसी तरह सविता और सतीश द्वारा मैंने माँ को अपने पास बुलाना चाहा, पर उन्होंने मना कर दिया। वह परिवार, बेटियों, उनके बच्चों और छाया से इतना जुड़ी हुई थीं कि अकेले मेरे साथ, अनजान, ठंड प्रदेश में, जहाँ की भाषा से वह सहज नहीं थीं, न विदेशी जमाता की उपस्थिति से, जीवन के अंतिम दिन बिताना उन्हें ग्राह्य नहीं हुआ।

मैंने तभी माँ, दादा और भैया के रहने के लिए दिल्ली में फ़्लैट ख़रीदा पर जब तक वह बनकर तैयार हुआ तब तक उसमें रहने के लिए तीनों में से कोई जीवित नहीं बचा था। माँ से दादा से कहा-"आप रोती क्यों है, मैं गोरखपुर में घर लेकर आपको बुला लूँगा।"

अंतत: माँ अपनी मँझली बेटी कामिनी के

पास बड़ौदा चली गईं। छूट गई उनसे दिल्ली, संबंधी और बिछुड़ गई छाया, जिससे उनके प्राण जुड़े हुए थे।

इस प्रकार हम सबके जीवन का एक लंबा अध्याय समाप्त हो गया।

000

दादा आँधी की तरह दिल्ली आते थे, हम सुबह चाय पी रहे होते थे तो बरामदे की सीढ़ियों पर उनके चढ़ने से उनके फटे जूतों की फटफट आवाज़ से माँ समझ जाती थीं कि शिब्बन लाल आ गए हैं।

दादा के बिखरे हुए बाल, धूल भरा चेहरा, मटमैला, कभी-कभी जेब विहीन खादी का कुर्ता और गाँव में धुली धोती, पर चेहरे पर स्निग्ध आभा और वत्सल 'मुस्कान'।

"आ गई आप?" मुझसे कहते!

वह अपने कमरे में चले जाते थे जहाँ पार्लियामेंट के आए हरे लिफ़ाफ़ों और काग़ज़ों का अम्बार लगा रहता था, अख़बार, किताबें, पत्र--

माँ झटपट उनकी पसंद का भोजन बनाने में लग जाती थीं, उनके धुले, महीन खादी के कपड़े निकालती थी और वह नए जूते भी- यह कपड़े उनके दिल्ली में पहनने वाले थे। पार्लियामेंट में जाने के लिए वह हमेशा ऑटो रिक्शा में पार्लियामेंट जाते थे। वे दो तीन दिन से अधिक दिल्ली में नहीं रहते थे, उनका मन तो महराजगंज में अटका रहता था- बस दो तीन दिन बाद वह जाने को तैयार होते थे तो अपने दिल्ली वाले सफ़ेद, साफ़ सुथरे कपड़े कमरे में छोड़ जाते थे, माँ उन्हें धुलवाकर बक्से में रख देती थी- घर में सन्नाटा हो जाता था, मैं माँ के कमरे में खाट पर बैठ कर पढ़ती-लिखती थी।

दादा के साथ हमेशा दो एक व्यक्ति रहते थे। वही, हँसते-हँसते खाने की मेज़ पर साथ बैठकर बताते थे -"ट्रेन में सक्सेना जी की जेब कट गई, " या फिर मुझ से -"बहिनी, आपने जो अमेरिका वाला स्वेटर ला कर दिया था, कुछ घंटों ही पहना, इटावा स्टेशन पर एक भिखारी को ठंड में ठिठुरते देखा तो उतार कर दे दिया- "

दादा सुनते रहते थे, मुस्कराते रहते थे,

कुछ बोलते नहीं थे- उनका स्वभाव था, जहाँ भी जिसकी जो मदद कर सकते थे, वह कर देते थे-- उनका कितना मान था यह मैंने स्वयं देखा था, जब इंदिरा गाँधी अपने बरामदे में निकल कर उनका स्वागत करती थीं; जब राष्ट्रपति भवन के समारोह में जवाहर लाल नेहरू उनको देखकर मुस्करा देते थे, " कैसे हो शिब्बन लाल ?" स्वतंत्रता संग्राम के बड़े-बड़े नाम, 1947 के बाद हमारे घर जो वास्तव में दादा का था, फ़िरोज़शाह रोड पर आते-जाते रहते थे।

पर दादा में कहीं अभिमान नहीं था, हमेशा एक मुस्कराता हुआ चेहरा और ऐसी करुणामय स्निग्धता जो बरसों बाद मैंने दलाई लामा के मुख पर ही देखी।

अन्य सदस्यों की तरह दिल्ली में रहकर उन्होंने कभी पैसे नहीं बटोरे। पालते रहे परिवार को, भाई- भतीजियों, भाभी और हम सब को- अपनी पत्नी और बच्चे न होते हुए भी वे सब से जुड़े थे, अपने पिता के परिवार से, अपने ननिहाल से और फिर उनके कार्यक्षेत्र में जो उनके साथी रहे होंगे--

उनसे ही मैंने "वसुधैव कुटुम्बकम्" का पहला पाठ सीखा- देखें तो अब मेरा कोई भी नहीं है, माँ, भाई, बहनें सब दिवंगत हो चुके हैं, यहाँ से विभाग में भी, शहर के भी सब संगी साथी, फिर भी जुड़ी हूँ- तीसरी चौथी पीढ़ी से, पुराने विद्यार्थियों से, पाठक, पाठिकाओं से- और अब सोशल मीडिया के द्वारा नए लेखक, लेखिकाओं से- कवियों और कलाकारों से --

"पद्म पत्र इवं भसा -"

यह तो मैंने दादा से ही सीखा।

दादा की मृत्यु की ख़बर मुझे कई दिन बाद मिली, तब फ़ोन विदेश के लिए बुक किये जाते थे। कई दिन कनेक्शन मिलने में लग जाते थे, दादा के साथियों ने परिवार को उनकी बीमारी की कोई सूचना नहीं दी। माँ हमेशा टीवी पर शाम की ख़बरें सुनती थीं, उसी पर उन्हें सूचना मिली कि पाँच बार निर्वाचित लोक सभा के सदस्य, शिब्बन लाल की मृत्यु हो गई है- वह तड़प कर रह गईं, बड़ोदरा से यात्रा करके महराजगंज जाना संभव नहीं था।

बाद में भारत जाने पर मैंने दादा की मृत्यु के बारे में कथाएँ सुनी, कि कैसे वह लखनऊ के अस्पताल में अकेले पड़े रहते थे, कैसे उस अर्ध अचेतावस्था में उनके आस-पास के लोगों ने कोरे काग़ज़ों पर उनके दस्तख़त करवा लिए थे, यहाँ तक कि किसी ने उनके हाथ की घड़ी और पुट्टपार्थी के श्री सत्य साईं बाबा द्वारा प्रदान की गई रुद्राक्ष की माला भी उतार ली थी -

000

विदेश में रहकर मुझे परिवार के सदस्यों की मृत्यु की सूचना ऐसे ही मिलती थी, अंतरराष्ट्रीय लिफ़ाफ़े पर भाई होरी लाल का लिखा पत्र, जिसमें बड़ी बहन के पति यदुपति सहाय की मृत्यु की ख़बर थी, या सूचना पोस्टकार्ड, जिसमें सविता की तेरहवीं की, या बॉस्टन से मेरे पति का फ़ोन -"तुम तुरंत भारत के लिए निकलो, तुम्हारी माँ मरणासन्न है- " फ़ोन कनेक्शन उन्हें मिल गया था, मुझे नहीं।

परन्तु अब फ़ोन की सुविधा है- मुंबई से सुबकियाँ लेती अलका का - "कम्मन मौसी चली गईं"--या फिर "अम्माँ चली गईं"- और अभी कुछ ही समय पहले, ग्यारह बजे रात को, " रीता चली गई--"

अकेले घर में रोना पीटना ?

नहीं होता, बस कड़वे विष की तरह सारा संताप, सारी व्यथा, संपूर्ण दु:ख घूँट लेना-

शिब्बन लाल की बहन हूँ न-

रोती नहीं --

000

क्रमश: (अगले अंक में जारी)

जूठा सेब

प्रज्ञा पाण्डेय

प्रज्ञा पाण्डेय
467, 11 एवेन्यू, गौर सिटी -2, नियर किसान चौक, ग्रेटर नोएडा -201301
मोबाइल- 6394419003
ईमेल- pandepragya30@gmail.com

एक सुनसान सड़क पर बीस-बाईस साल का एक लड़का साइकिल चलाता चला जा रहा था, वह रास्ता सुनसान था। उतरती जनवरी की दोपहर में भी बहुत निचाट था जबकि सड़क चिकनी और साफ़ थी। लड़के की जेब में एक मोबाइल फ़ोन था जिससे उसकी पुरानी, फटी और खाली जेब की कीमत बहुत बढ़ गई थी। उस बियाबान सन्नाटे में साइकिल चलाते हुए लड़के की छाती चौड़ी हो रही थी। तभी उसके सामने से आते एक मोटरसाइकिल सवार ने उसके बगल में आकर रफ़्तार धीमी की अपनी फिर मोटरसाइकिल रोक ली। नकाब पहने एक लड़की पीछे बैठी हुई थी। वह भी नई उम्र की थी। मोटरसाइकिल चलाने वाला लड़का भी लगभग उसी की उम्र का था।

पर्दानशीन लड़की बहुत धीमी, कुछ उदास सी आवाज़ में बोली –"मेरी बहन हॉस्पिटल में है। बहुत बीमार है। बस एक नंबर मिला दीजिये, बड़ी मेहरबानी होगी।"

साइकिल वाले लड़के ने तुरंत अपनी जेब से एकदम नया एन्ड्रोएड फ़ोन निकाला और तत्परता से नंबर पूछकर कुछ गर्व से भरता हुआ फ़ोन मिलाकर उस नाज़नीन के हाथ में दे दिया। वह भूल गया कि फ़ोन कितनी मशक़्क़त के बाद उसके हाथ में हैं और उसे इस तरह किसी राह चलते के हाथ नहीं दे देना चाहिए। अचानक उसको कुछ भी समझ में नहीं आया क्योंकि मोटरसाइकिल की रफ़्तार अचानक बढ़ गई और बढ़ती ही चली गई। फ़ोन लेकर वह पर्दानशीन, नाज़नीन यह जा और वह जा हो गई।

एक बार लड़के ने सोचा कि मोटरसाइकिल का पीछा करे। साइकिल, मोटरसाइकिल के पीछे नहीं दौड़ सकती सोचकर भी वह कुछ दूर भागता रहा फिर हक्का-बक्का होकर खड़ा रह

गया। खड़े-खड़े ही अपनी जगह पर नाच सा गया। उसने एक ईंट का अद्धा उठाकर गुस्से में अपनी ही साइकिल पर दे मारा। साइकिल की हालत पहले से ही ख़राब थी और ख़राब हो गई। चुप रह जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता वह। उसने ज़बान सिल लेना ही ठीक समझा।

एक छोटी सी फैक्ट्री में काम करने वाली सुपरवाइज़र का बेटा हरीश, उस हसीना के नकाब से ढके खूबसूरत चेहरे को याद कर उसमें उलझता रहा। फ़ोन और चेहरा दोनों एक दूसरे में गडमड होते रहे। उसकी हसरत उसकी आँखों में उतर आई थी इस बात पर उसने ध्यान ही न दिया था। शायद नाज़नीना की आँखें बहुत खूबसूरत थीं। उसकी आँखों में काजल था। उन आँखों की उसके पास अब एक ऐसी याद थी जो उसको रह-रहकर कचोटती थी। क्यों पड़ गया उस हसीना के चक्कर में, मगर अब तो तोते उड़ गए थे। कितने ही दिनों से एन्ड्रोएड का एक फ़ोन उसके सपनों में चाँद सा था और वह उसे उतार लाना चाहता था। अपनी चाहत में रंग भरना चाहता था।

हसरत पालना अपराध नहीं तो उनका पूरा होना ही कैसे हुआ। यह फ़ोन तो चाँद के पास रहने वाले ने ही उसकी झोली में डाल दिया था। उसके दोस्तों के पास एक से एक फ़ोन थे। एक साधारण फ़ोन तो वह ले ही सकता था। बड़ी मुश्किल से एक छोटा सा फ़ोन उसने ढाई सौ रुपये में लिया था। उससे वह एक तस्वीर भी नहीं ले सकता था। किसी काम का नहीं था। एन्ड्रोएड का नाम किसी दोस्त की ज़बान से सुना था उसने और उसके बाद टीवी पर उसका विज्ञापन देखा था। वह विज्ञापन उसके मन में आधे खाए सेब की तरह सेब की महक बनकर समा गया था। सेब उसने यू ट्यूब पर कई बार देखा था। उसकी कीमत भी मालूम की थी लेकिन वह बहुत महँगा था। सच के सेब की कीमत पूछकर भी वह कई बार लौट आया था।

जूठे सेब की उस तस्वीर के प्रति उसके मन में एक गहरी लालसा पैठ गई थी। रस छोड़कर वह उसके रूप और गंध से बावस्ता

था। चाँद उसके सपने में था, चाँद पर बने गड्ढे नहीं। जूठा सेब भले ही न मिला। कुछ तो मिला, एन्ड्रोएड ही सही।

मिसेज़ शालिनी तनेजा, फैक्ट्री की मालकिन का फ़ोन आज से एक महीने पहले गायब हुआ था और सुपरवाइज़र के बेटे का एक महीने बाद। मालकिन ने सुना तो बेबी से पूछा- "वह फ़ोन तुम्हारे बेटे के पास कहाँ से आया?"

"मैडम, एक उसका दोस्त है उसी ने उसको लाकर दिया था।"

"कहाँ से लाया?" मिसेज़ तनेजा कुछ सख्त होकर पूछ रहीं थीं।

"यह तो मालूम नहीं मैडम, लेकिन उसका फ़ोन चार सौ का था। मैंने ही उसका पैसा दिया था मैडम।"

मिसेज़ तनेजा के मन में सच जानने की छटपटाहट समा गई थी।

मिसेज़ तनेजा ने अपने ज़रूरी खर्चे रोक कर एन्ड्रोएड का वह फ़ोन खरीदा था और जब पैसे कुछ कम पड़े थे तब मिस्टर तनेजा ने बड़ी मिन्नतों के बाद उसे कुछ पैसे दिए थे और वह फ़ोन खरीद सकी थी।

मिसेज़ तनेजा को जब यह खबर हुई थी कि उसकी सुपर वाइज़र बेबी के बेटे ने कोई फ़ोन खरीदा है तब उसने बेबी से कहा कि वह उसके बेटे का फ़ोन एक बार देखना चाहती है।

बेबी ने झट से कहा-मैडम, वह तो बहन के घर चला गया है एक हफ्ते बाद लौटेगा और जब लौटा तो इस घटना के साथ कि कोई नाज़नीन उसका फ़ोन ले उड़ी है।

उसके फ़ोन की गुमशुदगी उसके लिए किसी रहस्य से कम नहीं थी। परदों की महँगी दुकान में बैठी मिसेज़ तनेजा के हाथ में नया चमचमाता हुआ एन्ड्रोएड फ़ोन है जिसे हाथ में लेकर उसने अपना पुराना फ़ोन भुला दिया है। कितने ही रंग-बिरंगे, स्याह और सफ़ेद परदे उसके चारों ओर हैं।

मिसेज़ तनेजा ख़यालों के ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चल पड़ीं-अक्सर लोगों के पास कोई ऑप्शन ही नहीं होता। जैसे वह पर्दानशीन। निश्चित रूप से उसके पास कोई विकल्प नहीं रहा होगा..तभी तो वह वहाँ रुकी, नहीं तो उस सुनसान सड़क पर भरी दोपहर में उसको आने की क्या ज़रूरत भी।

हाथ में परदे को देखते-देखते मिसेज़ तनेजा की निगाह अपनी सोच पर अटक गई।

वह बहुत सर्द दिन था। मिसेज़ तनेजा यात्रा से लौट आई थी। उस के दिमाग में सुराजी की जवान बहू घूम रही थी। सुबह अपनी फैक्ट्री पहुँचते ही मिसेज़ तनेजा ने सुराजी को अपने ऑफ़िस में तलब किया। बुढ़िया जानती थी कि उसके ऊपर गाज गिरने वाली है। मिसेज़ तनेजा के पास आती उसकी चाल में कभी न मिटने वाली थकान थी।

मिसेज़ तनेजा उसी दिन से, जब से फ़ोन खोया था, आँखें लाल किए उसे घूर रही थी। सुराजी दोनों हाथ जोड़े काँपती हुई उसके पाँवों पर गिर पड़ी थी। उसके ठंडे हाथ मिसेज़ तनेजा के पाँवों से टकराए। मिसेज़ तनेजा का गर्म और मुलायम, कोट में लिपटा कोमल शरीर थर्रा गया लेकिन उस गर्माहट से बूढ़ी सुराजी को शायद सुख मिल रहा था।

वह मिसेज़ तनेजा के पाँवों पर देर तक हाथ रखे रही। मिसेज़ तनेजा ने अजीब निगाहों से उसको देखा और अपने पैर खींच लिये। वह मिसेज़ तनेजा की फैक्ट्री में बहुत दिनों से थी लेकिन मिसेज़ तनेजा ने आज पहली बार उसके चेहरे को गौर से देखा था। झुर्रियों से भरे चेहरे पर, ठंढ से त्वचा फटने के कारण पपड़ी सी जमी थी। उसका गहरा साँवला चेहरा, लालमिर्चे की तरह सूखा था। उसकी आँखों में

जाने कैसा पानी था। आँसू थे या ओस, मिसेज़ तनेजा समझ न पाई। अब तक तो वह उसे इतना ही देखती थी कि उसकी कितनी छुट्टियाँ कटेंगी और पगार कहीं उसकी औक़ात से अधिक तो नहीं बन गई। इसके अलावा उसके प्रति अब तक तटस्थ मिसेज़ तनेजा को आज उस पर ग़ुस्सा आया था।

वह गुर्राई-"तुम अब यहाँ से निकलो।"

बूढ़ी सुराजी ने मिसेज़ तनेजा के पाँव ज़ोर से फिर पकड़ लिए -ऐसा न करो बिटिया। उसने उसे पहली बार बिटिया कहा था....इसके पहले तो वह मालकिन कहती रही होगी या शायद मिसेज़ तनेजा ने कभी उसकी आवाज़ ही न सुनी थी, उसे याद नहीं। वह कहती जा रही थी–"बिटिया, तुम ही माई बाप हो अब। तुम जो पगार देती हो, उससे हमरे आदमी केर दवाई का इंतजाम हुइ जाता है..न निकारो, ..हम कहवां जाबे?" मिसेज़ तनेजा को जाने क्या हुआ ..थोड़ी देर के लिए वह मालकिन न होकर बिटिया बन गई, लेकिन अगले ही पल उसको अपना खोया हुआ फ़ोन फिर याद आ गया.. उसे यह एहसास हुआ कि वह गिड़गिड़ाती हुई इस स्त्री के झाँसे में नहीं आएगी। इस एहसास के आते ही मिसेज़ तनेजा चीख पड़ी- "तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुम मुझे आकर यह सब समझाओ? कल मेरा फ़ोन मेरे सामने होना चाहिए। नहीं तो!" सुराजी की साँस रुक गई ..क्या बोलेंगी मालकिन-उसने दम साध लिया- मैं तुम्हें जेल भिजवाऊँगी। इस बार वह मालकिन न कहकर- माई- बाप, हमार भगवान् और जाने क्या-क्या कहती रोने लगी।

वह मिसेज़ तनेजा के पाँवों को ज़ोर से पकड़ कर बैठ गई। ऐसा न करना बिटिया! उसके भीतर एक दया जागी लेकिन तभी बेबी ने इशारे से कहा कि यह सब जानती है। मिसेज़ तनेजा ने अपना चेहरा फिर सख़्त कर लिया।

बेबी ने मौका देख कर बाद में कहा- "मैडम, इसमें अपनी बहू की करतूत बताने की हिम्मत नहीं है। इसके बेटा-बहू इसे धक्के मार कर घर से निकाल देंगे.. बहू बदमाश है। मिसेज़ तनेजा ने सोच लिया कि वह किसी

कीमत पर नहीं पिघलेगी लेकिन उसका बार-बार बिटिया कहना उसे भीतर तक छू रहा था।

बहुत दिन हो गए थे उसे खुद के लिए यह संबोधन सुने। हवाई जहाज़ से की गई अनेक यात्राओं के दौरान, उन यात्राओं में कई बार बड़े-बड़े होटलों में रुकने के और कंपनी द्वारा आयोजित बड़ी-बड़ी पार्टियों में भी जहाँ इतनी आवभगत होती है, जहाँ बेयरे दुहरे हो-होकर सलाम करते हैं वहाँ भी किसी ने उसे कभी बिटिया नहीं कहा था। बिटिया तो उसको उसकी माँ कहतीं थीं जो बरसों हुए गुज़र चुकीं थीं। आज अचानक मिसेज़ तनेजा को अपना बचपन याद आने लगा। वह बहुत दिनों के बाद भोली सी, छोटी सी बच्ची बन गई।

मिसेज़ तनेजा सबसे अधिक भरोसा बेबी की बात पर ही करती थी। बेबी स्मार्ट और कुछ नखरीली थी जो बहुत कम समय में मिसेज़ तनेजा के लिए ख़ास हो गई थी। फिर भी बार-बार सुराजी को निशाना बनाती बेबी उस के शक के घेरे में कब आ गई यह मिसेज़ तनेजा भी न जान पाई।- क्या बात है जो यह बेसहारा सुराजी को किसी भी तरह नौकरी से हटा देना चाहती है। उसका शक पुख़्ता होने लगा। ताला-चाभी, उसके बाद फैक्ट्री पर पूरा कब्जा रखने वाली उसकी सुपरवाइज़र की हैसियत से काम करने वाली यह आख़िर इतनी ईर्ष्यालु क्यों हो रही है। वह सचेत हो गई थी।

उसको लगा कि उसे इस तरह भी सोच लेना चाहिए। उसको शायद सुराजी पर दया आई थी जब उसने अपने सर्द हाथों से उसके पाँव पकड़े थे। वह उसके बर्फ़ीले हाथों की छुअन से सिहर गई थी। उसके पाँव गर्म थे और सुराजी के हाथ बर्फ़ीले ठंडे थे। क्या उसको उसके गर्म पाँवों को छूकर गरमी मिली होगी! जिस तरह बिटिया यह संबोधन उसके मन में समा गया था। माँ ने तो उसका नाम ही बिटिया रख छोड़ा था, उसे याद आया कि जब भी वह उसे बिटिया बुलाती थी वह दौड़कर माँ के पास जाती थी।

उस दिन उसका फ़ोन क्या खोया था कि उसकी छोटी सी फैक्ट्री के प्याले में तूफ़ान ही आ गया था। वह बार-बार यही कहती चीख़ रही थी– मेरी ही ज़मीन पर पलने वाले तुम लोग? मेरे नौकर और चाकर! मेरी ही फैक्ट्री से मेरा फ़ोन चोरी कैसे हो गया? यह हिमाक़त किसने की? उस ने आपा खो दिया था और चीख-चीख कर देर तक प्रलाप करती रही थी। मुझे फ़ोन चाहिए नहीं तो मैं पुलिस को खबर करूँगी। मार्केटिंग के लड़कों को तो फैक्ट्री में पाँव रखने की ही अनुमति नहीं थी। वे भी मिसेज़ तनेजा की आवाज़ सुनकर काँप गए थे। उसकी चहारदीवारी पर हाथ रख देना ही बड़ी बात है फिर किस की हिम्मत है? मिसेज़ तनेजा को फ़ोन के खोने का संताप तो हुआ ही था उससे भी बड़ा उसका क्रोध था, उसके ही आश्रितों ने यह किया कैसे? इतनी हिमाकत कैसे ?

मिसेज़ तनेजा ने बहुत पैसे खर्च कर के अपनी एक बड़ी हसरत पूरी की थी। उसका वर्षों का सपना था वह-फ़ोन। तब उसका काम इतना अच्छा नहीं था कि वह अधिक रुपए ख़र्च कर दे लेकिन इच्छाओं का क्या करती।

मिसेज़ तनेजा फैक्ट्री से दुखी हो लौट आई। उसी दिन मिसेज़ तनेजा की दिल्ली के लिए फ्लाइट थी। उसको एक ज़रूरी मीटिंग में जाना था इसलिए उसके लिए संभव नहीं था कि वह वहाँ रुकती और फ़ोन को खोजती, उसने यह काम बेबी को सौंपा और समय से एअरपोर्ट के लिए निकल गई। सुराजी जिसको झुकी कमर को सीधा करने में समय लगता था, वह कैसे ऐसा कर सकतीं थी? फ़ोन का स्क्रीन ऑन होते ही पासवर्ड डालने का

प्राविधान था जिसे सिर्फ वह जानती थी। उस के मन में वह तिरालिस हज़ार का फ़ोन दहाड़ें मारकर रोता था जिसको उसने अभी बस महीना भर पहले ही खरीदा था। कितनी मुश्किल से मिसेज़ तनेजा ने उस फ़ोन को खरीदने का सपना पूरा किया था दरअसल उसकी मजबूरी थी। जब वह अपनी मित्रों से मिलने जाती और एक-एक कर वे सब अपनी गाड़ियों से उतरकर किसी जगमगाते फ़ूड स्टेशन पर अपने महँगे पर्सों के बगल में महँगे फ़ोन रख जगमग होतीं तब मिसेज़ तनेजा अपना फ़ोन अपने पर्स के भीतर ही रखती। उसका दस हज़ार का फ़ोन उनके हज़ारों के फ़ोन के सामने घटिया दिखाई देता था। वह उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी जब उसके हाथ में भी वैसा ही फ़ोन हो और वह भी अपना स्टेटस मेंटेन कर लें। फैक्ट्री से फ़ोन का गायब होना उसे ऐसा कचोट रहा था जैसे उसकी पाली हुई बिल्ली अचानक पंजे मारकर उसका ही चेहरा चोटिल कर दे।

मिसेज़ तनेजा के कानों में उसके अपने ही शब्द गूंजने लगे थे-मेरी ज़मीन। मेरा दिया हुआ खा कर मेरी ही थाली में छेद किया। मेरा दिया हुआ। वह रात में जागती। मेरी ज़मीन...हाँ ..उसने वह ज़मीन का टुकड़ा खरीदा था सात हज़ार स्कैवयर फुट का। तब वह मिट्टी के मोल मिला था।

उसकी फैक्ट्री में एक चौदह साल की लड़की भी काम पर आती थी। उस पर मिसेज़ तनेजा ख़ास तौर पर दयालु थी। उसके माँ-बाप पहले भीख माँगते थे। अब बूढ़े थे। उसके दयालु होने की भी वजह थी वर्ना बेमतलब तरजीह देना उसने कब सीखा था। एक तो आधी पगार दूसरे काम पूरा। ग़ज़ब की तेज़ थी वह। बेबी ने अपनी गोल-गोल आँखें नचाते उस से यह कहा था- "मैडम मोबाइल का कीड़ा है यह। देखने को है छटाँक भर की। कोई महँगा से महँगा मोबाइल इसके हाथ में आ जाए, मैडम, तो ऐसे उलटती पलटती है जैसे कोई खिलौने को उलटे-पलटे, तुरत सब समझ लेती है और खोलकर फ़ोटो-सोटो सब लेने लगती है शन्नो।"

यह बात बताते समय बेबी के चेहरे पर

लड़की की तारीफ़ से अधिक अपनी समझ का गर्व-भाव खेल रहा था, वह होंठ गोलगोल कर मुस्करा रही थी। जब उस ने एक बार शन्नो पर संदेह किया तो बेबी उसको बचा ले गई। उसको एक बार भी बेबी पर कोई शुबहा नहीं हुआ बेबी ने फिर उसका ध्यान पूरी तरह से बुढ़िया पर ही केन्द्रित करने का इशारा दे दिया।

मिसेज़ तनेजा चाहती तो फ़ोन की गुमशुदगी की रिपोर्ट की शिकायत पुलिस में दर्ज करा देती लेकिन तब और भी लफड़े थे। उसके व्यवसाय के बारे में वे पूछताछ करते। मोटा असामी मान उससे कुछ ऐंठते और फ़ोन भी उसे मिलता नहीं। वह दूसरे पचड़ों में पड़ना नहीं चाहती थी। इन सारी बातों को विचारने के बाद उस ने यही सोचा कि वह डरा धमका कर फ़ोन तो निकलवा ही लेगी। वह फ़ोन ढूँढ़ निकालने के लिए दुगनी कीमत देने की बात का ऐलान करती रहती।

परदों की दुकान से निकल कर फिर ख़यालों में खो गई। उसकी गाड़ी सड़क पर भागने लगी।

फैक्ट्री से फ़ोन कौन ले गया होगा यह पता न चला। सुराजी सारी कसमें खाने के लिए तैयार हो जाती। उसकी बातों से वह यह तो समझने लगी थी कि फ़ोन की चोरी में सुराजी का तो कोई हाथ नहीं है। उस दिन उसकी बहू वहाँ आई ही नहीं थी। उस ने सुराजी से पूछा– 'उस समय तुमने मुझे क्यों नहीं बताया कि उस दिन तुम्हारी बहू फैक्ट्री में आई ही नहीं थी।'

बुढ़िया धार-धार रो पड़ी। बिटिया, बेबी से डर लगता रहा। आप हू से डर लगता रहा।

'तुम सबसे डरती रही?' उसने मासूम अचरज से पूछा।

बेबी उसके काम में उसका दाहिना हाथ थी। बेबी उससे भी अधिक खुश और उत्साहित रहती। समय से पहले ऑर्डर तैयार करती, रात में भी जागकर तैयारी करती, सुबह हो या शाम जब भी उसे आवाज़ देती वह हाज़िर रहती, उसे लगता कि बेबी मिसेज़ तनेजा के प्रति पूर्ण समर्पित है बल्कि जैसे वह उस के परिवार का हिस्सा है।

बेबी अपने बच्चों पर बहुत गर्व करती क्योंकि वे बहुत तेज़ थे। वह अपने बच्चों का बखान करते न अघाती। वे कितने स्मार्ट हैं कितने तेज़ और कितने शौकीन भी।

वह बताती कि तीनों बच्चों के पास महँगे मोबाइल फ़ोन हैं। वह बताती कि उनके सपने बड़े हैं। एक को मार्केटिंग में जाना है और एक को पुलिस में ..वह बताती कि उसकी बड़ी बेटी कोई बिजनेस करेगी। तब तक वह पार्ट टाइम कपड़ों की दुकान में काम करती है और दुकान का मालिक उसके काम से बहुत खुश है बाकी वक़्त में मैनेजमेंट की पढ़ाई करती है। बेबी बताती कि उसकी पगार आठ हज़ार रुपये है वह बताती कि बीच वाला बेटा सुबह-सुबह अखबार बाँटने की नौकरी करता है। अच्छा पैसा पाता है। यह भी बताती कि उसके तीनों बच्चे हर इतवार को मॉल में घूमने जाते हैं। मॉल को वह माल कहती।

बेबी को तो उतने ही पैसे मिलते जितने वह देती फिर भी उसके बच्चे महँगे शौकों की बात करते यह देख मिसेज़ तनेजा हैरान भी होती। बेबी के चेहरे पर धूल सी रंगत बिखरी रहती और होंठों के नीचे हरदम एक शरारती मुस्कराहट रहती। मालकिन अक्सर सुनती कभी बच्चों की फीस नहीं जमा हो रही, कभी घर में केवल चावल खाया जा रहा है। मगर उसकी बातें ऐसी कि रईसी भुलाए न भूले। घर में भूजी भाँग नहीं और सराय में डेरा। बेबी बहुत आशिकाना दिखाई देती। उसके पतले होंठ हरदम आत्मविश्वास से भरकर मुस्कराते। मगर वह अब उनके भीतर की

बेचैनी को देखने लगी थी। उसने दुनिया देखी थी। मिसेज़ तनेजा जानने लगी थी कि ये उसके ख्वाब हैं और बेबी को विश्वास है कि उसके बच्चों के महँगे मोबाइल्स और ब्रांड वाले कपड़ों के शौक पूरे होंगे..तीन बच्चों के बोझ से टूटती बेबी ने बच्चों को नकली जीवन जीने और सपनों को पालने के संस्कार दिए थे। सुराजी ने ही बताया– पति से मार खाती है लेकिन कोई जानता नहीं। सबके सामने मुस्कराती है। सबके सामने उसका पति उसके कंधे पर हाथ रख नाचने लगता, कभी-कभी जब शराब पीकर आता तब कान पर हाथ रखकर खूब गाता।

वह कहती, मैडम उसको हर चीज़ अच्छी ही चाहिए। जींस हो चाहे सरट। चाहे जहाँ से लाओ लेकिन वह सस्ता नहीं पहनता मैडम। मेरा आदमी भी कम शौकीन नहीं, मैडम। बेबी के होंठ पान से लाल रंगे होते।

नया ले लेने के बाद भी उसका ध्यान पुराने फ़ोन पर अटका होता। उसे यह सोचकर बुरा लगता कि उसका रौब शायद उतना नहीं है जितना वह सोचती है वर्ना कौन यह हिमाकत करा सकता था।

वह चटकीले रंगों पर नज़र रखने लगी थी। जब से उसका फ़ोन खोया तब से। यदि कहीं रंग और हँसी दिखाई देती तो उसे शक होता वह मानती थी कि चटकीले रंगों पर सबका अधिकार नहीं। सबकी सीमाएँ पहले से निर्धारित हैं।

उसने सुराजी को बेबी के पीछे लगा दिया था। एक दिन उसने बेबी को रंगे हाथ पकड़ा। कुछ देर तो बेबी मासूम और अनजान बनती रही लेकिन मिसेज़ तनेजा को न बता सकी कि रात गए माल फैक्ट्री से बाहर क्यों गया। उस दिन ही मिसेज़ तनेजा ने बेबी को फैक्ट्री से निकाल दिया। उसके बाद ही सुराजी की आवाज़ कंठ से बाहर हुई। 'मैडम, उस दिन फैक्ट्री में उसके बेटे के अलावा और कोउ न आवा। ऊ फ़ोन उठाय के हमारे सामने लयिगा। हम देख लिहा और कोहू न देखा। तबहीं बेबी हमें निकारे धावे। हमें धमकावे। अब हमें केहकर डर।' कहाँ तो वह सुराजी को गूंगी-बहरी मानती थी।

मिसेज़ तनेजा को बाद में पता चला कि उसके बच्चे बहुत कम पैसों में छुटपुट में काम करते हैं। अपनी पढ़ाई और फीस के पैसे किसी तरह निकालते हैं। जहाँ बेबी बताती रहती कि उन्हें आठ हज़ार रुपये महीने के मिलते हैं वहाँ वे दस्तखत तो आठ हज़ार पर करते हैं लेकिन हकीकत में मात्र दो हज़ार पा रहे होते।

मिसेज़ तनेजा ने अपनी फैक्ट्री का किस्सा अपनी एक सहेली को भी सुनाया। मिसेज़ मथारू बाज़ार और व्यवस्था पर शोध कर चुकी थीं। उन्होंने कहा-'जो बेबी की ज़ुबान पर था वह सब तो उसका और उसके बच्चों का सपना था। महँगा फ़ोन, महँगी गाड़ी, महँगे कपड़े ..और जो कुछ भी महँगा हो सकता था उसका स्वप्न वे क्यों न देखें? आख़िर वे भी तो बाज़ार में हैं। हाँ वे नहीं जानते कि बाज़ार उनका नहीं..बाज़ार सिर्फ उनका है जिन्होंने बाज़ार बनाया है। मगर सपने और चाहतें तो उन सबकी हैं जिनके पास मन है और आँखें हैं हर बात हैसियत से तय नहीं होती है।"

"तो क्या यह अपराध ठीक है? क्या आप राहज़नी और ऐसी छोटी चोरियों और अपराधों के पक्ष में हैं। देखिये समाज में अपराध किस तरह बढ़ रहे हैं। ये ही छोटे घरों के बच्चे करते हैं जिनके पास कोई संस्कार नहीं हैं।" मिसेज तनेजा ने मिसेज़ मथारू से कहा।

मिसेज़ मथारू ने झल्लाहट के साथ कहा – "तो क्या पैसे वाले अपराध नहीं करते ? व्यवस्था को चलाने वाले अपनी जेबें भर रहे हैं हर जगह कमीशनखोरी और चोरी बढ़ती जा रही है। टैक्स की चोरी अलग से। वे संस्कार कहाँ से आते हैं। क्या आप जितना कमाती हैं उसका दस प्रतिशत भी आपके मज़दूर कमाते हैं? जब तक आदमी और आमदनी के बीच फासला होगा..कमज़ोर तबका गाड़ियों के नीचे कुचला जाता रहेगा। मेनहोलों में गिरता रहेगा तब तक।"...मिसेज़ मथारू की बात पूरी भी न हुई थी कि मिसेज़ तनेजा को कुछ याद आ गया। वह आधी बात के बीच में ही उठी और चल दी ..मिसेज़ मथारू उसको जाते हुए देखतीं रहीं। उनके चेहरे पर कुछ सवाल थे लेकिन यह वक़्त मिसेज़ तनेजा अपने विदेशी कुत्ते के साथ बिताती हैं।

मिसेज़ तनेजा का फ़ोन बेबी के बेटे हरीश के पास पहुँचा और वहाँ से उस नाजनीन के हाथ में चला गया। सुराजी ने ही मिसेज़ तनेजा को बताया था कि मोटरसाइकिल के पीछे बैठी वह नाज़नीन उसकी फैक्ट्री में काम करने वाली तेज़ खोपड़ी वाली शन्नो ही थी और मोटरसाइकिल सवार उसका प्रेमी राजू था। सुनकर वह चौंक पड़ी थी। इसके बाद क्या हुआ होगा। क्या उसका राजू शन्नो को धोखा देकर फ़ोन सहित किसी दूसरे शहर निकल जाएगा? वह फिर बाज़ार के सैलाब में किसी दूसरी नाज़नीन की आँखों की बेबसी में दिखाई देगा..जहाँ किसी की हसरत फिर फलेगी और फूलेगी! लब्बोलुआब यह कि हसरत और ज़रूरत के बीच का परदा भी किसी हसीना के आँचल की तरह ही है। आदमी सट्टे के बाज़ार में अनिश्चित हो गया है। मार्किट आदमी के दिमाग से सोचता है। और आदमी मार्किट के। सोचती हुई मिसेज़ तनेजा अपने घर कि ओर निकल गई थी। बाज़ार के हाथों फिसलता हुआ वह फ़ोन फिर किसी को तरसा देगा और कहीं और निकल जाएगा। वह सब जानती है लेकिन विवश है। सुराजी ने बेबी की जगह ले ली है। उसकी तरह ही हँसती है और अब उसको उसकी तरह ही मैडम कहती है। आदमी सबसे कमीनी कौम है। मिसेज़ तनेजा अपने बारे में भी सोचती है। कभी-कभी।

000

कथा-कहानी

उसकी मौत

विकेश निझावन

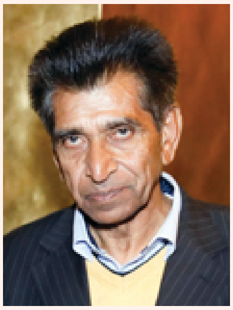

विकेश निझावन
पुलिस ग्राउंड के सामने , अम्बाला शहर
134003, हरियाणा
मोबाइल– 9896100557 ,
8168724620
ईमेल- vikeshnijhawan@rediffmail.com

बाबूजी, आपको यह जानकर सदमा पहुँचेगा कि आज मेरे हाथों किसी का ख़ून हो गया है। ख़ून के इल्ज़ाम में किसी को क्या सज़ा मिलती है, इससे आप भलीभाँति परिचित हैं। सजाए-मौत न भी मिले तो उम्र-क़ैद तो मिलेगी ही और उम्र-क़ैद में आदमी घुट-घुटकर, गल-गलकर मर जाता है। लेकिन सच कहूँ बाबूजी, यह ख़ून मैंने नहीं किया।

आप पूछेंगे, यदि ख़ून मैंने नहीं किया तो फिर मुझे क़ातिल करार क्यों दिया जा रहा है? दरअसल जिस व्यक्ति का ख़ून हुआ है उसके जिस्म पर मेरी ही अँगुलियों के निशान हैं। लेकिन यकीन मानिये बाबूजी, यह ख़ून मैंने नहीं किया। मैं आपको कैसे विश्वास दिलाऊँ। आप मेरी पूरी बात सुनेंगे तो आपको अवश्य ही यकीन आ जाएगा। आपको यकीन आ जाएगा तो आप मेरे गवाह बन सकते हैं और हो सकता है आपकी गवाही से ही मैं इस इल्ज़ाम की सज़ा भुगतने से बच जाऊँ।

इस ख़ून की साजिश आज से सात रोज़ पहले शुरू हो गई थी। सच कहता हूँ, इस साजिश में मैं शामिल नहीं था। आप पूछेंगे यदि मैं इसमें शामिल नहीं था तो मुझे यह सब कैसे पता चला? मुझे कैसे पता चला, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन मैं परमात्मा की कसम खा कर कहता हूँ कि मैं इस साजिश में कतई शामिल नहीं था। और फिर आपको अच्छी तरह याद होगा कि आज से सात रोज़ पहले तो मैं आपके पास ही था। सात दिन की छुट्टियाँ जो ली थीं मैंने। इन सात दिनों में क्या -क्या हुआ, मैं एक-एक बात बिल्कुल सही सही बता दूँगा आपको, ताकि आपके मन में मेरे प्रति कोई सन्देह की भावना न बनी रह जाए।

आज से सात रोज़ पहले मैं आपके पास पहुँच गया था। अपने आने की सूचना मैंने आपको पहले से फ़ोन द्वारा दे दी थी। मेरे आने की आपको कितनी प्रसन्नता हुई थी, इसका अनुमान मुझे पूरा-पूरा हो गया था। और सच कहूँ, आपके व्यवहार से मैं कहीं से पिघल-पिघल गया था।

मैं मानता हूँ कि मैं शुरू से ही कुछ कठोर स्वभाव का रहा हूँ, जैसा कि आप कहा करते हैं। लेकिन मेरे इस कठोर स्वभाव ने आपकी भावनाओं को कभी न समझा हो, ऐसा कतई नहीं है।

और मेरा यह कठोर स्वभाव इस कद्र भी नहीं है कि मैं किसी का खून कर बैठूँ। परन्तु आज जो खून हुआ है, उस व्यक्ति के जिस्म पर मेरी ही अँगुलियों के निशान हैं। लेकिन बाबूजी, मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि यह खून मैंने नहीं किया।

मैं आपके पास सात दिन रहा। इन सात दिनों में ढेर सारी बातें हुई थीं हमारे दरमियान। आप उन दिनों आर्थिक अभाव झेल रहे थे। आपने बतलाया था कि पिछले दिनों अतुल काफी बीमार रहा जिसकी वजह से उसकी आठ दस रोज़ की तन्ख्वाह भी कट गई। आपकी परेशानी देख मैंने उसी वक्त आपके हाथों में दो हज़ार रुपये थमाए थे ताकि आप घर-भर का राशन पानी ला सकें। मैं केवल सात दिन के लिये आया था और मैं नहीं चाहता था, इन सात दिनों में किसी तरह का बोझिल वातावरण इस घर में बना रहे। आप भी सोच रहे होंगे कि मेरी इन बातों का उस खून से क्या वास्ता। क्या आप मेरी उन बातों से, उस व्यवहार से ऐसा जान पाए थे कि मैं किसी का खून करने वाला हूँ। सच कहता हूँ, मैंने अपने चेहरे पर, अपने शब्दों पर, कोई लबादा नहीं ओढ़ा था।

तीन दिन किस तरह गुज़र गए, पता ही नहीं चला था। चौथे रोज़ पता नहीं कैसे, मेरा ध्यान घर की एक-एक चीज़ की ओर उठने लगा था। मुझे लगा था, इस घर की जीव और निर्जीव सभी वस्तुएँ कुछ अव्यवस्थित-सी हुई पड़ी हैं। माँ की टूटी हुई चप्पलें, रज्जो की फटी हुई कमीज़ें, अतुल की बेरौनी आँखें, कुछ भी तो नहीं समझ पाया था मैं। ऐसी हालत तो कभी नहीं थी इस घर की। आपका हर बात में यह कहना कि महँगाई बहुत बढ़ गई है, मुझे अब सही लगने लगा था। यहाँ पर मुझे अपने अकेले होने की वजह से शायद इस बात का अहसास नहीं हो पाया था। मेरे हर माह केवल पाँच हज़ार भेजने से क्या बन सकता है आप लोगों का।

शाम को मैं माँ और रज्जो को बाज़ार ले जाने वाला था। जाते-जाते मैंने आपसे पूछा था, 'बाबूजी, आपको कुछ चाहिए, हम बाज़ार जा रहे हैं।' आपने ज़रा सी झिड़क

लगाते हुए कहा था, 'क्यों पैसा ख़राब करते हो मुझ पर। मुझे कौन सा दफ्तर जाना होता है। जो दो पैसे मुझ पर खर्च करना चाहते हो, मुझे दे दो। कभी मुसीबत में काम आएँगे।

मुझे एक बात अब भी नहीं भूल रही। माँ और रज्जो चीज़ें खरीदते वक्त इस कदर सकुचा रही थीं जैसे मैं उनके लिये बिल्कुल अजनबी हूँ। उनका वो डरा-डरा, सहमा-सहमा चेहरा अब भी मेरे ज़ेहन में उसी तरह छाया हुआ है।

पाँचवें रोज़ रज्जो ने मुझे डरते -डरते बताया था कि वह जल्दी ही कहीं नौकरी करने की सोच रही है। शायद उसने सोचा होगा कि कहीं यह सुनकर मुझे बुरा न लगे। मुझे कतई बुरा नहीं लगा था। आज के वक्त में सभी लड़कियाँ स्वावलम्बी होना पसंद करती हैं। लेकिन इस बात के लिये आप जैसा पुराने विचारों वाला व्यक्ति इजाज़त दे देगा, इसकी सोच मुझे अवश्य पड़ गई थी और मैंने हँसते हुए रज्जो से कहा था, 'बाबूजी से तो पूछ लिया होता।'

'यह सलाह उन्हीं ने ही तो दी है।' यह बात उसने इस ढंग से कही थी जैसे वह आप पर कोई इल्ज़ाम लगा रही हो। ग़ुस्सा तो बहुत आया था उस पर। लेकिन मैं ख़ामोश बना रहा। सच मानिए बाबूजी, आपके बदलते हुए विचारों को देखकर मुझे बहुत खुशी हुई थी।

बाबूजी, आपको मेरी इन बातों से अवश्य ही ऊब और खीझ हो रही होगी। दरअसल, जब से उस व्यक्ति का खून हुआ है, मैं कुछ बौखला -सा गया हूँ। कभी -कभी मुझे वाकई में खुद पर ही संदेह होने लगता है। इसलिए मैं आपको सारी बात बताकर किसी स्पष्टीकरण तक पहुँचना चाहता हूँ। अगर ग़लती मेरी है तो मुझे सज़ा मिलनी ही चाहिए। आप मेरे पिता हैं, आप तो इन्साफ कर सकते हैं।

मेरे यहाँ लौटने में तीन दिन बाकी रह गए थे। उस रोज़ बाज़ार से लौटा तो कदम दरवाज़े पर ही रुक गए। भीतर से आपकी किसी को डाँटने की आवाज़ आ रही थी। मैं तेज़ी से भीतर गया। रज्जो दीवार से सिर टिकाए सुबक रही थी।

'क्या बात हो गई बाबूजी?' मैंने भीतर प्रवेश करते ही पूछा था।

'होना क्या था! अच्छी भली दस हज़ार की नौकरी मिल रही है, और इसे पसन्द नहीं।' आप झुँझलाते हुए बाहर निकल गए थे।

मैं रज्जो के सिर पर हाथ फेरते हुए बोला था, 'कैसी नौकरी है, मुझे भी तो पता चले।'

'भैया, आप इसे नौकरी कहते हैं। यह तो मुझे बेचने की साजिश चल रही है।'

'रज्जो!' मैं चौंका था।

'हाँ भैया! जिस व्यक्ति ने यह नौकरी दिलाई है, बाबूजी उसके लड़के से मेरी शादी करना चाहते हैं और वह लड़का।'

'तुम्हें यह सब कैसे पता चला?' मैंने उसकी बात लगभग काट दी थी।

'आज सुबह बस स्टॉप पर मेरा पीछा करता आ गया था। उसी ने सब कुछ बताया।'

उस वक्त मैं यह नहीं समझ पा रहा था कि आप ग़लत हैं या रज्जो। भला आप उसका बुरा क्यों सोचने लगे। और मुझे रज्जो की नादानी पर हँसी आ गई थी।

अगले रोज़ शाम को मैं लौटने की तैयारी करने लगा था। अटैची में कपड़े बगैरा डाल रहा था तो अतुल आ गया। मेरे सामने ही बैठा वह कहीं शून्य में ताकने लगा था। अटैची में अपना गर्म कोट डालते हुए मेरे हाथ सहसा रुक गए। 'अतुल!' मैंने आहिस्ता से पुकारा था उसे।

'हूँ!' किसी गहरी सोच में डूबा था वह।

'यह कोट तो पहन ज़रा!'

'कोट!' वह चौंका था, 'आपका कोट मुझे

कैसे पूरा आएगा?'

'पहन तो ज़रा। मुझे छोटा हो गया है। वहाँ नया सिलने दे कर आया हूँ, जाते ही मिल जाएगा।' यह बात झूठ ही कही थी मैंने। लेकिन इतनी सर्दी में अतुल को बिना कोट के देख मुझे अच्छा नहीं लगा था।

'एक बात पूछूँ भैया?' उसने कोट पहनते हुए कहा।

'हाँ हाँ, पूछ तो!'

'आपको कितनी तनख़्वाह मिलती है?' उसका यह पूछना मुझे बहुत अजीब लगा था।

'क्यों, तुझे क्या ज़रूरत आन पड़ी यह सब पूछने की। कुछ पैसे -वैसे चाहिए क्या?'

'नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप जब से आए हैं, हम पर पैसा ही पैसा खर्च करते जा रहे हैं। क्या वाकई में आपकी इतनी तनख़्वाह है?'

'तो तू सोच रहा है, कोई डाका मार कर लाया हूँ।' मैं हँस दिया था।

'नहीं, आप मेरी बात ग़लत समझ गए। दरअसल आप जैसा सोचते हैं, यहाँ वैसा नहीं है। किसी चीज़ की कमी नहीं है यहाँ।'

'सचमुच, यहाँ तो सब कुछ नज़र आ रहा है। रईसों जैसा खाना-पीना, ओढ़ना।' मैंने व्यंग्य किया।

'भैया, आप समझते क्यों नहीं।' मुझे लगा था, वह किसी बात के लिये बहुत होशियार बनने की कोशिश कर रहा है। 'तू कहना क्या चाहता है? जो मैं नहीं समझा, तू ही समझा दे।' मैं गुस्से में आ गया था।

'मैं वही समझाना चाहता हूँ भैया। पिछले मास मैं कतई बीमार नहीं था। पूरा मास ऑफ़िस जाता रहा। पूरी तन्ख्वाह मिली थी मुझे, जो मैंने बाबूजी के हाथ पर रख दी थी। बाबूजी ने सब झूठ कहा था आपसे।'

'झूठ कहा था!' मैं जड़-सा हो आया था।

'किसलिए?' बड़ी हिम्मत करके पूछा था मैंने।

'इसलिए कि आप आओ और हमारी अच्छी हालत देखकर कुछ दिए बिना ही न लौट जाओ।' उसकी आवाज़ काँप रही थी और वह पसीने से तर हो रहा था। बाबूजी, मैं नहीं चाहता कि आप अपने बच्चों की नज़र में ही इस कदर गिर जाएँ। स्थिति को सँभालने के लिये मैंने कह दिया था, 'जानते हो, सब कुछ तुम्हारे लिये ही तो कर रहे हैं वे। दो पैसे जोड़ लेंगे तो इसमें तुम्हारा ही भला होगा।'

मैंने आपसे कोई गिला नहीं किया था, क्योंकि मैं समझ गया था कि आप किसी न किसी तरीके से भविष्य के लिये कुछ जोड़ लेना चाहते हैं। पाँच बजे की गाड़ी पकड़नी थी मुझे। आपसे विदा होते वक्त मैंने आपसे कहा था,'बाबूजी, आप किसी बात की चिन्ता मत किया करें। रज्जो के लिये जल्दी ही मैं कोई अच्छा-सा लड़का ढूँढ़ लूँगा।' आपकी आँखें तरल हो आई थीं। चश्मे को पगड़ी के पल्लू से पोंछते हुए आपने कहा था, 'हो सके तो अगले मास पैसे थोड़े ज़्यादा भेजना।'

स्टेशन तक माँ और अतुल छोड़ने आए थे मुझे। गाड़ी आने में अभी कुछ वक्त था। अतुल कहीं भीड़ में टहलने लगा था। माँ ने चिंतित होते हुए कहा था, 'अपनी सेहत का ध्यान रखा कर।'

'अच्छा -भला तो हूँ। तुझे मेरी चिंता क्यूँ होने लगती है।'

'अच्छा सुन!' माँ ने कुछ उदासी भरी नज़रों से मेरी ओर देखा था।

'क्या बात है माँ?' मैं किसी शंका से घिर आया था।'

'ये कुछ गहने हैं।' माँ ने अपनी धोती के बीच ठुँसी पोटली निकाली, 'इन्हें साथ ले जा।'

'किसलिए?' मैं विस्मय में पड़ आया था।

'बहू के लिये बनवा कर रखे थे मैंने।'

'बहू के लिये!' मैं ठहाका मार कर हँसा था, 'बहू को तो आ लेने दे और फिर तू कहीं भागने की तैयारी में है क्या?'

'भागने की तैयारी में होती तो साथ लेकर जाती। मैं अब इस घर में कुछ नहीं रखना चाहती।'

'क्यों?' मैं लगभग चिल्ला उठा था।

'तुझे नहीं पता, तेरे बाबूजी की ऐयाशी की आदतें अभी भी नहीं छूटीं। घर में जो कुछ भी आता है, मिट्टी में मिला कर आते हैं।' एकाएक मेरे सामने अतुल और रज्जो का चेहरा घूम गया था।

'इतने दिन रहा, पहले क्यों नहीं बताया?'

'हिम्मत ही नहीं बंधी। और फिर तू क्या करता?'

मन कड़वाहट से भर उठा था। तभी गाड़ी आने का शोर हुआ और स्टेशन पर भाग -दौड़ मच गई।

'हम घर चलेंगे माँ।' मैंने आहिस्ता से कहा।

'क्यों?'

'पूछना चाहता हूँ बाबूजी से कि यह बर्बादी किसलिए?'

'जिस बात का जवाब मैं सारी उम्र नहीं पा सकी, तू दो घड़ी में क्या पा लेगा?'

अतुल पास आ गया था। सामान उठाकर गाड़ी की तरफ जाने लगा तो मैंने उसे रोक लिया।

'माँ, हम घर चलेंगे।' मैंने पुन: अपनी बात पर ज़ोर देते हुए कहा था।

'जल्दी चल, खड़ा क्यूँ हो गया तू। गाड़ी थोड़ी देर रुकती है, कोई अच्छी सी जगह ढूँढ़ देना।' माँ ने अतुल को लगभग आगे धकेल दिया था। अतुल कुछ भी समझ नहीं पाया था हमारी बात।

'माँ!' मैं चिल्लाया था।

'पागल मत बन। जितना भी सँभाला है, बड़ी मुश्किल से सँभाला है मैंने उन्हें।' माँ चलते-चलते बोली, 'आगे से पैसे कम भेजा कर। पैसा नहीं होगा तो अपने आप आएँगे रास्ते पर।'

मैं गाड़ी में कब बैठा, गाड़ी कब चल पड़ी, अब कुछ याद नहीं आता। अब तो इतना याद है बाबूजी, मेरे यहाँ पहुँचते ही उस व्यक्ति का खून हो गया। खून के इल्ज़ाम में किसी को क्या सज़ा मिलती है, आप अच्छी तरह जानते हैं। सजाए-मौत न भी मिले तो उम्र-क़ैद तो मिलेगी ही। और उम्र-क़ैद में आदमी घुट-घुटकर, गल-गलकर मर जाता है। लेकिन मैं मरना नहीं चाहता। परन्तु एक निर्दोष व्यक्ति तभी बच सकता है यदि उसके पास कोई अच्छा खासा सबूत हो या फिर वह असली कातिल को ढूँढ़ निकाले। बाबूजी, आप असली क़ातिल को ढूँढ़ निकालने में मेरी मदद करेंगे?

000

अँधेरों के बीच

अरुणा सब्बरवाल

अरुणा सब्बरवाल
2, रस्टिंग्ज़, वेस्ट फ़ील्ड पार्क, हैच एंड,
पिन्नर HA5 4JF, यू के
मोबाइल- 07557944220
ईमेल– Arun.sabharwal45@gmail.com

वह सुबह की मीठी-मीठी नींद का आनंद ले रही थी। अचानक उसे लगा अभी तक अलार्म क्यूँ नहीं बजा ? आज स्नूज़ का समय इतना लम्बा कैसे हो गया? उसने उनींदी आँखों से घड़ी देखी। साढ़े छ: बज चुके थे। हैरान थी, यह कैसे हो गया ? उसने तो स्नूज़ का बटन दबाया था। घर में हाफड़ा - धापड़ी मच गई। रसोई से चिल्लाई रोहन, रुचि प्लीज़ जल्दी करो। देर हो रही है। बच्चों के लंच के डब्बे तो उसने रात को ही तैयार कर लिए थे। ख़ुद वह लंच स्कूल में बच्चों के साथ ही करती है। यह उसके ड्यूटी का हिस्सा है। सभी तैयार हो कर कार में बैठ गए। कार में बैठते ही उसे याद आया कि उसने टाइम- टेबल तो देखा ही नहीं। भागी, भीतर जा कर देखा। आज स्वीमिंग सेशन था। फटा-फट उसने स्वीमिंग किट उठायी और कार में बैठ गई। स्वीमिंग ..? स्वीमिंग का सोच कर, थोड़ा मुँह सा बनाया, गहरी साँस ली और बोली...

"रोहन, तुमने अपनी स्वीमिंग तथा पी.ई किट रख ली है क्या ?" उसने उत्तर में सिर हिला दिया।

निकलते -निकलते दस मिनट और लग गए। सड़कों पर सुबह के ट्रैफ़िक को कौन नहीं जानता। निकलने में एक मिनट का अन्तर पड़ जाए तो समझो आधा घंटा फ़ालतू लग जाता है। स्कूल के रास्ते में तीन सुरंगें आती हैं। उनमें ट्रैफ़िक का प्रवाह बहता रहता है। एक सुरंग से तो निकल गई, दूसरी सुरंग में एक कार ख़राब खड़ी थी। इस कमबख़्त को आज ही ख़राब होना था क्या ? वह बड़बड़ाई। रास्ता बदलने के अतिरिक्त उसके पास और कोई विकल्प नहीं था। बड़ी मुश्किल से सटी-सटी कारों की क़तार से निकल कर चौराहे तक पहुँची। वहाँ उस से भी बदतर हाल था। ट्रैफ़िक बढ़ता जा रहा था बेलगाम-बेहताशा, दो रास्ते बंद थे। बारिश ने भी आज ही बरसना है। सुरंग का ट्रैफ़िक भी वहीं आ पहुँचा था। रेडियो भी बार-बार समय बता कर परेशानी और बढ़ा रहा था। ट्रैफ़िक लाइट पर खड़े-खड़े उसने स्कूल फ़ोन किया। स्थिति बताई, कि उसे देर हो जाएगी पर पता नहीं कितनी? ख़ुश थी कि स्वीमिंग मिस हो जाएगी। क्लास रूम तो उसने शुक्रवार को ही तैयार कर दिया था।

अभी कार पार्क कर ही रही थी कि उसे बच्चों की ट्रांसपोर्ट आती दिखाई दीं। वैसे सभी ट्रांसपोर्ट दस- दस मिनट के अंतराल पर पहुँचती हैं। ट्रांसपोर्ट में सेफ़्टी के सभी उपकरण लगे

होते हैं। बच्चों को उतारते-उतारते भी समय लग जाता है। उसने देखा मार्गरक्षी और संगरक्षक बच्चों को सुरक्षा से क्लास में ले जा रहे थे। क्यूँकि इस स्कूल का प्रत्येक बच्चा अनन्य है। एकमात्र है। अपने आप में अनूठा है। उसने कोट खूँटी पर टांगा, बैग लॉकर में रखा। जैसे ही क्लास में पहुँची तीनों सह कर्मी बड़े उत्साह से बोले .....

"थैंक गॉड सिमरन, यू आर हियर।"

तीनों अपने-अपने बच्चों को व्यवस्थित कर चुके थे। कुल मिला कर कक्षा में दस बच्चे हैं और पाँच स्टाफ़। हर बच्चा अपने आप में विशेष है। सबकी ज़रूरतें भी विशेष हैं। सभी बच्चे 'स्पेशल एजुकेशनल नीड्स' के हैं। यह स्कूल लंदन की चेशर काउंटी में है। यहाँ बच्चे दूर-दूर से आते हैं।

दस बजने को थे। अभी तक उसे रोज़ी कहीं दिखाई नहीं दी। सिमरन की अधीरता बढ़ने लगी। उसने इधर-उधर देखा। उसकी स्विमिंग किट वहीं टँगी थी। वह टॉयलेट में भी नहीं थी। उसकी उत्सुकता ने उसे लगभग हर संभव स्थान पर देखने पर विवश कर दिया था। उसे चिंता होने लगी। वह पता लगाने वाली थी ही कि, रोज़ी के साथ आने वाले बच्चे आ गए हैं कि नहीं ? प्रिन्सिपल की ओर से संदेश आ गया, कि ब्लू स्टार सर्विस की टैक्सी ब्रेक- डाउन हो गई है। शायद देर हो जाएगी। सिमरन ने चैन की साँस ली।

रह-रह कर सिमरन की नज़र कमरे में लगी घड़ी पर जा रही थी। शायद उसे अभी भी रोज़ी की प्रतीक्षा थी। उसका तो क्या रोज़ी के बिना किसी का मन नहीं लगता। वह अल्हड़ सी बेख़बर महकती-चहकती खिलखिलाती आते ही वातावरण में संगीत बिखेर देती है। दोपहर के ढाई बज चुके थे। जल्दी ही बच्चों के घर जाने का समय हो गया था। शिक्षकों ने अगले दिन के लिए कक्षा को तैयार किया। सिमरन को रास्ते में रोहन को भी लेना था।

"मम्मी, दो सप्ताह पश्चात् हमारी पेरेंट्स ईवनिंग है। प्लीज़ आप बता देना कि कौन सा समय आपके लिए सुविधाजनक रहेगा।" इतना कह कर रोहन विडियो गेम्ज़ में मस्त हो गया।

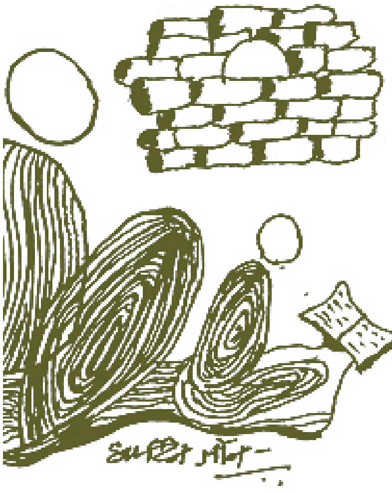

पेरेंट्स ईवनिंग का सुनते ही सिमरन की आँखों के सामने स्कूल की पहली पेरेंट्स ईवनिंग घूमने लगी। जिसका मिसेज़ रॉबर्ट (रोज़ी की मम्मी)को बड़ी बेचैनी से इंतज़ार था। पेरेंट्स ईवनिंग को सिमरन ने उन्हें अपना परिचय देते कहा था-

"गुड ईवनिंग मिसेज़ रॉबर्ट, मैं सिमरन, रोज़ी की शिक्षिका। बैठिए कुछ पूछना चाहेंगी?"

"जी, मुझे तो हर पल रोज़ी की चिंता लगी रहती है। चौदह वर्ष की हो गई है किंतु, अभी तक दो, तीन वर्ष के बच्चे भाँति बर्ताव करती है। चिंतित हूँ दो वर्ष में एडल्ट ट्रेनिंग सेंटर में चली जाएगी, वहाँ कैसे निर्वाह करेगी ? कब समझ आएगी ? कब होगी बड़ी ? कब इसे अपने अच्छे -बुरे की समझ आएगी ?"

"चिंता न करें, आपको जान कर ख़ुश होगी कि, रोज़ी के व्यवहार में धीरे-धीरे काफ़ी सुधार आ रहा है। एक्टिविटी को बार-बार दोहराने से, दिखाने से समझने लगी है। मूडी है, मर्ज़ी की मालिक है। एक बार जो बात उसके दिमाग़ मैं बैठ गई तो उसी पर अड़ जाती है, बात को मनवा कर रहती है। हाँ ....स्वीमिंग की बहुत शौकीन है। हर वक़्त स्वीमिंग किट लिये घूमती रहती है। स्वीमिंग का सुनते ही चेहरा खिल उठता है, झट पट तैयार हो जाती है। बड़ी प्यारी बच्ची है। इस लम्बी, चंचल मोहक लड़की को देख कर लगता था मानों भगवान् ने उसे ख़ाली समय में तराशा हो। चेहरा सदा खिला-खिला रहता है।"

अभी सिमरन ने बात समाप्त ही नहीं की थी कि रोज़ी की माँ उसकी बात काटते बोलीं-

"कहतीं तो आप ठीक हैं, भगवान् भी कभी-कभी बड़ी बेइंसाफी कर देता है। देखो न लगता है रोज़ी को तराशते-तराशते उनकी आँख लग गई होगी।" वह बोलती जा रही थी ....उसके आँसू निरंतर बहे जा रहे थे.. रोज़ी के जन्म के पश्चात् दो तीन वर्ष तक तो हमें पता ही नहीं लगा। रोज़ी और बच्चों की तरह नहीं थी। चेहरे पर भाव कम ही आते थे, कुछ महसूस ही नहीं होता था। रोज़ी के लिए संबंध स्थापित करना कठिन था। बोलना भी शुरू नहीं किया था। जब दूसरे बच्चों की तुलना में वह बहुत पीछे रहने लगी। हमें चिंता होने लगी। हर एक अस्पताल छान मारा। लक्षणों को पहचानने में दो तीन वर्ष और लग गए। उन्होंने बताया रोज़ी पैदाइशी ऑटिस्टिक है। यह शब्द हमारे लिए बिलकुल नया था। उन्होंने हमें समझाया कि ऑटिज्म को स्वलीनता या आत्मकेंद्रित भी कहते हैं। हिन्दी में इसे लोग 'आत्मविमोह' और 'स्वपरायणता' भी कहते हैं। जब उन्होंने बताया कि यह जन्म के समय या उसके शीघ्र आरम्भ होने वाली एक जीवन भर की विकलांगता है। हर बच्चे के लक्षण अलग -अलग होते हैं। इतना सुनते ही मुझे लगा मानों मेरे कलेजे में किसी ने घूँसा मार दिया हो। जो सुन रही थी, सोच से बाहर था। हमारी तो जान ही निकल गई। जैसे-जैसे समय निकलता गया, नए-नए लक्षणों का पता लगता गया।"

रोज़ी की माँ, नहीं जानती थीं कि सिमरन उसकी केस हिस्ट्री पढ़ चुकी थी।

"मिसेज़ रॉबर्ट, आप कुछ और पूछना चाहेंगी ?

"कृपया मुझे जूली कहिए, घर में रोज़ी अपनी बात समझाने का प्रयास तो बहुत करती है किंतु बात शुरू नहीं कर पाती, उसके होंठों पर शब्द आते-आते रुक जाते हैं। बहुत छटपटाती है बोलने के लिए। अपनी बात न समझाने की कुंठा के कारण अक्सर आपे से बाहर हो जाती है, उस वक़्त उसे क़ाबू करना या समझना बहुत कठिन हो जाता है। न जाने कब समझने और समझाने के क़ाबिल हो

पाएगी ? इसी बात की प्रतीक्षा है।''

"जूली जी, बहुत धैर्य चाहिए। धीरता से उसका दिल जीतना होगा। उसके नज़रिये से देखना होगा। सोचती क्या है ?, क्या चाहती क्या है ? उसके दिमाग़ में चल क्या रहा है ? उसका मूड कैसा है, स्नेह से उसके साथ सहजता से विश्वास का संबंध स्थापित करना होगा। कुछ नया सिखाते वक़्त बहुत स्नेह से दिखा-दिखा कर दोहरा-दोहरा कर, समझाना होगा। धैर्य से ऐसे बच्चों के व्यवहार को संचालनीय कर सकते हैं।"

जूली तो चली गई, रास्ते भर सिमरन जूली के बारे में ही सोचती रही। सोच में वह अपनी ड्राइव से आगे निकल गई।

"मॉम....मॉम कहाँ जा रही हो ?" रोहन चिल्लाया ....

घर पहुँचते ही उसने अपना बैग रखा और धड़ाम से सोफ़े पर बैठ गई। थोड़ी देर बाद उठी और घर के कामकाज में जुट गई। पति विशाल का भी अस्पताल से आने का भी समय हो गया था। तीनो रात का खाना खा रहे थे। सिमरन के मस्तिष्क में अभी तक जूली की बातें घुम रही थीं। विशाल ने उसकी सोच की शृंखला तोड़ते कहा ....

"सिमरन, बहुत देर से देख रहा हूँ, तुम बैठी हमारे पास हो, ध्यान तुम्हारा कहीं और है? क्या सोच रही हो ?"

सिमरन सकपकाते बोली "कुछ नहीं, कुछ नहीं," फिर गहरी साँस लेते बोली, "अब आपने पूछा है तो, यह बताओ... क्या ऑटिस्टिक बच्चे कभी पूर्ण रूप से स्वावलंबी हो सकते हैं ?"

"अरे तुम तो स्वयं विशेषज्ञ हो, जानती हो 'ऑटिज़्म' एक इंद्रधनुष की भाँति है। सबके अपने-अपने अलग लक्षण कह लो या विशेषता कह लो, होते हैं। प्रत्येक बच्चा अपने आप में अद्बितीय या अनोखा होता है। प्रत्येक बच्चे के ऑटिज़्म का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। कोई दस प्रतिशत कोई पचास और कोई सौ। अधिकतर लड़कों में पाया जाता है। कभी - कभी अमीर बच्चे जिन्हें सौ प्रतिशत दायी पालती है, या फिर माँ से दूर रह कर पलते हैं उनके व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सकता

है, धीरे-धीरे, धीरज के साथ। हाँ पैदाइशी ऑटिस्टिक बच्चों में लगातार बार-बार उस क्रिया को दोहराते हुए, या फिर वस्तु को दिखा -दिखा कर उन्हें थोड़ा स्वाधीन बनाया जा सकता हैं।"

इस बात से सिमरन को याद आया, उस दिन स्कूल में बाहर खेलने का समय हो चुका था। बीस मिनट के खेल के पश्चात् सारे बच्चे अपनी-अपनी कक्षा में जा कर बैठ चुके थे। आधे घंटे के पश्चात् स्कूल में फ़ायर ड्रिल का अभ्यास करना था। फ़ायर ड्रिल की घंटी बजते ही सभी बच्चों को प्ले ग्राउंड में ले जाया गया। पाँच मिनट बाद कक्षा में अंदर जाने की घंटी बजी तो रोज़ी लड़खड़ाती हुई सीधी डाइनिंग हॉल में कुर्सी पर आ कर बैठ गई। बहुत प्रयास किया उसे कक्षा में वापस ले जाने का, किंतु वह टस से मस नहीं हुई। उसने ग़ुस्से में हाथ पाँव मारने आरम्भ कर दिए। उस पर क़ाबू पाना असम्भव हो गया। अभी दोपहर के खाने में एक घंटा बाक़ी था। मेज़ कुर्सियों को जकड़ कर टाँगे मारती रही। क्यूँकि स्कूल में सदा पहली घंटी बाहर खेलने जाने के लिए बजती है। दूसरी अन्दर आने के लिए। तीसरी घंटी दोबारा बाहर जाने के लिए बजती है। चौथी घंटी बाहर से सीधे खाने के कमरे में जाने के लिए। यह उसकी समझ से बाहर था। क्यूँकि यह उसकी नित्यचर्या से भिन्न था। रोज़ी के हिसाब से तो वह चौथी घंटी थी।

देखते -देखते आज आकाश में न जाने कहाँ से झुंड के झुंड बादल घिर आए। बादलों की गुड़-गुड़ ध्वनि के साथ दिन में साँझ उतर आई। बारिश शुरू हो गई। पहले गुड़ -गुड़ फिर बूँदा-बाँदी, फिर मूसलाधार बारिश, बारिश का मतलब नो प्ले टाइम इन प्लेग्राउंड। कभी-कभी बारिश होना भी स्कूल के लिए बहुत चिंता का विषय बन जाता है। बाहर न जाने के कारण, उस दिन बच्चे बहुत उत्तेजित हो कर क़ाबू से बाहर हो जाते हैं।

रास्ते भर सिमरन को यही चिंता सताती रही। उस दिन, बच्चों की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए हॉल में मुलायम गद्दे और मुलायम खिलौने रखवा दिए। पूरा स्टाफ़ उनके साथ खेलने में लगा था। रोज़ी कहीं दिखाई नहीं दी। उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते स्कूल का कोना-कोना छान मारा। सबसे पहले अपने कमरे में जा कर रोज़ी की स्वीमिंग किट देखी, किट वहीं थी। स्टाफ़ रूम, डाइनिंग हॉल, सभी क्लास रूम, बाथरूम में देखा, रोज़ी कहीं नहीं थी। बाहर के सभी दरवाजों को ताला लगा था। हैरानगी की बात थी कि गई तो गई कहाँ ?

सामने से प्रिंसिपल ने सिमरन को इशारे से बुलाते कहा"मेरे वॉशरूम में जा कर देखो।"

वहाँ रोज़ी ज़मीन पर बेसुध, बेख़बर शांत बैठी थी। वॉशरूम में पड़े सभी टॉयलेट रोल को उसने छोटे-छोटे टुकड़ों में फाड़ कर, तरतीब से ढेरियाँ बना रखीं थीं। सिमरन को देखते ही उसकी आँखों में चमक छा गई। उसकी आँखों की चमक के उगने और मिट जाने के कारणों का जान पाना सिमरन के लिए आसान नहीं था। रोज़ी उन काग़ज़ के टुकड़ों को सिमरन के सिर पर डाल-डाल कर, हँसती-हँसती गुनगुनाने लगी ...हेयर कम्ज़ द ब्राइड...., मानों जैसे कोई क़िला जीत लिया हो। सिमरन का गंभीर चेहरा देख कर पहले तो रोज़ी ज़ोर से खिलखिला कर हँसी। फिर अपना चेहरा दोनों हाथों से ढक लिया। सिमरन ने रोज़ी को दिखाते हुए काग़ज़ के टुकड़ों को बैग में डालने को कहा। क्लास-रूम में जा कर रोज़ी मेज़ पर अपना सिर दोनों बाहों में से छुपा कर बैठ गई। थोड़ी देर बाद, अचानक रोज़ी उठ कर सिमरन को चूमने लगी, शायद यह उसका माफ़ीनामा था। अब तक बारिश थम चुकी थी।

आज की घटना ने सिमरन को बेचैन कर दिया। उसकी बेचैनी जब हद से गुज़र जाती है तो वह कोट पहन कर सैर को निकल पड़ती है। रोज़ी की ओर एक खिंचाव था जो उसे पल-पल मासूम के बारे में सोचने पर मजबूर कर देता है। यह जानते हुए भी कि उसके हाथ बँधे हैं। वह कुछ कर नहीं सकती।

आज हवा में पतली सी धुँध थी, जो पतझड़ के आरम्भ में पेड़ों के इर्द-गिर्द होती है। मौसम साफ़ होता दिखाई दे रहा था। इतने में सिमरन ने देखा सामने से निश्चल, निर्मल, रोज़ी अपनी संगरक्षिता के साथ झूमती, ख़ुशी बिखेरती चली आ रही थी। सिमरन को देखते ही न जाने उसे क्या हो गया कि वह वहीं बिफर गई, अड़ कर फ़र्श पर बैठ गई। फिर बेपरवाह पैर पटक-पटक कर ग़ुस्से में वहीं लेट गई। क्यूँ ? यह जानना असंभव था। बहुत कोशिशें कीं उसे क्लास में लाने की, ज़िद्दी लड़की टस से मस नहीं हुई। हार कर सिमरन को उसकी स्वीमिंग किट दिखानी पड़ी। उसे देखते ही रोज़ी बिजली की भाँति उठी और सिमरन से लिपट गई।

स्वीमिंग रोज़ी की मनपसंद ऐक्टिविटी थी। (हाईड्रोथैरपी) जल चिकित्सा के पूल में तैरना रोज़ी के उपचार का भाग था। स्वीमिंग सूट को देखते ही, उनके चेहरे पर मुस्कान बिखर गई। पूल में जाने को ही थे और रोज़ी ग़ायब थी। सिमरन ने अन्दर देखा रोज़ी कमरे में हाथ-पैर फैलाए ज़मीन पर लेटी हुई थी। मानों सम्भोग के लिए तैयार हो। उठने को तैयार ही नहीं थी। ऐसा वह कई बार कर चुकी थी। सिमरन जानती थी, कि वह चाहती क्या है। ऐसा व्यवहार बहुत चिंता का विषय था। इस बारे में सिमरन अपनी एक सहशिक्षिका से ज़िक्र भी कर चुकी थी। इतने में संदेश आया कि आज पूल इस्तेमाल नहीं हो सकता। इससे पहले सेशन में एक बच्चे ने इसमें पाखाना कर दिया है। सिमरन जानती थी कि रोज़ी अब तूफ़ान खड़ा कर देगी। उसे समझाना असंभव हो जाएगा। वही हुआ जिसका डर था। पूल में नहीं जा सकते, यह जान कर वह तो बिफ़र गई, जहाँ बैठी थी वहीं फुनकारे मारने लगी। दहाड़ -दहाड़ कर रोने लगी। उसका हलक -

हलक रोना देखा नहीं गया। वह नहीं जानती थी, कि वह क्या कर रही थी। आसानी से मानने वाली नहीं थी। रो-रो कर उसकी नाक भी लाल हो गई थी। जो कुछ हो रहा था उसकी समझ के बाहर था। उसके करुणामय चेहरे ने सिमरन के भीतर एक चुभन सी ला दी। वह प्रश्नों के भँवर में घिर गई। एक बेज़ुबान के साथ कौन, कैसे और क्यूँ कोई ऐसा कुकर्म कर सकता है ? कौन हो सकता है इतना निर्दयी ? उसकी सोच से परे था। नित्यकर्म से हट कर कुछ भी करना रोज़ी के लिए नामुमकिन था। सिमरन ने ठान लिया था कि वह पता लगा कर रहेगी।

समय बढ़ता जा रहा था। उठते ही सिमरन ने पर्दा हटा कर खिड़की से बाहर देखा। आज सर्दियों की फीकी-फीकी सी धूप खिली थी। हवा में खुनक थी। थोड़ी -थोड़ी बर्फ़ पड़ रही थी। सड़क साफ़ करने वालों ने बर्फ़ एक तरफ़ कर के सड़क के किनारे बर्फ़ के गंदले ढेर लगा दिए थे। सिमरन थोड़ी चिंतित थी, कि अगर बर्फ़ नहीं रुकी तो क्या होगा ? फ़्रीयोंना उसकी सहायक भी स्कूल आएगी या नहीं ? क्यूँकि शनिचर को उसकी माँ का फ़्यूनरल था। स्कूल पहुँचने से पहले ही बर्फ़ पड़नी भी थम गई और फ़्रीयोंना भी सामने खड़ी थी। अब तक सभी बच्चे आ चुके थे। फ़्रीयोंना उदास थी। सिमरन ने उसे रोज़ी के साथ काम करने को कहा, अचानक कुछ गिरने की आवाज़ आई, सभी चौंक पड़े। जिन खिलौनों से फ़्रीओना रोज़ी को सिखा रही थी, वो सब ज़मीन पर पड़े थे। रोज़ी ने हाथ मार कर सबको ज़मीन पर गिरा दिया था, और फ़ियोना के गले में हाथ डाल कर सिर के साथ सिर जोड़ कर उसे प्यार कर रही थी। रोज़ी को एहसास हो गया था कि आज फ़्रीओना उदास है।

दोपहर को स्वीमिंग सेशन था। जैसे ही सिमरन ने स्वीमिंग किट निकाल कर दिखाई, तीनो बच्चों अपनी किट निकाल कर तैयार हो गए। पूल में जाने से पहले सिमरन ने सूज़न को समझाया "बच्चों के पास कभी भी आगे से मत जाना, वह अपनी रक्षा के लिए तुम पर हमला भी कर सकते हैं।" सूज़न एक सप्ताह के लिए स्कूल में वर्क एक्सपीरियंस के लिए आई थी। सिमरन पूल में रोज़ी के साथ स्वयं जाने वाली थी, पूल में आज रोज़ी अधिक मचलने लगी। बेहूदा सी हरकतें करने लगी। बार-बार सिमरन का हाथ पकड़-पकड़ कर अपने गुप्त अंगों पर रखने की कोशिश करती। सिमरन ने उसका ध्यान दूसरी ओर करने का बहुत प्रयास किया, विफल रही। रोज़ी के इस व्यवहार से सिमरन भीतर से असहज हो उठी। रोज़ी का ऐसा व्यवहार उसके मस्तिष्क में हथोड़ों की तरह बजने लगा। सिमरन ने ठान लिया था कि प्रिंसिपल से ज़रूर बात करेगी। स्विमिंग के बाद जैसे ही वह क्लास में पहुँची उसने अपनी सहकर्मी मिस विलियम से अकेले में विस्तार से बात की। उसने भी यही सुझाव दिया है कि "जब तक यक़ीन न हो तब तक किसी से ज़िक्र मत करना। हमें नहीं पता घर में कौन-कौन है, घर के हालात कैसे हैं ? कितने बहन-भाई हैं ? पैसे कमाने वाला कौन है ?"

“चिंता मत करो, मिल कर सोचते हैं। अगर अभी प्रिंसिपल से बात की, तो वह यह मामला इसी पल सोशल सर्विसिज़ को सौंप देंगी। सोशल सर्विसिज़ वाले रोज़ी को एक दम ले जाएँगे। मामला बेहद जटिल हो सकता है। थोड़ा और निरीक्षण करो। उसकी मम्मी से सरसरी बात कर के पता करो कि घर पर कौन-कौन है ? कौन आता जाता है ? क्या उम्र है ? इत्यादि।" मिस विलियम ने सुझाव देते कहा।

सिमरन के लिए रोज़ी अब अबूझ पहेली बनती जा रही थी। उसके लिए इस क्रूर सच्चाई को जानना आवश्यक हो गया था। अब प्रश्न यह उठता था कि रोज़ी की मम्मी को बुलाया कैसे जाए ? इस बात को अभी दो दिन ही हुए थे कि अचानक एक दिन रोज़ी की मम्मी का फ़ोन आया कि, वह सिमरन से मिलना चाहती है। सिमरन ने मिसेज़ रॉबर्ट को अगले दिन मिलने का समय दे दिया।

जब वह पहुँची बहुत परेशान सी लग रही थी। सिमरन को देखते ही मिसेज़ रॉबर्ट फूट पड़ी और बोली "मिस समझ नहीं आता क्या करूँ। आजकल रोज़ी बहुत परेशान करती है। उसका व्यवहार बहुत भी अजीब सा होता जा रहा है। हर वक़्त शरारतें करती रहती है। छेड़खानी करती है। चलते-चलते बहनों को धक्का दे देती है। बड़े भाई जेम्ज़ के साथ ख़ूब पटती है। सदा नोक-झोंक चलती रहती है। उस पर नियंत्रण रखना असंभव हो गया है। समझ नहीं आता क्या चाहती है ? कभी-कभी घंटों अपनी दुनिया में ही मस्त रहती है।"

"आजकल स्कूल में भी यही हाल है। सब्र से हमें पता लगाना होगा रोज़ी सोचती क्या है ? कहना क्या चाहती है ? घर और बाहर, उसके चारों ओर क्या हो रहा है, यह देखना होगा कि उसके दिमाग़ में चल क्या रहा है ? बहुत प्यार और धैर्य काम लेना होगा। आप उसके साथ अकेले समय बिताएँ शॉपिंग ले कर जाएँ, उसे मूवी ले जाएँ इत्यादि। रोज़ी के साथ विश्वास का संबंध स्थापित करना होगा। धैर्य ही इसकी कुंजी है।" सिमरन ने समझाते कहा।

"संबंध कैसे बना सकती हूँ ? खाने को पड़ती है। बहुत ज़िद्दी हो गई है। कुछ अधिक ही मचलने लगी है। छोटे बड़े बहन भाई को तंग करती है। उन्हें मार कर हँसती है। उसे एहसास ही नहीं कि क्या कर रही है। शाम का खाना खिला कर मैं तो थोड़ी सी शांति के लिए तीन घंटे अपनी पार्ट-टाइम सफाई का काम करने चली जाती हूँ। फिर उसके पापा ध्यान रखते हैं। अपने पापा के साथ बहुत ख़ुश रहती है। उन्हीं के क़ाबू में आती है। इतनी बड़ी हो गई है अभी भी उनकी गोद में बैठी रहती है। बचपन से ही सोने के वक़्त उसके पापा ही उसे

कहानी सुनाते आए हैं। जब तक मैं घर पहुँचती हूँ, रोज़ी सो चुकी होती है। फिर थोड़ी शांति मिलती है।"

"आपने ठीक कहा, बड़ी हो गई है। आपको ख़ुद उसका ध्यान रखना होगा। जैसा मैंने कहा है रोज़ी को आपका मनोयोग चाहिए। क्यूँ न आप ही रोज़ी को कहानी सुनाने की ज़िम्मेदारी ले लें। हो सकता है यह.... उसकी आपके साथ समय बिताने की गुहार हो।" सिमरन ने आश्वासन देते कहा ...

सिमरन ने रोज़ी की माँ से बातों-बातों में संकेत देने का प्रयास किया और जूली समझ भी गई। किंतु, सिमरन के साथ अभी भी एक डर चिपका था। घर आने के बाद आज की बैठक ने उसके मन को अशांत कर दिया। सिमरन की बैचैनी जब हद से गुज़र जाती है तो वह खुली हवा में टहलने लगती है। रोज़ी को लिए सिमरन के मन में एक खिंचाव था, जो उसे पल-पल उस मासूम के बारे में सोचने से मजबूर कर देता है। सब जानते हुए भी कि वह केवल प्रिंसिपल को रिपोर्ट करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकती।

रास्ते भर मिसेज़ रॉबर्ट जूली का सिर चक्करधानी की भाँति घूमता रहा। उसके दिमाग़ में अनेकों प्रश्न उभरने लगे यह हो कैसे सकता है ? यका-यक वह अपने अतीत में पहुँच गई। जब वह बारह वर्ष की ही थी किसी दूर के रिश्तेदार ने छेड़-खानी की थी। उस वक़्त कैसे उसके शरीर का भार जाता रहा। शरीर सूखे पत्ते सा हवा में तैरने लगा था। ऐसा लगा मानों ज़मीन मुझे अपनी ओर खिंच रही थी। उस वक़्त मेरे भीतर का तरल पल भर में सूख गया और मन में आया, काश उसकी आँखों में कैमरा लगा होता ? वह शोर मचाने के सिवाय कुछ नहीं कर सकती थी, उस से दूर रहने लगी थी। वह तो समझ सकती थी कि क्या हो रहा है। शोर मचा सकती थी। यहाँ तो उसके जिगर के टुकड़े रोज़ी की बात हो रही है, जो लाचार है। बेज़ुबान है। कौन हो सकता है ऐसा नीच दरिंदा ....लाचार बच्ची के साथ ...? मेरे लिए यह जानना चुनौती बन गया। ठीक ही तो कहती है सिमरन। मुझे ही रोज़ी का ध्यान रखना चाहिए। मुझे उसे समय देना चाहिए।

आज उसे एहसास हुआ एक रोज़ी ही नहीं, उसकी दो और बेटियाँ भी हैं। उन्हें भी बचाना है। उनके साथ कुछ नहीं होने देगी, हरगिज़ नहीं। ख़ुद को धिक्कारने लगी, पर कैसे करूँगी ? ....यह तो अँधेरे में तीर चलाने वाली बात हो गई, अब वह जैसे-तैसे पता लगा कर ही रहेगी। उसने ठान लिया था। कैमरे का सोचते हुए उसके मन में विचार आया, क्यूँ न रोज़ी के सोने के कमरे में कैमरा लगा दिया जाए ? वह मौक़े का इंतज़ार करने लगी। एक दिन जब बाप बेटा फुटबॉल का मैच देखने गए थे। जूली ने छुपा कर कैमरा रोज़ी के कमरे में लगा दिया। दो चार दिन तो कुछ नहीं हुआ। शायद जेम्ज़ को शक हो गया था, कि जूली को भी शक हो गया है। दो चार दिन तो कुछ नहीं हुआ। शायद जेम्ज़ भाँप गया था।

जूली ने किसी को बिना बताये गुप्तचर का काम आरम्भ किया। उसके उन्नीस वर्ष बेटे के कौन-कौन से दोस्त घर आते हैं। कहाँ उठते-बैठते हैं, रोज़ी उस वक़्त कहाँ होती है वग़ैरह-वग़ैरह। जूली ने कड़ी निगरानी आरम्भ कर दी। बेटे के दोस्तों के घर आने पर प्रतिबंध लगा दिए। कुछ सप्ताह तक उसे कोई सुराग न मिला।

एक दिन शाम को सभी टेलिविज़न देख रहे थे। जैसे ही काम समाप्त करके जूली कमरे में आई। रोज़ी अपने पापा जेम्ज़ की गोद में बड़े प्यार से बैठी थी। जेम्ज़ का हाथ रोज़ी की

कमर में था। उस से कह रहा था "दैट्स माई गर्ल" उसे देखते ही जेम्ज़ सकपका- सा गया। उसकी जकड़न ढीली पड़ गई। अपने को सहज करते बोला "आओ जूली बैठो अपने साथ कुर्सी की ओर इशारा करते बोला।" जूली ने देखने से भी अधिक देख लिया था।

"रोज़ी बेटा सोने का समय हो गया है चलो।" जूली रोज़ी को स्वयं उसके कमरे में ले गई। थोड़ी देर बाद पति के साथ आ कर बैठ गई। वह यह नहीं चाहती थी कि उसे शक हो।

कल अचानक उसके सिर में बहुत तेज़ सिर दर्द हुआ। वह दो पैरासिटामोल ले कर लेटी ही थी कि आँख लग गई। जेम्ज़ रोज़ी को कहानी सुनाने के बहाने उसके कमरे में ले गया। दूसरे दिन फुटेज देखते ही उसके दिमाग़ में धुँध सी फटने लगी, उससे रहा नहीं गया। जो उसने देखा उसके विश्वास से बाहर था। कड़ियों पर कड़ियाँ जुड़ने लगीं, ग़ुस्से में जूली के भीतर कुछ कठोर सा होने लगा... उसकी आँखों के सामने कुकर्म होता रहा ? वह अंधी बनी रही। उसके दो टके की नौकरी ने बेज़ुबान की अस्मिता को बलि चढ़ा दिया। उसने अपनी नौकरी छोड़ दी।

वह रोज़ी से लिपट कर हूक-हूक रो के क्षमा माँगती रही। उसका दम घुटने लगा, ज़ुबान पथरा गई। जेम्ज़ की काली अँधेरी करतूत ने उसे दबोच लिया था। दर्द बहुत ही नुकीला था। वह हिल गई। कराह उठी, नहीं - नहीं पापा तो सबकी सुरक्षा का कवच होता है। उसके विश्वास के चीथड़े -चीथड़े हो गए थे। पति जेम्ज़ से ग्लानि होने लगी। जूली समझ नहीं पा रही थी कि क्या करूँ ? पुलिस को फ़ोन करे या फिर अपने भाई को बताये। नहीं - नहीं ऐसे में बात समाज में फैल जाएगी। उसे बहुत मनोबल से काम लेना होगा। वह फ़ुटेज ले कर वह सीधी रोज़ी के स्कूल की ओर चल दी। पहुँचते ही उसने प्रिंसिपल का दरवाज़ा खटखटाया...

"जी....कौन ? अन्दर आइये ..."। अंदर से आवाज़ आई। उसने एक गहरी साँस ली।

अन्दर पहुँचते ही जूली ने कैमरे की फुटेज प्रिंसिपल के मेज़ पर रखी और रोते-रोते,

बोलती गई, बोलती गई। इतने वर्षों से वह जान ही नहीं पायी कि स्टोरी टाइम भी अभिशाप बन जाएगा। आज बाप के स्नेहिल सहलाने वाले हाथ काँटे बन चुके थे। जो बेज़ुबान रोज़ी के साथ होता रहा, उससे वह अनजान कैसे रही। उसे लगा मानों किसी ने उसके शरीर का लहू निचोड़ लिया हो, या किसी ने पंजा डाल कर एक माँ का दिल ही चाक कर डाला। दिल तो किया उसे गोली मार दूँ। दुनिया को एक बाप की करतूत बता दूँ। उसके गले में जूतों का हार डाल कर समाज के सामने खड़ा कर दूँ। फिर सोचा यह तो प्रकृति का नियम है कि अक्सर वही होता है जो हम नहीं होना चाहते। वह क़ानून को अपने हाथ में नहीं लेना चाहती थी। वह अपनी बच्चियों को खोना नहीं चाहती, रोज़ी की दो और छोटी बहनें हैं।"

वह सुबकते-सुबकते बड़बड़ा रही थी। "उसने भी तो यही किया। स्वार्थी हो गई थी। तीन घंटे की नौकरी के लिये। अपनी बेज़ुबान बेटी को दिन में स्कूल और शाम को बाप के हवाले कर के पैसा कमाने के लिये। जूली को स्वयं पर ग्लानि हो रही थी। उसके आँसू पलकों की सीमा लाँघ गए। आज उसे एहसास हुआ कि हम अपने होने और सिर्फ़ होने को लेकर इतने चिंतित क्यूँ रहते हैं ? हमारी सोच के केंद्र में हमेशा हमारी ज़रूरतें क्यूँ आती हैं ? क्यूँ भटकते रहते हैं अपने स्वार्थ में, अपनी बेजान चीज़ों के पीछे, जानदार चीज़ों को ध्यान नहीं देते। भटकते रहते हैं एक ही दायरे में अपनी स्वार्थ की बैसाखियाँ अपनी बग़ल में दबाए।"

"क्या ....आप पुलिस से पहले सोशल सर्विसेज़ को बीच में डालना चाहोगी ?" प्रिंसिपल ने पूछा ....

"नहीं, नहीं मुझे उसे सबक़ सिखाना है। अब वह अपने पति को सफ़ाई गोशी का मौक़ा नहीं देना चाहती। उसे अपने पक्ष में विवाद देने के सवालों की क़ैद में नहीं रखना चाहती ...वह ग़ैर ज़रूरी है। इतना घिनौना काम इतने लम्बे समय तक लगातार ...। इतने लम्बे काल से दु:ख-सुख का साथी अपनी बेटी के लिये हैवान कब और कैसे बन गया। इस दरिंदे से अपनी बच्चियों का बचाव करना है। कौन सा सुख मिला होगा उसे अपनी ही बेज़ुबान बेटी के साथ कुकर्म कर के। लम्बे काल के दु:ख -सुख के साथी को समझ ही नहीं पाई। अर्थों की सारी ऊहापोह अब ख़त्म हो गई है। अपने बच्चों को अँधेरों के बीच से निकालना चाहती हूँ। इसीलिए आपके पास आई हूँ। आप कृपया पुलिस को बुलाएँ, मिस्टर रॉबर्ट को ले जाएँ। हमारी मदद के लिए सोशल सर्विसिज़ से संपर्क करें। यह मेरा आख़िरी फ़ैसला है।"

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

कौन सुने ?

कादम्बरी मेहरा

कादम्बरी मेहरा
35 दि एवेन्यू, चीम, सटन, सरे, एसएम 27, क्यू ए, यू के
मोबाइल- 447424736819
ईमेल- kadamehra@googlemail.com

सरोज सुबह उठी तो ताई जी गोमती नहा कर आ चुकी थीं। आँखें मलते हुए सरोज ने अलस्वर में पूछा, ताई जी आज हमें क्यों नहीं जगाया ?

ताई जी गीली धोती अरगनी पर पसारती हुई बोलीं, मुझे छुइयो मत। जा जल्दी से हार पिरो ले ठाकुरों के वास्ते। फिर हमने जाना है बीजी के घर। देवी मंदर के लिए गुलाब ले चलियो।

खबर सुनकर सरोज खिल गई। बीजी उसकी दादी थीं। उनकी सबसे छोटी लड़की अंजू उसकी हमउम्र थी और बड़ी मस्त। ढेरों खिलौने थे उसके पास -गुड़िया, गुड्डे और न जाने क्या क्या। अंजू जब अपनी नानी के यहाँ जाती तो सैकड़ों छोटे-बड़े साटन के टुकड़े उठा लाती थी; क्योंकि उसके मामा की कपड़े की दूकान थी। बीजी की पेट-पुंछनी लाड़ली अंजू की गुड़िया तो बस मालामाल। बीजी पूरी दोपहर गुड़ियों के लहँगे, सलवार-कमीज आदि काटती सीती रहती थीं। सरोज की माँ के तो अपनी ही चार पुत्रियाँ थीं। चौथी अभी दस एक दिन की ही थी। दिन रात संयुक्त परिवार की रोटी पानी से ही फुर्सत नहीं थी। दोपहर को जब सब सो जाते तब सरोज की माँ का खटारा शुरू होता। पुरानी हाथ वाली सिलाई की मशीन खट-खट चलती रहती। मर्दों के पैजामे, औरतों के पेटीकोट, फ्राकें, जाँघिए, नौकरों के कुर्ते, अनेकों झाड़न और भी न जाने क्या -क्या। सरोज कभी उनसे कुछ नहीं कह पाती। कुछ कहने पर केवल झिड़की ही मिलती। चतुर बीजी अंजू के सभी कपड़े सरोज की माँ से ही सिलवाती थीं। सरोज की फ्रॉक देखी नहीं कि धीरे-से ज़ुबान हिला दी, अंजू के वास्ते भी ऐसी ही बना कर दे बहू। मायके से आती बारी तो कभी न सोचती कि चार टुकड़े सरोज और उसकी बहनों के लिए भी लेती चलूँ। पर चलो बड़ों से तब कुछ कहने का रिवाज़ नहीं था। माँ वैसे भी सास -ससुर से घूँघट काढ़तीं थीं बोलना तो दूर रहा।

घर की मुखिया थीं ताई जी। बाल विधवा थीं। घर पर उन्हीं की चलती थी। सरोज के घर में चाचा-चाची थे, कुंती बुआ थीं। ऊपर से बीजी हमेशा छोटे चचा को कुंती बुआ के पास पढ़ने भेज दिया करतीं थीं। उनका नाम गुच्चु था। पढ़ाई का तो बहाना था। जब देखो तब बहसा -बहसी। उन दोनों की लड़ाई जगत् विख्यात थी।

सरोज के घर में बाईस कमरे थे। आँगन था, बगीचा था, नौकर-चाकर थे। एक पूरा संसार इसकी चारदीवारी में बंद था। पर सरोज एकाकी थी उसे सबसे सतर्क रहना पड़ता था। इतने बड़े परिवार में उसकी हस्ती ही क्या थी। यूँ भी उस ज़माने में बच्चे अहमियत ही कहाँ रखते थे। कैसे पल जाते थे पता ही नहीं चलता था। यूँ तो सरोज की बहनें उससे बहुत छोटी नहीं थीं मगर फिर भी सरोज उनसे ऊपर थी। सरोज स्कूल जाती थी और वह दोनों घर पर ही क, ख, ग, आदि सीख रही थीं। स्कूल में रोज अंजू मिलती और खाने की छुट्टी में रामविलास गरम-गरम खाना लाता। फाटक के पास वाले नीम के चौतरे पर दरी बिछाकर अंजू और सरोज खाना खातीं।

"बीजी नौकर क्यों नहीं भेजतीं रामविलास के जैसा? रोज़ हमारे पापा का नौकर ही क्यों खाना लाता है ?" सरोज ने ताईजी से पूछा था एक दिन। ताईजी कौन बड़ी अच्छी थीं। गुर्राके डाँट दिया था, "छोटे मुँह बड़ी बात ! खबरदार जो फिर कभी पूछा तो।" ऊँह, कौन पूछे डाँट खाने को। पर यह सवाल, जो सरोज के मन में आते थे, ग़लत थे। तो उसके ही मन में क्यों आते थे ? बाकी सब लोग क्यों इतने तटस्थ थे ? या फिर जान बूझ कर बनते थे ?

अक्सर अंजू और बीजी भी आ जाती थीं। फिर तो उनकी ख़ातिरदारी नवाबों की तरह होती थी। माँ किवाड़ों के पीछे ओझल-ओझल सी फिरती थीं। चाची जान बूझ कर झाड़न उठा लेतीं और कमरों की झाड़ पोंछ करके अपनी अपरिमित व्यस्तता का प्रदर्शन करतीं। पर सरोज जानती

थी। दोपहर को जब माँ अपने कमरे में जाकर बच्चों के अनेकों धंधे पेलेंगी तब बीजी चाची की कोठरी में जाकर सिंगार-पटार करेंगी और चाची से खुसुर-पुसुर करेंगी। चाची निचली दराज़ खोलकर अपनी ख़ास क्रीम पाउडर निकालेंगी। ड्रेसिंग टेबल के ऊपर तो सिर्फ एक कंघी रखी रहती थी और एक चिपचिपी गीली बिंदी की शीशी जिसमे शीशे की डाट लगी थी जिसके साथ एक शीशे की सलाई जुड़ी थी। एक बार सरोज ने चुपके से इस रहस्यमयी कोठरी में प्रवेश किया था।

चाची टेबल फैन लगाकर ठन्डे नंगे फर्श पर पीठ के बल चित्त लेती हुई थीं। दोनों हाथ छाती पर बंधे थे। मुँह खुला हुआ था। मक्खी से बचाव के कारण उन्होंने अपनी कन्नी वाली सफ़ेद धोती से चेहरा ढँक रखा था। एकदम 'राम नाम सत्त' वाला मुर्दा लग रही थीं। सरोज को हँसी आ गई मगर उस समय उसके आने का प्रयोजन चाची की सिंगार मेज़ की खोल फरोल था। हौले से उसने एक-एक करके ऊपर की छोटी दराज़ों को खोला। पहली में जूड़े के काँटे आदि और दूसरी में सूई बटन आदि निकले। धत तेरे की।

फिर बड़ी दराज़ को ज़रा सा ही खोल पाई थी कि चाची ने दीवार की तरफ करवट बदली। सरोज की साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। दो मिनट तक वह दम साधे खड़ी रही। खर्राटे करवट लेने से बंद हो गए थे। जब चाची की स्थूलयष्टि में कोई हरक़त नहीं हुई तो सरोज ने राहत की साँस ली और बड़ी दराज़ में झाँका। कागज़ ही कागज़ नज़र आये। क्या पता चाचा जी के हों। बंद कर दी। पर बिना कुछ पाये लौट जाना उसके जिज्ञासु स्वभाव को रास न आया। कंघी उठाई। चाची की मशहूर विलायती सैलोलाइट की कंघी। गन्दी थी। चौथाई इंच तक उसके दरांते मैल से ठोस हुए पड़े थे। ऊपर से उसमें बाल लगे थे। छी छी ! सरोज की माँ जब तब सरोज को कंघे तोलिये आदि की सफाई पर भाषण पिलाती रहती थीं। हर दो महीने पर, अकारण, नीम की पत्तियाँ पानी में उबालकर, बेटियों का सर धोती थीं। कड़वा गर्म पानी बालों से उतरकर सरोज के मुँह में भर जाता था। बहुत रोती-चिल्लाती थी मगर माँ की जकड़ के आगे सरोज की एक न चलती। तब यही चाची कुंती बुआ के संग मिलकर उसकी माँ का मज़ाक बनातीं।

छी। यह भी कोई कंघी है। अरे वाह पाउडर का लाल डिब्बा ! कैसे खुलते हैं इसके छेंक ? पर पाउडर तो उसे लगाना नहीं था। रख दिया। अब आई बारी बिंदी की। चिपकी हुई शीशी की डांट को जो खींचकर खोला तो शीशी उछलकर एक तरफ गई और चिपचिपाती शीशे की नली उसके हाथ में रह गई। टनटनाती हुई शीशी फर्श पर गिरी और गाढ़ा लाल पेंट चारों तरफ पुत गया। अभी वह अपनी फ्रॉक और हाथों की धजा देख रही थी कि चाची दन्नाकर उठीं और उसकी दोनों चोटियाँ कसकर मरोड़ीं।

"पट्टो पट्टड़ी के हाथ दरल दे।" कहते हुए चाची ने उसका हाथ जकड़ लिया और इसके पहले कि सरोज कुछ समझ सके उसे कमरे के स्प्रिंग वाले दरवाज़े की चूल में अटका कर स्प्रिंग को रोकनेवाली साँकल हटा दी। झटके से दरवाज़ा उसकी उँगलियों पर बंद हो गया। दर्द से चीखकर रो पड़ी सरोज। दोपहर में सोये हुए लोगों की नींद न हराम हो इसलिए चाची ने उसके मुँह पर हाथ रखकर भींच दिया। वह गालियाँ देती, दाँत पीसती और हज़ारों धमकियाँ देती उसे घसीटकर उसकी माँ के कमरे में पटक आईं। माँ बिना पंखे वाले कमरे में पसीन-पसीना होती मशीन चला रही थीं। सरोज को तो साँस नहीं आ रही थी नीली हुई पड़ी थी। माँ सकते में आ गईं। माँ कुछ पूछतीं कि चाची गुर्राईं, "मरेगी नहीं तुम्हारी लौंडिया, यह खून नहीं है मेरी बिंदी है। लुधियाने से मँगवाई थी। भवानी ने तोड़कर धर दी। नास पीटी ने सारा घर सर पर उठा रखा है। माँ फकीरनी, धी को महारानी बनना है।"

अपनी ग़रीबी का ताना माँ सह न सकीं। सरोज को और मार पड़ी। चाची की कोठरी में जाने की मनाही हो गई। चार दिन के बाद माँ ने पूछा, "यह अँगूठे का नाखून कैसे काला हो गया ?"

सरोज चुप्पी मार गई। माँ पर से उसका विश्वास उठ गया था। क्या पता फिर मार दें। बिना उत्तर दिए खेलने भाग गई। पर बात छुपी न रही। ठाकुर द्वारे में ताई जी के पास बैठकर चन्दन घिसने लगी तो उन्होंने भी पूछा। सरोज ने बता दिया और रोने लगी। ताईजी ज़ोर- ज़ोर से मर्दों के नाश्ते के वक़्त बिना नाम लिए "किसी नाठी-निगोड़ी" को गालियाँ दीं। --- "जिसके भाई न बहन, न पेट फटा, वो क्या किसी पराये पेट का दु:ख दर्द करेगी ?"

नतीजा ? आते-जाते, पास से गुज़रते, चाची ने सरोज को चिकोटियाँ काटीं और डराया कि किसी से कहेगी तो तुझे शौचालय में बंद कर दूँगी। बंद होने से सरोज बहुत डरती थी। मार-वार तो रोज़ मर्रा की बात थी। ताईजी कभी- कभी बहुत अच्छी हो जातीं थीं। खासकर पूजा करते समय। सरोज को उन्होंने सुबह-सुबह उठकर फूल चुनना, उन्हें धोकर माला पिरोना, सुच्चे कपड़े लगाकर नहाना, पूजा की थाली लगाना आदि सब सिखा रखा था। सरोज की प्रतिभा विलक्षण थी। हर एक मन्त्र रटा था उसे। कोई कहानी अगर ताईजी उसे सुना देतीं तो वह हमेशा के लिए उसे याद हो जाती। पढ़ना उसने माँ से सीखा था, गिनती पापा से। रामविलास जब साइकिल पर स्कूल छोड़ने जाता तब रस्ते भर फ़िल्मी गाने गाता जाता। सरोज को सब याद हो गए थे। जब गुच्चु चाचा और कुंती बुआ में अंताक्षरी होती, वह दोनों उसे घूस देते।

पर वह क्या उसके मीत थे ? सरोज को उनसे भी सावधान रहना पड़ता था। एक बार बहसा-बहसी में गाली -गलौज हो गई। पढ़ने के लिए किताबें लेकर दोनों गोल कमरे के एकांत में जा बैठे थे। मगर बिल्ली के सामने चूहा हो तो क्या रामायण पढ़ेगी ? लड़ाई हो गई। शोर सुनकर सरोज चुपके से झाँकने आई। देखा गुच्चु चाचा ने शीशे का फूलदान उठाकर कुंती बुआ की ओर फेंका तो उन्होंने लकड़ी का हाथी उठा लिया। सरोज को देखकर दोनों थम गए।

"तू यहाँ क्या कर रही है छोकरी ?" कहते-कहते चाचा ने उसकी दोनों चोटियाँ पकड़कर मरोड़ दीं और चिल्लाये "देखो मरी ने फूलदान तोड़ दिया।" यह भी चाची लुधियाने से लाई थीं। उस दिन भी सरोज को

मार पड़ी। रोते-रोते बिना खाना खाए ही सो गई। लाख चीखने पर भी किसी ने विश्वास नहीं किया कि फूलदान उसने नहीं तोड़ा था। ताई जी ने भी नहीं क्योंकि कुंती बुआ उनकी संतान समान थीं।

आज ताईजी अच्छे मूड में थीं। सरोज को अपने संग बीजी के घर ले जा रही थीं। नाश्ते आदि से निवृत्त होकर उन्होंने एक ताँगा मँगवाया। सरोज ने पहले ही कह दिया ताईजी हम आगे किशोर की गोदी में बैठेंगे। हालाँकि आगे बैठने में एक बड़ा नुक्सान था। ताँगे का घोड़ा जब बदबू मारता तो बड़ी कोफ़्त होती, मगर पिछली सीट पर बैठने में वह नीचे फिसली जाती थी और ताईजी और कुंती बुआ के बीच में फँसकर बैठने से वह न दाहिने गर्दन घुमा पाती न बाएँ। दुकानें देखने का उसे शौक था। पूरा ही न हो पाता।

ताँगा दोपहर के खाने के समय तक बीजी के घर पहुँचा। अंजू घर के सामनेवाले नीम के पेड़ पर झूला डलवा रही थी। किशोर के पहुँचने पर उसे भी इस काम में जोत लिया। आनन -फानन में झूला डल भी गया। बीजी ने लस्सी पिलवाई। सरोज को छोटे से गिलास में लस्सी मिली। और माँगी तो खत्म हो गई थी। सरोज ने अंजू से पूछा तूने लस्सी पी ली ? अंजू ने दोनों हाथों से बड़े गिलास की ओर इशारा किया और अपने गोल पेट को थपथपाया। दोनों लड़कियों ने दिन भर झूला झूला। शाम को जाने का समय आया तो अंजू पसर गई।

''सरोज को मत भेजो। हम किसके साथ सिकड़ी खेलेंगे ?'' अंजू ठुनठुनाने लगी। लाडो की ज़िद और बीजी पूरी न करें ? असंभव। बड़े मनुहार से बोलीं, ''इसे छोड़ जाओ 'बड़ी', अंजू उदास हो जाएगी।''

मन ही मन सरोज भी यही चाहती थी। अत: ताईजी मान गईं। किशोर से कहा चार दिन बाद साइकिल पर ले आईयो। ताईजी और कुंती बुआ घर चली गईं। अगले दिन अंजू के कपड़े पहनाकर बीजी ने उसे भी नहलाया धुलाया। सरोज लम्बी और पतली थी। अंजू के कपड़े उस पर झूलते थे। जांघिये लटकते थे, मगर सरोज खुश थी। दोनों लड़कियाँ घंटों कंचों से खेलती रहीं। सहसा अंजू ने पूछा, ''तुझे जुआ खेलना आता है ?'' सरोज भला क्या जाने। अंजू ने समझाया, ''अगर तू बंटे (बड़ा कंचा) को मारे और तेरा निशाना ठीक लग जाए तो मेरे फेंके सब कंचे तेरे।''

लालच बुरी बला है। क्या सचमुच वह जीत के कंचे घर ले जा सकेगी ? कितना मज़ा आएगा। छोटी बहनों को दिखाएगी।

खेल शुरू हुआ। ''एक बार तेरी, एक बार मेरी।'' अंजू ने नियम तय किये। वाह-वाह क्या खेल था। घंटों जीत हार होती रही। सरोज का निशाना खूब सटीक बैठने लगा। झोली भर कंचे जीत गई। तभी खाना खाने के लिए आवाज़ पड़ी। दोनों अपनी-अपनी झोली में कंचे समेटे बीजी के पास गईं। सरोज ने हुमक कर दिखाया, ''बीजी देखो हमने जीते। घर ले जाएँगे।'' बीजी खुश तो क्या होतीं, उल्टा उसे डॉट कर सब कंचे रखवा लिए। सरोज के पापा को गाली देकर बोलीं, ''बड़ा अपनी कमाई हमें पकड़ा रहा है न कि तू सब ले जाएगी।'' कमाई क्या होती है मासूम सरोज की समझ में नहीं आया। बस इतना पल्ले पड़ा कि वह कंचे नहीं ले जा पाएगी। जैसे तैसे खाना खाकर सोने के कमरे में फर्श पर पड़ी रही। मन कसैला हो गया था। मार तो पड़ी नहीं थी जो रोती-धोती। अंजु सो गई थी। बाबूजी और बीजी उठकर अंदर वाली ठंडी बैठक में चले गए। सरोज मौका पाकर तपती धूप में बाहर आ गई। उसे बन्दरों से डर लगता था मगर छत पे या नीम के पेड़पर कोई बन्दर नहीं दिखा। टूटे बारजे पर जाने की मनाही थी। सरोज चार बार चढ़ी-उतरी। दीवारों में बने आलों पर पैर रख-रख कर वह सबसे ऊँची चाट पर भी हो आई। फिर भी मन न बहला तो सबसे भयानक काम किया। गली में जाने वाले जीने से नीचे उतर गई। बीजी के पुराने भीमकाय मकान के कई रहस्य उसे उस दिन ज्ञात हुए। जहाँ बीजी नहाती थीं, वहाँ फर्श पर एक पत्थर था। ध्यान से देखने पर उसे पता चला कि पत्थर के नीचे छलछलाता कुआँ था। उसके मुहाने को पत्थर ने बीच में से इस प्रकार ढक रखा था कि आस-पास से छोटी सी बाल्टी खींची जा सके।

गर्मी के दिनों में फर्श सूखा पड़ा था। काई की पपड़ियाँ चिटक गईं थीं। पर जब वह गीला होता वहाँ फिसलन होती थी, अत: बच्चों को वहाँ जाना सख्त मना था। सरोज जान बूझकर पत्थर के पास तक गई। झाँककर पानी की झिलमिलाती सतह को देखा, फिर डरी। कहीं नीचे से कोई भूत उसे अंदर न खींच ले। डर कर बाहर भागी। जल्दी में दालान के जिस दरवाज़े में घुसी वह बाहर गली में खुलता था। एक चौड़ी सीढ़ी वहीं से ऊपर की मंज़िल पर जाती थी जहाँ बीजी का सोने का कमरा था। शुद्ध धवल संगमरमर की सीढ़ियाँ तप रही थीं। पैर रखने से छाले पड़ जाते। तभी सीढ़ी के नीचे सरोज को एक दरवाज़ा दिखा। सोचा थोड़ी देर यहीं छुपा जाए। हलके-धक्के से दरवाज़ा खुल गया। यह बाबूजी का गुसलखाना था। नलके सूँ -सूँ करते सूखे पड़े थे। ऊपर नज़र गई तो फव्वारा दिखा। सरोज कूद-कूदकर उसे पकड़ने की कोशिश करने लगी। छठी छलांग में उसके दोनों हाथ फव्वारे की नलकी पर टिक गए। वह मज़े से झूला झूलने लगी। सामनी दीवार पर दोनों पैर टिका कर छोड़ देती। कुछ पल खूब मज़ा आया फिर बाहें थकने लगीं। उतरना चाहा तो नीचे देखते ही उसकी हिम्मत टूट गई। धरती बेहद दूर लगी। घबराकर एक हाथ को मुक्त किया और सामने दीवार में जड़ी नलकी पकड़ ली। पर नलकी के जोड़ जंग खाए थे। वह उखड़ कर हाथ में आ गई। ऊपर से फव्वारा टूट कर उसके मुँह पर लगा। ठुड्डी और माथा फट गया। गिरी तो पत्थर के फर्श से बैठने की जगह हड्डी पर चोट लगी। बाहें छिल गईं थीं। खून देख कर सरोज दहाड़ें मारने लगी।

बीजी गालियाँ देती अंदर से निकलीं। बाबूजी उन्हें डाँट रहे थे, ''क्यों रखा था पराया बच्चा ? अब क्या जवाब देगी इसकी माँ को ? सर की चोट, वह भी भारी लोहे की छड़ से। अरे पागल वागल हो गई तो जनम भर की मुसीबत।''

बीजी ने जैसे-तैसे सिर पर पट्टी बाँधी। ठुड्डी पर गरम घी का फाहा रखा। सरोज को आश्चर्य हुआ कि उन्होंने उसे डाँटा नहीं। शायद इसलिए कि बाबूजी के सामने वह हमेशा शांत रहती थीं। तीसरे दिन दोनों को

बाहर जाने की मनाही हो गई। धूप बहुत है घर में बैठकर गुड़िया खेलो। बीजी ने हुकम दिया। सरोज का मन नहीं लगा। अंजु की गुड़िया के रंग बिरंगे कपड़े उसे जला रहे थे। अंजु ने दया करके एक गुड़िया का गद्दा उसे दिया। अगर एक चौरस सुन्दर कपड़ा हो तो वह उसकी रजाई बनाएगी। अत: वह दराज को पूरा खोलकर फरोलने लगी। बीजी जाने कहाँ से आ गईं। दोनों के बेदर्दी से कान खींचे। सरोज गोरी। कान दो दिन लाल रहा।

चौथे दिन अंजु की सहेली मनप्रीत ने बुलाया। उसका घर बन रहा था। अंजु और वह कंचे खेलने लगीं। सरोज को बालू और ईंटें मिल गईं। वह घर बनाती रही। धूप तेज़ हो गई तो वह अंजु को ढूँढ़ती आँगन में आई। मनप्रीत की माँ मिसेज बग्गा बान की मंझी पर बैठी महरी से तेल लगवा रही थीं। महरी खुसुर पुसुर किये जा रही थी। उसे देखकर चुप हो गई। मिसेज़ बग्गा बोलीं, "इधर आ। तेरी माँ ने नमस्ते करना नहीं सिखाया ?" सरोज हक्की-बक्की उन्हें देखती रही। कुछ बोल ना पाई।

मिसेज़ बग्गा फिर टर्रायीं, "कब जाएगी वापिस अपने घर ? शैतानियाँ करके सारा घर सर पर उठा रखा है। लड़की क्या है तूफ़ान दी गड्डी (तूफ़ान की गाड़ी)।"

इसको किसने कहा कि मैं शैतानियाँ करती हूँ, सरोज अपना गुस्सा छिपा न पाई, "तू तूफ़ान दी गड्डी", कह कर वह तीर की तरह भागी। घर पहुँचकर साँस भी ना ली थी कि देखा मिसेज़ बग्गा बाल बिखेरे पीछे-पीछे उसे गालियाँ देती आ पहुँची थीं। सरोज डर के मारे सुन्न हो गई। उनकी चीखती आवाज़ मानों बीसियों डायनो के कंठस्वर आपस में मिलकर उसकी कनपटियों पर प्रहार कर रहे थे। उसने दोनों हाथों से अपने कान बंद कर लिए। दस मिनट तक लगातार बकबका के वह धम धम पैर पटकती वापिस चली गईं। और उनके जाते ही उनके सर पर चढ़ी सारी डायनें मानों बीजी के सर चढ़ गईं। थप्पड़ और गालियाँ निकालती बीजी उसकी दोनों चोटियों से घसीटकर उसे ऊपर ले गईं और बरसाती में बंद कर दिया।

रो-रोकर सरोज थक गई। कितना रोती ? अपमान, झूठे इलज़ाम, माँ-बाप की बदनामी, ठोड़ी की टीसती चोट, माथे पर पड़ा लंबा नील, क्या -क्या सहती ? भूख से पेट दर्द करने लगा था। पानी ही पी लेती। दरवाज़ा पीटा। बरसाती की टीन की छत और दीवारें तप रही थीं। बीजी और अंजु ठंडी बैठक में सो रही थीं। उसे कौन सुन पाता ? दरवाज़े की दरार में से बाहर झाँका। बाहर मुँडेर पर एक मोटा बन्दर बैठा था। सरोज की घिग्घी बंध गई। सहमकर, दम साधकर, एकदम सिमटकर, धरती से चिपक गई। जहाँ बैठी थी वहाँ उसी के पसीने से फर्श तर हो गया था। थोड़ा ठंडा था। सरोज को डर था कि ज़रा भी हिली तो बन्दर उसे खा जाएगा। पता नहीं कब उसकी आँख लग गई।

शाम को, जब आसमान लाल हो रहा था उसे बरसाती का दरवाज़ा खुलने का भान हुआ। महरी, जो सर्वज्ञाता, सर्वव्यापिनी थी, उसके लिए बर्फ का दूध ले आई थी। सरोज ने लपक कर गटागट पी लिया एक साँस में। महरी बोली, " चलो तैयार हो जाओ। मुँह हाथ धो लो। हमारे ही कारण तुम्हें मार पै गई।" उसका यह पछतावा भी सरोज की समझ से परे था। साफ़ सुथरी अपनी फ्रॉक पहनकर सरोज तैयार हुई तो किशोर आ गया। बीजी वहाँ नहीं आईं। अंजु कहीं खेलने गई थी। सरोज सीधी लपक कर साइकिल के डंडे पर बैठ गई। महरी किशोर को चार दिन का ब्यौरा सुनाती रही, सरोज की जानी पहचानी खुसुर पुसुर।

किशोर उसे जब घर लाया तो सबके चेहरों का रंग उड़ गया।

"नलके पर लटक रही थी। गिर पड़ी। इनकी माँ कहाँ हैं ? कुछ कहना है।"

माँ से किशोर ने दबे शब्दों में क्या-क्या कहा पता नहीं। माँ का चेहरा तमतमा के लाल हो गया। सरोज को उन्होंने अपने कमरे में ले जाकर गले से लगाकर खूब प्यार किया। बच्चों से कुछ पूछना उनकी आदत नहीं थी मगर आज उनका धैर्य जवाब दे गया। आँसू बह निकले। सरोज अपने घर वापिस आकर बहनों के संग मगन हो खेलने लगी। पर घर में सन्नाटा छाया रहा। इतना क्या हुआ होगा ? सरोज को मार पड़ना कोई नई बात तो थी नहीं। रात को जब पापा घर आये तब पहले तो चुपचाप मर्दों को खाना परोसा गया। इसके बाद जैसे तूफ़ान आ गया। सब एक दूसरे पर चिल्लाने लगे। ताईजी किसी, "बेऔलाद, नाठी निगोड़ी" को गालियाँ देती रहीं ग़ुरबत करने के लिए। माँ दुखी हो कह रही थीं, "चार पैदा की हैं तो यह मतलब तो नहीं कि उन्हें मार डालो ! पहले मुझे मार डालो सब मिलकर।" आदि आदि

000

कुंती बुआ कसम खा रही थीं- "मैं घर से कॉलेज, कॉलेज से घर। मुझे क्या पड़ी है कि मैं घर की बातें बच्चों से करूँ।"

चाची अपनी सिंगार मेज़ वाली कोठरी में बंद होकर सुबक रही थीं। उनके पति देर से घर आते थे दूकान बढ़ाकर।

इसी शोर शराबे के बीच उसकी माँ अपनी पुत्रियों को पटक- पटककर उनके बिस्तरों में सुला आईं। उन्होंने खाना भी नहीं खाया। सरोज के पापा ताई जी से कह रहे थे- "यह सब उसी जट्टनी मिसेज़ बग्गा की लगाई-बुझाई है भाभी। इतनी सी छै सात साल की बच्ची क्या जाने सौतेली माँ क्या होती है।"

अब मिसेज बग्गा के शब्द स्पष्ट रूप से सरोज को याद आने लगे- "ठहर तुझे पिटवाती हूँ। मुझे गाली दी। तूने कहा था न कि हमारी दादी सौतेली है।"

आधी रात बीते सरोज को लगा वह नलके से लटकी है और पानी भर-भर चल रहा है। माँ, पापा, कुंती बुआ सबको आवाज़ें देती वह चीख कर उठ बैठी। हमें उतारो कोई हमें उतारो। ताई जी दौड़ी आईं। उसे झकझोरा। देखा तो सब कपड़े पसीने से तर थे। अंक में लेकर कहा, "गर्मी है। कपड़े उतार दे। चल मेरे संग आके सो जा।" ताईजी का स्नेह पाकर वह छाती से चिपक गई।

"मेरी सुघड़ सयानी बन्नो, जो तुझ पर झूठ लगाए उसके कीड़े पड़ें।" सरोज की हिम्मत वापिस आ गई। हौले से पूछा, "ताईजी 'सौतेली' माने क्या ?" ताई जी निरुत्तर हो उसे थपकियाँ देती रहीं और रोती रहीं।

000

कथा-कहानी

मिशन - एन.पी.ए.

डॉ. रमेश यादव

तेज़ गति से दौड़ रही ट्रेन अचानक रुकी। एक झटका–सा लगा और मैं अपनी तन्द्रा से बाहर आया। शायद कोई स्टेशन आया था। मानसपटल पर बुलबुलों की तरह उठ रहे प्रश्नों को रोका। आँखों को पोंछते हुए मैं भारी कदमों से प्लेटफार्म पर उतरकर इधर-उधर झाँकने लगा। ट्रेन देश के दक्षिणी क्षेत्र को पार करके उत्तरी क्षेत्र की सीमा में प्रवेश कर गई थी। ताप के दिन, जलती धरती, झुलसते सपने। प्लेटफार्म पर आते-जाते लोगों को मैं निहारने लगा। कुछ देर तक मौन होकर सब कुछ देखता रहा। सामने से चायवाला आ रहा था, उसे बुलाया और चाय की चुस्कियाँ लेते हुए अपनी सीट पर जाकर बैठ गया। सीटी बजी और लहराती हुई ट्रेन चल पड़ी।

मैं पुन: यादों के समंदर में गोते लगाने लगा। भीतर की सरगोशियाँ बाहर आ गई। मेरी आँखों के सामने वह दृश्य तैरने लगा जब मुझे बैंक द्वारा सम्मानित किया जा रहा था....

बैंक के प्रधान कार्यालय की वह आलीशान गगनचुंबी इमारत। लिफ्ट से पच्चीसवीं मंज़िल पर जाते हुए मेरी आँखें डबडबा गई थीं। आज मुझे बैंक के प्रबंध निदेशक के हाथों सम्मानित किया जाना था। पच्चीसवी मंज़िल की साज़- सज्जा और रौनक देखकर मैं चौंधिया गया था। सब कुछ भव्य, सुंदर और आलीशान था, जैसे कोई पाँच सितारा होटल हो। सामने वह तस्वीर थी जिसमें बैंक के चेअरमेन महोदय भारी भरकम रकम वाला चेक मंत्री जी को सौंपते हुए मुस्करा रहे थे। तो देश के वित्त मंत्री बड़े ही गर्मजोशी से उसे स्वीकार कर रहे थे। हॉल में सजी यह तस्वीर लोगों को आकर्षित कर रही थी। बैंक जो मुनाफा कमाती है उसका एक हिस्सा सरकार को दिया जाता है, ताकि देश की आर्थिक व्यवस्था मज़बूत हो सके। भले ही हमें बोनस न मिलता हो, जो निजी उपक्रमों में मिलता है, पर देश के विकास में हमारा योगदान है। देश की आर्थिक व्यवस्था में हमारा भी अहम योगदान है, इस बात का मुझे गर्व हो रहा था।

यह तस्वीर जितनी साफ– सुथरी नज़र आ रही थी, हक़ीक़त में वैसी होती नहीं, इस बात की गवाही मेरा अंतर्मन दे रहा था। चेक की रकम तय करती है कि अगली पोस्टिंग कहाँ और किस पद पर होगी। गर्मजोशी से हाथ मिलाने और मुस्कुराहट के पीछे एक लम्बी राजनीति होती है। देश के विकास में हम श्रमजीवियों का कितना बड़ा योगदान होता है, इसका वज़ूद तो सिर्फ़ शब्दों तक ही सीमित होता है। खुश हो जाते हैं हम साहबों की वाह- वाही से। मगर इसमें भी एक

डॉ. रमेश यादव
481/161- विनायक वासुदेव, एन.एम. जोशी मार्ग, चिंचपोकली (पश्चिम)
मुंबई- 400011
मोबाइल-9820759088 / 7977992381
ईमेल– rameshyadav0910@yahoo.com

अकड़न होती है। आख़िर ये भी कहाँ आसानी से मिलती है !

खैर, तस्वीर में मुस्कुरा रहे चेअरमेन की खुशी में मैंने अपनी खुशी मिला ली और आगे बढ़ गया। कदम कुछ आगे बढ़े ही थे कि सामने रिशेप्सन पोर्च में लगे टीवी पर आँखें गड़ गई। सामने मीडिया की वो सुर्खियाँ दौड़ रही थीं जिसमें देश में फैले भ्रष्टाचार की रिपोर्ट पेश की जा रही थी। भ्रष्टाचार और दलाली में लिप्त नेताओं की खबरें मन में ग्लनि पैदा कर रही थीं। रिपोर्टर बता रहा था कि देशसेवा के नाम पर चुनकर आनेवाले नेता, संसद में आपसी भेद- भाव और रंजिश मिटाकर किस तरह एकज़ुट होकर अपने वेतन, भत्ते, पेंशन, आवास और तमाम सुविधाएँ मंज़ूर करा रहे थे। इसके लिए उन्हें हड़ताल करके वेतन कटौती करवाने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

सभ्य समाज की ये असभ्य तस्वीरें। तल्ख हक़ीक़त। मेरे अंदर का एक जज़्बाती इंसान हिसाब लगा रहा था। एक ओर वेतन के अतिरिक्त लाखों में बोनस और भत्ते पानेवाले कर्मी हैं, तो दूसरी ओर इसका आधा भी नहीं पाते, ऐसे लोगों की भारी भीड़ है ! दोनों श्रेणी में सरकारी और बिन सरकारी लोगों का समावेश है। मुझे याद आ गया मेरा भतीजा जो आई.टी. सेक्टर में है, उसने टारगेट पूरा किया तो उसे वेतन के बराबर लाखों का बोनस दिया गया और पदोन्नति अलग से। महज़ तीस साल की उम्र में लाखों की तनख़्वाह पानेवाला आज वह कंपनी का एक्जीक्यूटीव है और मैं, ख़ैर.......

स्वागत कक्ष में मेरा बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया गया। कुछ बहुत ही खूबसूरत, शोला और शबनम जैसी सुंदर, महिलाओं ने बड़े आदर से मेरा तिलक किया, फूल दिया और मुझे मंच तक ले गईं। समारोह की औपचारिकता पूरी होने के बाद चेयरमेन महोदय जी ने सुंदर सम्मान चिह्न, प्रशस्ति पत्र और गोल्ड मेडल (सोने की परत चढ़ा) देकर मुझे सम्मानित किया। सम्मान का जवाब देते हुए मेरी आँखें नम हो गई थी। मैंने इस तरह के सम्मान के बारे कभी सोचा भी नहीं था। सरहद

पर शहीद होनेवाले जवानों की ज़िंदगियाँ याद आ गई और समचार पत्रों की वो सुर्ख खबरें भी।

इस सम्मान से वास्तव में मुझे बेहद खुशी हो रही थी पर दिल में एक कसक भी थी। जीवन की पाठशाला ने बहुत कुछ सिखा दिया था। इस बात को मैं महसूस कर रहा था। मेरी दृष्टि से यह सम्मान तो उन ग्रामीणों का था, जिन्होंने मेरी आवाज़ से आवाज़ मिलायी थी और कडप्पा शाखा का टारगेट पूरा किया था। आजकल टारगेट का ज़माना है। जो टारगेट के खेल में माहिर हैं, वही सिकंदर हैं अन्यथा बरसों की मेहनत पर पानी फिर जाता है। टारगेट का झंडा मैं भी फहरा कर आया था जो पिछले दस वर्षों में कभी नहीं हुआ था।

बहरहाल मंच पर बैठे–बैठे मुझे घर परिवार की याद आ गई कि यह सम्मान तो मेरी पत्नी का भी है, जिसने अकेले घर की ज़िम्मेदारियों को सँभाला था। पाँच वर्षों का अकेलापन भोगा था। जीवन के अजूबेपन को झेला था। बच्चे कच्ची उम्र पार करके जवानी की दहलीज़ पर दस्तक दे रहे थे। यही वह उम्र होती है बच्चों की, जहाँ उन्हे सँभालने की और सँभलने ज़रूरत अधिक होती है। उनकी ज़िंदगी जीवन के उस चौराहे पर खड़ी होती है, जहाँ से तमाम राहें बनने, बिगड़ने, बहकने और फिसलने की ओर निकलती हैं। एक ओर प्रमोशन के झंडे तो दूसरी ओर घर - परिवार की फ़िक्र।

मुझे याद है कि स्केल वन का प्रमोशन पच्चीस साल के बाद मिला था। ट्रांसफर के सदमे से सदैव परेशान रहा। 25 – 30 साल के बाद पहला प्रमोशन और वह भी गाँव – खेड़े में....! सरकारी महकमों में इस ट्रांसफर नामक सोच से कितना नुक़सान होता है लोगों का और देश की व्यवस्था का भी यह आज भी लोग ठीक से समझ नहीं रहे हैं इसका मन ही मन बड़ा इसका अफ़सोस हो रहा था ! ख़ैर, चार साल बाद यह दूसरा प्रमोशन था। महीने भर भी मैं परिवार के साथ नहीं रह पाया था कि अचानक एक दिन पुन: ट्रांसफर ऑर्डर थमा दिया गया। शहर से सीधे गाँव – खेड़े में, उत्तर से सीधे दक्षिण प्रदेश में जाना पड़ा, वह भी परिवार के बगैर। पत्नी की नौकरी और बच्चों की पढ़ाई के चलते उन्हे साथ ले जाना संभव नहीं था। अत: खाने-पीने, उठने-बैठने, बोली- भाषा, रहने इत्यादि तमाम तरह की परेशानियों को झेलते हुए मुझे तो नानी याद आ गई थी। मरता बेचारा क्या न करता ! सो जाना पड़ा। सोच रहा था कमबख़्त ये भी कोई प्रमोशन है ! बसी- बसाई दुनिया छोड़कर गाँव में जाओ। वेतन में इज़ाफा सिर्फ सैकड़ों का और सामाजिक साँस्कृतिक नुक़सान लाखों का ! नई गृहस्थी बसाओ, वो खर्चा अलग से ! मगर क्या करें साहब, बैंकिंग इंडस्ट्री में तबादला, नौकरी का एक अविभाज्य घटक होता है, जो वर्षों से चली आ रही एक लाईलाज बीमारी है। इस बीमारी के चलते महानगरों में रहनेवाले कर्मियों और महिलाओं का पिछले तीन दशकों में काफी नुकसान उठाना पड़ा है। कंप्यूटर और तकनीकी के इस युग में अब तो इस बीमारी का इलाज होना ही चाहिए ! मन ही मन कोसते हुए मैंने अपने परिवार और शहर से बिदाई ली थी।

कडप्पा शाखा में मैंने अपनी नई पारी आरंभ की। एक ओर तमाम समस्याएँ तो दूसरी ओर पदोन्नति की गरमी भी थी। भाषाई परेशानी, गंवई तौर– तरीके, ग्रामीण बैंकिंग, लोकल लोगों की दबंगई इत्यादि समस्याओं के चलते लोग मुझ पर हँसते और मैं दिन काटने के चक्कर में मुस्करा देता। ख़ैर पाँच वर्षों से तक आंध्रप्रदेश के इस कड्प्पा शाखा में बतौर प्रबंधक अपनी सेवाएँ मैंने प्रदान की।

मैं सोच रहा था कि आख़िर इस सफलता के पीछे एक राज़ भी तो छिपा था कि, किसी तरह ग्रामीण सेवा के तीन वर्ष पूरे कर लूँ और फिर अपने होमटाउन को लौट जाऊँ, पर हुआ कुछ विपरीत। टारगेट पूरा न होने की वजह से मेरा कार्यकाल उसी शाखा में दो वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया। मुझे भय था कि यदि इस बार भी टारगेट पूरा नहीं हुआ तो.......! किसी भी तरह मुझे वापस अपने परिवार के बीच लौटना था। मगर हाँ, मैं बैंक की ज़िम्मेदारियों से भागना भी नहीं चाहता था। करो या मरो की स्थिति से मैं गुज़र रहा था उन दिनों।

कितना अबूझ होता है ना जीवन ! वह अपने को कभी पूरा व्यक्त नहीं करता। निराशा के ऐसे क्षणों में अक्सर अंदर से कोई कहता रहता है कि चिंता मत करो, सब कुछ अच्छा होगा। ऐसे स्पंदनों से उचाट मन कभी-कभी सुकून पाता है।

सम्मान के पश्चात् अपने भाषण में मैंने कहा था कि, मित्रों, मुझे जीवन में कवि शैलेंन्द्र की ये पंक्तियाँ प्राय: संबल प्रदान करती हैं -

' तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी की जीत पर यकीन कर

अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर।'

इस मंत्र को मैंने अपना जीवन मंत्र बना लिया है और चुनौतियों के हर मोड़ पर इस मंत्र को जीवन गीत बनाने की कोशिश करता हूँ। मित्रों, आज के इस आयोजन के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, यह सम्मान मैं सिद्धप्पा को समर्पित कर रहा हूँ। लोग चकित हो गए कि यह सिद्धप्पा कौन है !

ख़ैर, सम्मान समारोह समाप्त हुआ। कार्यक्रम के अगले ही दिन मैं अपने होमटाउन गाज़ियाबाद की ओर रवाना हो गया। ट्रेन अब पूरी रफ्तार से दौड़ने लगी थी। मन की मुंडेर पर खट्टी– मीठी यादों का सिलसिला पेंग ले रहा था।

वर्षो लम्बी ज़िंदगी में कुछ बातें ही याद रहती हैं। साहित्यकारों के शब्दों में अज़ीब–सा करिश्मा होता है। वे सिर्फ लकीर के फ़कीर नहीं होते, बल्कि जीवन का मर्म उँडेलकर रख देते हैं। कमोबेश वह पुराना

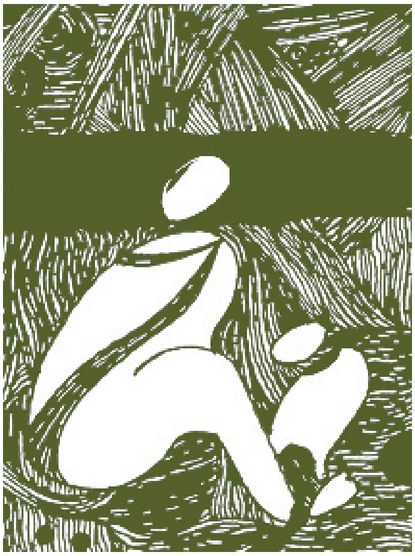

दोहा मेरे लिए पथ प्रदर्शक बना -

मीलों लम्बी ज़िंदगी, बरसों दौड़े दौड़,

बाकी सब विस्मृत हुआ, याद रहे कुछ मोड़।

दरअसल जिस जिले में मेरी शाखा थी उस जिले में एक नदी बहती थी। नदी बेछूट थी। एक ओर वरदान तो दूसरी ओर अभिशाप। जिस क्षेत्र से बहती वहाँ तो फसल अच्छी उगती, किंतु कभी-कभी तबाही मचाते हुए बाढ़ भी लाती थी। इस पर बाँध बनाकर पानी को रोकना ज़रूरी था, ताकि सुचारू रूप से पानी खेतों तक पहुँचाया जा सके और बाढ़ को रोका जा सके।

मेरे बैंक की शाखा जिस क्षेत्र में थी वहाँ पिछले कुछ वर्षों से सूखे का आलम था। सूखे की वजह से लोग बदहाली का जीवन जी रहे थे। कई प्रकार के कृषि लोन उस क्षेत्र में बाँटे गए थे पर लोन की वसूली नहीं हो पा रही थी। स्थानीय नेतागण कर्ज़ माफ़ी की रट लगाए हुए थे। इससे लोगों में ग़लतफ़हमी पैदा हो गई थी, पर कुछ लोग इमानदार भी थे। वे कर्ज़ चुकाना चाहते थे, किंतु परिस्थितियों के आगे मजबूर थे। उनके इस जज़्बे को सलाम करने को दिल चाह रहा था।

टारगेट पूरा करने के आसुरी ख़याल ने मुझे सख़्त बना दिया और साम-दाम-दंड-भेद की नीति अपनाते हुए मैंने "मिशन एन.पी.ए." (नॉन परफॉर्मिंग असेट- ऐसे बैंक लोन जो वसूल न हो रहे हों) के तहत येन-केन प्रकारेण लोन वसूली को अपना लक्ष्य बनाया। विकास की इस सरिता के रूप में मैं लोकतंत्र का सपना देख रहा था। इस पिछड़े हुए इलाके के उपेक्षितों के लिए जागरूकता, भागीदारी, और अवसरों की सुलभता का विचार मेरे मन में गूँज रहा था। लोगों की शिकायतें सुन-सुनकर मेरे कान पक गए थे। शाखा में मुझे मिलाकर कुल पाँच कर्मचारी थे, एक – दो तो रोज़ छुट्टी पर रहते। मुखिया होने के नाते तिज़ोरी की चाबी से लेकर साफ– सफाई और गेट खोलने बंद करने की सारी ज़िम्मेदारी मेरी थी, क्योंकि........ ख़ैर यह विषय लम्बा हो जाएगा....।

कुछ ही दिनों बाद जिला स्तर पर सरकारी एजेंसियों की एक बैठक में मुझे निमंत्रित किया गया। क्षेत्र के विकास और समस्याओं पर चर्चा होनी थी। उनके लिए ये महज़ खानापूर्ति थी पर मेरे लिए मिशन था। सरकारी अधिकारियों के सामने मैंने नदी पर बाँध बनाने और नहर निकालने की योजना रखी। वहाँ के जीवन के बारे में और खेतों की उपज के बारे में लोगों को समझाया। वह मोड़ मैंने बताया जहाँ बाँध बनाना ज़रूरी था। इससे एक ओर हमारी शाखा के क्षेत्र के लोगों को बाढ़ से राहत मिलने वाली थी, तो दूसरी ओर अच्छी फसल। योजना पर लगनेवाली लागत के लिए आवश्यक बैंक लोन का प्रस्ताव बनाने का ज़िम्मा मैंने उठाया और इसे अपने बैंक के प्रधान कार्यालय से मंज़ूरी दिलवाने का भरोसा भी दिया। क्षेत्र के मुखिया ने इस योजना के बारे में मुझे पहले ही बता दिया था, अत: प्रधान कार्यालय से इस विषय पर मेरी चर्चा हो गई थी।

वैसे इसके पहले क्षेत्र के लोग बाढ़ की समस्या के समाधान के लिए जिलाधिकारियों से कई बार मिल चुके थे। हर साल एक बड़ी सभा आयोजित की जाती और उसमें चर्चा की जाती कि यदि बाढ़ आई तो राहत कार्य किस प्रकार किया जाएगा ! मदद कैसे पहुँचाई जाएगी ! मुआवज़े की राशि कैसे वितरित होगी! राहत शिविर कहाँ लगेगा ! बीमारी में दवाइयाँ कैसे पहुँचाई जाएँगी, इत्यादि इत्यादि! पर इन सभाओं में बाँध बनाकर चारों ओर सिंचाई के लिए नहर बनाने पर कभी कोई

चर्चा नहीं उठती थी। इसके कई कारण रहे होंगे, शायद स्वार्थ या कुछ और.........।

आज तक आर्थिक मुद्दा ही उनके लिए सिरदर्द बना था। मैंने प्रस्ताव को प्रधान कार्यालय भेज दिया। साथ में जिला कलेक्टर और क्षेत्र के मंत्री जी का सिफारिश पत्र भी जोड़ दिया। यह प्रोजेक्ट लोन का एक बड़ा प्रस्ताव था, जो बेहद ही संवेदनशील था। बैंक को इस प्रस्ताव में रुचि थी। राज्य सरकार गारंटी देने को तैयार थी। लोन मंजूरी की प्रक्रिया आरंभ हुई और लगातार बैठकें होने लगी। लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई।

मेरी कीर्ति अब क्षेत्र में चारों ओर फैल गई थी। लोगों को लग रहा था कि नदी पर बाँध मेरी वजह से बन रहा है। मैं लोन पास करवा रहा हूँ, इसलिए विकास की नहर उनके घरों तक पहुँचने वाली है। वे ऐसा मान बैठे थे कि क्षेत्र में जो क्रान्ति होने जा रही है उसका सूत्रधार मैं हूँ। इसका लाभ भी मुझे मिलने लगा।

लोग दूर–दूर से मिलने आने लगे। अपने बैंकिग के करोबार को निपटाने लगे। धीरे – धीरे बैंक के काम–काज में गति आने लगी। व्यापार बढ़ने लगा। नए खाते खुलने लगे। पुराने लोन वसूल होने लगे। नए लोन दिए जाने लगे। शाखा का डिपॉजिट फिगर भी बढ़ गया, जिसकी मैंने कभी उम्मीद नहीं की थी। इन्ही ग्राहकों की मदद से मैंने पुराने लोन वसूलने के लिए सख़्त कदम उठाए।

एक दिन वह भी आया जब टारगेट पूरा हो गया। मैं बेहद खुश था। मेरा टर्म अब पूरा होने जा रहा था, इसलिए मैं अपने क्षेत्र में घूम-घूमकर लोगों से मिल रहा था। अचानक उस दरवाज़े पर भी पहुँचा, जिसका कुछ लोन मैंने समझौता प्रस्ताव के तहत माफ़ करवाया था। वह सिद्धप्पा का घर था। बेहद उदासी का आलम था वहाँ। यह घटना मेरे दिल में सदा के लिए यादगार बन गई। जीवन में शायद ही कभी मैं इसे भुला पाऊँगा।

मुझे देखकर सिद्धप्पा मेरे पैरों पर गिर गया और फूट-फूटकर रोते हुए कहने लगा, 'सर्र ! मैं बहुत गरीब होना जी, पर अपना इज्ज़त बहुत प्यारा होना......। किसी का कर्ज़ बाकी रखना हमको शर्म की बात होना। आप्प वसूली के लिए मेरे घर आना तो कर्ज़ चुकाने के लिए मैंने बेटी की शादी के लिए रखा पैसा आपके बैंक में जमा कर देना। पर बाद में अचानक मेरी पत्नी बीमार होना जी, मैंन्ने सोना (जेवर) बेचकर उसका इलाज करना। बाद में लड़के वाले शादी के वास्ते बार-बार मेरे घर को आना जी। मैं मजबूर होना, मेरे पास पैस्सा नहीं होना। कैस्सा शादी करेंगा ? फिर शादी टूट जाना। मेरी बेटी को बड़ा धक्का लगना। घर की लाज बचाने के लिए एक दिन गले में फंदा लगाकर वह झूल्ल गई जी। मेरी पत्नी को इसका सदम्मा लगना, वह भी भगवान् को प्यारी हो गई। मैं तो लूट गया सर्र। अब मेरे पास खाने को भी कुछ नहीं होना, किसके सहारे जीना ! शायद एक दिन हम्म भी फंदा लगा लेंगा सर्र........."

उसकी इस करुण गाथा ने मुझे झकझोर कर रख दिया। वह आँसुओं को रोक नहीं पा रहा था। मेरी ज़ुबान सन्न हो गई थी। मैंने उसे धीरज दिया। उसके कंधो पर हाथ रखकर कुछ देर तक उसे सहलाते रहा और भारी कदमों से आगे बढ़ गया। मन ही मन मैं अपने आपको दोषी मानने लगा।

मुझे याद है मिशन एन.पी.ए. के तहत लोन वसूलने के लिए जब मैं गाँव- गाँव घूम रहा था तब एक दिन अचानक इस किसान सिद्धप्पा के घर पहुँच गया और लोन चुकाने के लिए उस पर दबाव डाला। पहले तो वह अपनी ग़रीबी और अकाल का रोना रोने लगा। पर जब मैंने उसे समझौता प्रस्ताव के तहत लोन का कुछ हिस्सा माफ़ करने के बारे में बताया और कुछ दबाव बनाया तो वह राज़ी हो गया। अकाल के कारण खेती संभव नही थी, किंतु मेहनत मज़दूरी करके वह अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहा था। कुछ लोन माफ़ हो जाएगा इस लालच में उसने निश्चित समय में शेष लोन राशि बैंक में जमा कर दी। समझौता प्रस्ताव के तहत मैंने उसे ऋण मुक्त कर दिया। इस तरह कई खातों की वसूली उस दौरान मैंने की। मेरी इस बाज़ीगरी पर मेरे आलाकमान बड़े खुश थे, सभी लोग मेरी तारीफ कर रहे थे। मेरा उदाहरण पेश कर रहे थे। इसी का नतीजा था कि मुझे प्रधान कार्यालय बुलाकर सम्मानित किया गया था।

सरपट भागती ट्रेन अचानक रुकी। एक झटका-सा लगा। मैं अपनी यादों को समेटते हुए बाहर आया और बाहर झाँकने लगा, तेज़ हवा की मुक्केबाज़ी जारी थी। कुछ बूँदा-बाँदी और फिर अचानक कड़ी धूप, जलती धरती, झुलसते सपने। सामने एक जाना पहचाना – सा आदमी दिखाई दिया।

मुझे लगा जैसे सामने काला अधनंगा, लुंगी लपेटे सिद्धप्पा फूट–फूटकर रो रहा था। यादों के टीले पर खड़ा मैं हाथ जोड़कर उससे कह रहा था –

'सिद्धप्पा हो सके तो मुझे माफ़ कर देना। मुझे तुम पर दबाव नहीं डालना चाहिए था। पर क्या करूँ भाई ! मैं ड्यूटी निभा रहा था और तुम इज्ज़त की ख़ातिर फर्ज़ अदा कर रहे थे। आगे जो कुछ हुआ वह तो नियति का खेल था। काश ! तुम जैसी ईमानदारी उन घाघ पूँजीपतियों और नेताओं में भी होती जो करोड़ों रुपयों का लोन आपसी मिलीभगत के चलते डकारकर बैठ जाते हैं। उनके लिए यह लाज –लज्जा या शरमो हया की बात नहीं, बल्कि शान की बात होती है। इस डूबी हुई अनगिनत करोड़ों की पूँजी से देश के कई सिद्धप्पाओं का जीवन आबाद हो सकता है। कई नदियों पर बाँध बनाकर सिंचाई के लिए नहरें निकाली जा सकती हैं। शिक्षा, बिजली, पानी, हाट-बाज़ार, पक्के मकानों का इंतज़ाम किया जा सकता है। अर्थी के बजाय बेटियों की डोलियाँ सजाई जा सकती हैं.........मुझे माफ़ कर देना मेरे भाई.....मुझे माफ़ कर देना....।'

शायद यह मेरा भ्रम था ! मैं अभी तक उस सदमे से बाहर नहीं निकल पाया था। दूर क्षितिज पर सूर्य पहाड़ियों के आँचल में दम तोड़ने की तैयारी कर रहा था। ट्रेन की सीटी बजी। नि:शब्द होकर मैं पुन: अपनी सीट पर आकर बैठ गया। काले शीशे से बाहर झाँकने की कोशिश कर रहा था। सफेद लुंगी लपेटे, काला अधनंगा एक शख़्स बेतहाशा भागा चला जा रहा था। मैं अपने भीतर पनपते दर्द के ज्वार को दबाने की कोशिश कर रहा था।

000

कथा-कहानी

सेहरे का सगुन

कामेश्वर

कामेश्वर
बी-134, आदर्श नगर, कुसमुण्डा, कोरबा (छ ग)-495454
मोबाइल- 8959193470
ईमेल- rajkameshwar@ gmail.com

असलम फुफेरे भाई आफ़ताब की शादी के ज़श्न में शामिल होने को लेकर बड़े उत्साह में था। सभी नाते-रिश्तेदारों से मुलाक़ात हो जाएगी। बरसों हो गए बिरादरी के किसी ज़श्न में शामिल हुए। ऐसे ज़श्नों की बचपन की कुछ आधी-अधूरी यादें थीं। कई रिश्तेदारों का तो उसने सिर्फ़ ज़िक्र ही सुना था। बहुतों को तो वह पहली बार देखेगा। नौकरी के सिलसिले में अम्मी और अब्बा अधिकतर अलग-अलग ही रहते आए। वह भी बोर्डिंग स्कूल में अलग-थलग ही रहा। और अब नौकरी लगने के बाद तो जैसे वह अपनी बिरादरी से कट ही गया था।

वह यार-दोस्तों में ही ज़्यादा रहता आया था। उनके परिवारों में घुल-मिल जाता था। इतना कि जश्न के मौके पर पहुँचते ही इंतज़ाम का पूरा कमांड अपने हाथों में इस तरह ले लेता था, मानों असली मेज़बान वही हो। ज़श्न चाहे मुसलमान परिवार का हो या हिंदू। जश्न के इंतज़ामात में उसे उसकी सक्रियता देखकर लोग भौंचक हो जाते थे। उसको न जानने वाले रिश्तेदार कहते, यह नया मुखिया कहाँ से आ टपका? इसे कभी देखा तो नहीं। पर उसके रिश्तों के संबोधन और हर काम में उसकी तत्परता देख लोग जल्द ही उसके क़ायल हो जाते थे। वैसे भी, अगर कोई काम पर नज़र रखे, हिदायतें देता फिरे और मौका पड़ने पर काम में हाथ भी बँटाए तो भला किसे आपत्ति होगी? फिर तो चारों तरफ से उसी की पुकार होने लगती थी। अपनी हाज़िरज़वाबी और सूझ से वह किसी भी महफ़िल में सिक्का ज़माने में माहिर है।

पर अपनी बिरादरी के किसी ज़श्न में अपनी मौजूदगी का इस तरह अहसास कराने का मौका उसे नहीं मिला था। बचपन में अम्मी-अब्बा के साथ बिरादरी के कुछ ज़श्नों की उसे याद थी, पर तब वह बहुत छोटा था। अम्मी-अब्बा रिश्तेदारों का जिस तरह से ज़िक्र करते थे, लगता था कि अब उसका परिवार नाते-रिश्तेदारों से अलग-थलग पड़ गया था। अम्मी उन्हें जलनखोर और घमंडी कहती थीं। उनकी बातों से तो लगता है कि रिश्तेदार भी उन्हें वैसा ही समझते होंगे। घमंडी और जलनखोर। जबकि यह बात सच नहीं थी। अम्मी आज़ाद ख़याल थीं, मुँह पर बोल देती हैं, पर जलनखोर और घमंडी तो बिल्कुल नहीं थीं। और अब्बा बेचारे तो भले आदमी ठहरे। डीआईजी, सीआईएसएफ होते हुए भी कोई बड़प्पन नहीं, कोई ठसक नहीं। इस बात को लेकर अम्मी उन पर नाराज़ रहती थीं।

उसे तो लगता था, रिश्तेदारों का एक-दूसरे को जलनखोर और घमंडी समझने का कारण वास्तविकताओं से ज़्यादा ग़लतफ़हमियाँ थी और वह उनसे मिलकर अपने व्यवहार से उनकी राय को बदल सकता था। अपनी बिरादरी के ज़श्नों में भी उसी तरह सिक्का जमा सकता था, जैसे यार-दोस्तों की बिरादरी में। आफ़ताब की शादी की दावत को उसने एक मौके की तरह लिया। अम्मी से फ़ोन पर बात की तो उन्होंने कहा, नहीं जाना। बड़ी फूफीजान के यहाँ बेइज़्ज़ती ही होती है। उसने ज़ोर दिया तो बोलीं, उसे जाना है तो हो आए, लेकिन वे नहीं जाएँगी। अब्बा से पूछने पर उन्होंने अपनी व्यस्तता बता दी। अलबत्ता, उन्होंने भी कहा, वह जाना चाहता है तो चला जाए।

बचपन में वह आफ़ताब के साथ खेला-कूदा था। बाद में उसके बोर्डिंग स्कूल चले जाने पर

मुलाकातें बंद हो गईं। कभी-कभार फ़ोन पर बातें हो जाती थीं। पिछले सालों से तो वह भी नहीं हुई थी। आफ़ताब उसे जश्न में पहुँचा देखकर वह खुश हो जाएगा। बड़ी फूफीजान ने जो ग़लतफ़हमियाँ पाल रखी होंगी वे भी दूर हो जाएँगी। बिरादरी की लड़कियों से मुलाक़ात होने का अपना आकर्षण तो था ही। रिश्तेदार उसे केवल नाम से ही जानते होंगे। वे भी देखें तो सही, कितना ज़हीन, दिलखुश और नेक बंदा है वह। ईर्ष्या, जलन, घमंड जैसी टुच्ची बातों पर यक़ीन नहीं रखता। और किसी को रखना भी नहीं चाहिए।

रास्ते में उसने आफ़ताब को उत्साह के साथ फ़ोन लगाया। उसने कहा, सीधे होटल ब्लू डायमंड पहुँचो। मेहमानों के ठहरने का इंतज़ाम वहीं पर है। उसका उत्साह ठंडा पड़ गया। उसने सोचा था, उनकी बड़ी-सी हवेली है। परिवार के मेहमानों को घर पर ही ठहराएँगे। सबसे मिलने-जुलने का मौका मिल जाएगा। बड़ा-सा घर है। मैरिज़ हॉल जैसा। फिर भी रिश्तेदारों को होटल में ठहरा रहे हैं! बड़े आदमी हैं भई! उसने सोचा। हालाँकि, वह खुद अपने-आप को छोटा नहीं समझता। वह भी एक एमएनसी में मैनेजर था। और उसे विश्वास था कि समझदारी में उनसे बीस ही ठहरेगा। आज सबसे मिले-जुलेगा तो उनकी यह ग़लतफ़हमी भी दूर कर देगा। उनको अपनी समझदारी का क़ायल कर देगा। पर होटल में रुकवाने की व्यवस्था ने उसकी उमंग को कुछ ठंडा कर दिया।

होटल की सीढ़ियाँ चढ़कर वह गलियारे में पहुँचा। देखा, छोटी फूफीजान भी वहीं थीं। बगल के कमरे से झाँक रहीं थीं। उसे पहचान नहीं पाईं। नज़दीक पहुँचकर उसने कहा, "फूफीजान!...मुझे पहचाना?"

उन्होंने गौर से देखा, "अरे अश्शू!" उसने मुस्करा दिया। वे बोलीं, "कितने बड़े हो गए!...मैं तो पहचान ही नहीं पा रही थी।...और सब कैसे हैं?...अम्मी-अब्बा नहीं आए?"

"पापा की नौकरी तो आप जानती हैं फूफीजान!" उसने सफाई दी, "कश्मीर के मोर्चे पर तैनात हैं अभी। और अम्मी आना तो चाहती थीं, पर इन दिनों उनकी तबीयत नासाज़ चल रही है।"

"हूँअ्" फूफीजान ने यूँ कहा, मानों वे भी कुछ-कुछ समझती थीं, "बेटा! इज़्ज़त न मिले, ख़ातिरदारी न हो तो कौन भला आना चाहेगा? हमें ही देख लो। होटल में ठहरा दिया आपा ने!...खैर, अच्छा किया, तू आ गया। बड़े दिन बाद देखा तुम्हें बेटा!...जाओ! जाकर फ्रेश-वैश हो लो। फिर चलेंगे भई, सेहरे के ज़श्न में...।" वे मुँह बिचकाते हुई मुस्कराईं।

अशरफ़ अपना सूटकेस लेकर बगल के खाली कमरे में घुस गया। उसने हाथ-मुँह धोकर चेहरे और बालों पर क्रीम- वीम लगाया। फिर सूटकेस से ब्रांडेड पज़ामा-कुर्ता निकाला। इस मौके के लिए कल ही जाकर खरीदा था उसने। बादामी कलर और शानदार कढ़ाई। ऊपर हरे सिल्क का जैकेट। चेहरे और बालों को कंघी करता हुआ आईने में अपने चेहरे को गौर से देखा तो खुद पर मोहित हो उठा। आज कहीं वह महफ़िल न लूट ले! मुस्कराते हुए उसने अपने अगल-बगल डीओ छिड़का और दरवाज़े को बंद कर बाहर निकल आया। फूफीजान का कमरा खुला हुआ था। वे भी आईने के सामने अपने गले के हीरे की हार का मुआयना कर रही थीं। एक लड़की सूटकेस में कुछ ढूँढ़ रही थी। असलम ने उसे देखा तो सोचा, अरे! यह भी तो है! आइने में असलम का अक़्श देखकर फूफीजान उसकी ओर मुड़ीं, "आओ-आओ!...हो गए तैयार?"

"जी!" बेड पर बैठते हुए उसने कहा।

"सलाम भाईजान!" शाहीन मुस्कराई।

"शाहीन!...कितनी बड़ी हो गई...!" उसने कहा। बचपन में घोड़ा बनकर अपनी पीठ पर सवारी कराया था उसे। उसे याद होगा भी!

"तुम भी तो कितने बड़े हो गए बेटा!" फूफीजान ने कहा, "दिन जाते देर नहीं लगती। अब तो इसकी शादी की चिंता है। है कोई लड़का तुम्हारी नज़र में?"

शाहीन ने शरमा कर मुँह फेर लिया। असलम ने कहा, "फ़िक्र क्यों करती हैं फूफीजान? हमारी शाहीन के लिए लड़कों की कमी नहीं है। आपने कहा है तो मैं देखना शुरू करता हूँ!"

"फ़िक्र होती है बेटा!" फूफीजान ने कहा, "अच्छे शौहर का मिलना तक़दीर की बात होती है...खैर, और बताओ क्या हाल हैं?"

"दरअसल, मैं आपसे एक सलाह लेना चाहता हूँ।" उसने सकुचाते हुए कहा।

"बोल न, क्या बात है?" उन्होंने उसे गौर से देखा। असलम उनसे सलाह लेने आया है! एक ही शहर में रहते बरसों बाद मिल रहा है। इसकी मम्मी से पटती नहीं। अलग-थलग ही रहती है वह तो। उनकी बड़ी बेटी की शादी में भी नहीं आई थी। अपनी नौकरी का बड़ा घमण्ड है उसे। लेकिन यह लड़का कुछ भला लगता है। अचानक कौन-सी सलाह लेने आ गया!

"ख़ालाजान! सोचता हूँ, सेहरे के सगुन में कैश ही दे दूँ!"

"दे दो न बेटा! हम लोग भी कैश ही दे रहे हैं।" फूफीजान की उत्सुकता फीकी पड़ गई।

"वैसे कितना देना ठीक रहेगा फूफी जान?" उसने साफ ढंग से पूछा।

फूफीजान सोच में पड़ गईं, "अब मैं क्या बताऊँ बेटा!...जैसी जिसकी हैसियत।" फिर उन्होंने कहा, "वैसे सगुन देना तुम्हारा तो बनता नहीं। आफ़ताब से तुम छोटे ही हो। आना था तुम्हारे अम्मी-अब्बा को!"

"हाँ, वे आ नहीं पाए" कहकर असलम चुप हो गया। ज़्यादा सफाई देने का कोई मतलब नहीं था।

"आपा भी तो नहीं पूछतीं।" उन्होंने बड़ी फूफीजान का ज़िक्र किया, "...कोई ऐसे ही किसी के यहाँ थोड़े ही चला आता है, मैं तो कहती हूँ तुम्हें सगुन देने की कोई ज़रूरत नहीं। देख रहा है न। लोग शादी-ब्याह में नाते-रिश्तेदारों को घर में ठहराते हैं, पर यहाँ तो होटल में टिका रखा है।"

असलम ने उन्हें सनकते देखा तो उठते हुए बोला, "ठीक है फूफीजान! आप लोग भी तैयार हो जाइए, फिर निकलते हैं।"

वह गलियारे में निकल आया। इक्के-दुक्के लोग कमरों में आ-जा रहे थे। दो-एक

परिचित किस्म के चेहरे दिखे तो उसने दुआ-सलाम की। सब अपने-अपनों में मस्त थे। कोई नजदीकी बंदा नहीं दिखा तो वह वापस अपने कमरे में आ गया। बिस्तर पर बैठकर ट्वीटर खोल लिया। एक ट्वीट ने उसका ध्यान खींचा। वीडियो में किसी हिंदू संगठन के लड़के एक मुसलमान बुज़ुर्ग से मार-पीट करते हुए उसकी दाढ़ी काट रहे थे। उससे जबरन 'जयश्रीराम' और 'वंदे मातरम्' कहला रहे थे। उस बुज़ुर्ग के अपमान को देखकर वह गुस्से से भर उठा। यह तो आए दिन की बात हो गई है। इन दंगाइयों के खिलाफ़ कोई कार्रवाई भी तो नहीं होती। उसका मन कुंठित हो गया। फिर पहले जैसा ज़माना आ पाएगा भी कि नहीं संदेह होता है। वह अपनी बिरादरी में अपने परिवार के प्रति फैली ग़लतफहमियों को दूर करने आया है। लेकिन हिंदू-मुसलमानों के बीच जो ग़लतफ़हमियाँ जान-बूझकर फैलाई जा रही हैं उसे कौन दूर करेगा!

वह फिर गलियारे में निकल आया। देखा, शाहीन दरवाज़े के बाहर खड़ी अपने सलवार-सूट की फीटिंग पर नज़रें फिरा रही थी। असलम को देखकर वह झेंप-सी गई, लेकिन तुरन्त सजग होकर पूछा, "तो आपने तय कर लिया भाईजान?"

"क्या?" असलम समझ नहीं पाया।

"हम लोग तो सगुन में इक्कीस हज़ार दे रहे हैं।" उसने बेहिचक बताया।

असलम को अचरज नहीं हुआ। पैसे तो खूब हैं इनके पास। इक्कीस हज़ार क्या, एक लाख भी दे सकते हैं। देते भी हैं। पर सगे भतीजे के सगुन में सिर्फ इक्कीस हज़ार! मतलब, छोटी फूफीजान अपनी आपा से नाराज़ चल रही हैं। कैसे रिश्तेदार हैं? एक-दूसरे के यहाँ आते-जाते हैं, मिलते-जुलते हैं, और भीतर ही भीतर जलते-भुनते रहते हैं। आफ़ताब के रूखे व्यवहार ने उसे मायूस किया था। सगुन में वह अपनी हैसियत के मुताबिक कुछ ज़्यादा पैसा देना चाहता था। पर अब उसने उसकी रक़म को घटा देना ही ठीक समझा। लेकिन कितना? यह वह तय नहीं कर पा रहा था। वह कोई कंजूस आदमी नहीं था। यार-दोस्तों पर खर्च करना उसे नहीं अखरता। अपने रूममेट अक़ील के सेहरे पर एक लाख रुपये का सगुन देने की सोची है। पर आफ़ताब के सगुन की रक़म तय करना उसके लिए मुश्किल हो रहा था। मम्मी ने फ़ोन पर चेताया भी था, "... सगुन में ज़्यादा-कुछ देने की ज़रूरत नहीं है। दे देना इक्कीस सौ रुपये।"

तब उसने सोचा था, अम्मी उनसे ख़ार खाए रहती हैं इसीलिए ऐसा कह रही होंगी। इक्कीस सौ रुपये तो बहुत कम हैं। रकम से देने वाले की हैसियत का भी तो पता चलता है। वह बड़े उत्साह के साथ यहाँ पहुँचा था। रिश्तेदारों से मिलने-जुलने का बहुत मन था। लेकिन यहाँ तो पुछारी ही नहीं थी। बस, यहाँ होटल में ठहरा दिया। लगता है, शादी नहीं, बल्कि शादी के बाद का रिसेप्शन अटेंड करने आए हों। ठीक ही बोल रही थीं मम्मी। उसने सोचा। सगुन में इक्कीस सौ रुपये ही देना ही ठीक रहेगा। लिफ़ाफ़े में तो देना है। बाद में खोलकर देखते रहें। उसकी बला से!

बिजली के झालरों, लट्टुओं और हंडों से हवेली जगमगा रही थी। स्वागत द्वार ही इतना शानदार बन पड़ा है तो भीतर तो जन्नत ही होना चाहिए। असलम ने सोचा। पैसे वाले हैं भई! सामने शानदार मंच पर गाव-तकिए के सहारे लड़कियों के बीच आफ़ताब बन्ना बना बैठा मुस्करा रहा था। अब पहले जैसा सींकिया नहीं रह गया था। बल्कि मोटा हो गया था। मंच के एक तरफ ढोलक लेकर बैठी महिलाएँ सेहरा-गीत गाने की तैयारी में थीं। बाकी शरीक मंच के सामने लगी कुर्सियों पर बैठे थे या चहलकदमी कर रहे थे। असलम को वहाँ दो-चार नीम पहचान वाले चेहरे दिखे। पर वह उनसे मुख़ातिब हुए बिना सीधे मंच की तरफ बढ़ गया। ज़नानियों से घिरे आफ़ताब की ओर हाथ बढ़ाते हुए वह बोला, "पहचाना?"

आफ़ताब ने पल भर उसे देखा, फिर मुस्कराते हुए बोला, "कमाल है भाई! आप तो ईद के चाँद हो रहे हैं। अब जाकर दिखे हैं!"

असलम झेंपते हुए मुस्कराया। मानों, अलहदेपन का ज़िम्मेदार वही हो। खुद तो कटे-कटे रहते हैं और तोहमत दूसरों पर लगाते हैं। बड़े चालाक हैं! पर वह भी कम चालाक नहीं। उसने मज़ाकिया लहजे में कहा, "भाईजान! माना, ईद के चाँद ने इंतज़ार कराया। पर निकला तो सही! आफ़ताब का तो दीदार ही नहीं मिलता। न जाने किन बादलों में छुपे रहते हैं!"

उसकी हाज़िरजवाबी पर आफ़ताब के साथ लड़कियाँ खिलखिला पड़ीं। मौका मिला नहीं, कि वह लपक लेता था। एक-दो ज़नानियों को पहचान पाया तो उनसे दुआ-सलाम हुई। अम्मी-अब्बा के बावत पूछने पर उसने वही सफाई दी। लेकिन समझ गया कि रिश्तेदार उन्हें घमंडी समझते हैं। लड़कियाँ सेहरे की रस्म पूरी करने के लिए उतावली हुई जा रही थीं।

"अब चलो...बाँधो न जीजू!" आफताब की छोटी बहन ने सेहरे की थाल आगे बढ़ाते हुए कहा।

"हाँ चलो, बन्ने को सेहरा बाँधें!" जीजू सेहरा लेकर आफ़ताब की पगड़ी में बाँधने लगे।

ढोलक की ताल पर सेहरे का गीत शुरू हो गया-

सेहरे में लागे संदल-हार
के सेहरा बन्ना भींजा इतर में...
शीश बन्ने के सेहरा सौहै
सेहरे में लागे हीरे लाल
के सेहरा बन्ना भींजा इतर में...

आफ़ताब की अम्मी ने देखा, और सब ज़नानियाँ तो गा रहीं हैं, पर शाहीन माटी की मूरत बनी बट-बट देख रही है। गाना भी नहीं सिखाया होगा इसकी माँ ने! खुद मुँह फुलाए बैठी है उधर। मनहूस कहीं की! बचपन से इसकी यह गंदी आदत है! उन्होंने उन्हें अनदेखा कर दिया। नाराज़ हैं तो रहें! मुबारक मौके पर भी मुँह फुलाने से बाज़ नहीं आती। रंग में भंग डालना इनकी आदत है। उसने ज़नानियों की आवाज़ में अपनी आवाज़ की ज़ोर भी मिला दी-

शीश तेरे फूलों का सेहरा
कलियों में लागे हीरे लाल
के सेहरा बन्ना भींजा इतर में...

दोनों फूफियों के बीच मनमुटाव को

असलम महसूस कर रहा था। पर वह कर ही क्या सकता था? वह तो अपने परिवार के प्रति उनकी ग़लतफ़हमियाँ दूर करने आया था। यहाँ तो ये आपस में ही ग़लतफ़हमियों की शिकार थीं। इनके साथ वह संबंधों को मज़बूत करने चला था। लेकिन इन्हें देखकर वह मायूस हो गया।

कैमरों के क्लिक ने उसका ध्यान खींचा। वह भी बन्ने के सामने आ गया और अपनी मोबाइल से शॉट्स लेने लगा। नाज़रीन के भी कुछ शॉट्स लेकर उनका ध्यान अपनी ओर खींचा। उसे लगा, अब जाकर हाज़िरी दर्ज़ हुई है। उसका हौसला कुछ बढ़ा। ढोलक की थाप के साथ लोकगीत का पारंपरिक लय महफ़िल को अपने असर में लिए हुए था। असलम भी उसके तर्ज़ को पकड़ चुका था। वह लड़कियों के पीछे जाकर खड़ा हो गया और गाने लगा:

मैया का प्यारा बाबा दुलारा
सेहरे पर अजब बहार
के सेहरा बन्ना भींजा इतर में...

बगल में खड़ी लड़की ने उसे कनखियों से देखा। नज़रें मिलीं तो वह मुस्कराया। ज़नानियों के साथ उसका गाना शायद उसे अनोखा लग हो। लड़की मुस्कराती हुई गा रही थी:

भाभी का प्यारा भैया दुलारा
अनोखा अजब सिंगार
के सेहरा बन्ना भींजा इतर में

"ऐ...शीरीन!" लड़कियों ने असलम के बगल में खड़ी लड़की को बुलाया, "तू भी आ न!" वे आफ़ताब के साथ ग्रुप फ़ोटोग्राफी करा रही थीं। मुस्कराने वाली लड़की उनके पास चली गई। जीजू सेहरे को छूकर पोज़ दे रहे थे। मोतियों की लड़ियों से आफ़ताब का चेहरा ढँक गया था। सेहरे पर सच में, लाल-हीरे-मोती जड़े हुए थे। असली होंगे! लाल-हीरे-मोती जड़ाना इनके लिए बड़ी बात नहीं।

थोड़ी देर में सगुन देने वालों का ताँता लग गया। छोटी फूफीजान ने अपने पर्स से लिफ़ाफ़ा निकाला और फुले मुँह लिए उसे आफ़ताब पर वारकर उसके हाथों में थमा दिया और उसकी बलइयाँ ली। नाराज़गी तो थी, लेकिन वे अपने फ़र्ज को तो नहीं भूल सकतीं। असलम मुस्कराया। उनके पीछे उसने भी अपनी जेब से लिफ़ाफ़ा निकाला। आफ़ताब को थमाकर गर्मजोशी से हाथ मिलाया और आगे बढ़ गया। लिफ़ाफ़ों को बहनें धराती जा रहीं थीं। बाद में खोलेंगे तो पता चलेगा। इक्कीस सौ रुपये। कंजूस ही समझेंगे उसे। समझते रहें। उसे तो यहाँ आना ही फ़ज़ूल लग रहा था।

ज़नानियाँ बन्ने को लेकर गेट की ओर बढ़ने लगीं। पीछे-पीछे सभी मेहमान भी आने लगे। शीरीन असलम के बगल में ही चल रही थी। ये लड़की रिश्तेदारों में से तो नहीं लगती! उसने पूछा, "आप...कहाँ से...?"

वह चौंक पड़ी। फिर उसके चेहरे पर सहज भाव देखकर उसे इत्मीनान हुआ। वह अपने नाम के अनुरूप शीरीं ज़बान में बोली, "जी, मैं तो इसी शहर की हूँ। आयशा... आफ़ताब भाईजान की बहन...मेरी फ्रेंड है। वैसे आप?"

शीरीन से उसे प्रतिप्रश्न की उम्मीद नहीं थी। लेकिन पूछने पर खुश हुआ। लड़की फ्रैंक है। वह बोला, "जी, मैं असलम...दिल्ली रहता हूँ। आफ़ताब, फुफेरे भाई हैं...वैसे क्या कर रही हैं आप?"

"जी...?" वह फिर चौंकी।

"मेरा मतलब...पढ़ रही हैं या...?

"जी" उसने हँसते हुए कहा, "...मैंने ज़ामिया से जर्नलिज़्म का कोर्स किया है।"

"ओह!" असलम ने उसे नए सिरे से देखा। उसकी सुंदरता में अब भोलेपन की जगह थोड़ी-सी होशियारी भी दिखने लगी। ऐसी ही खूबसूरत बीवी तो वह चाहता था। पर जर्नलिज़्म. . . काफी होशियार होगी। वह सोचता था, जर्नलिज़्म या लॉ पढ़ने वाली लड़कियों के साथ निभाना आसान नहीं होगा। नौकरी का भी ठिकाना नहीं रहता। वह तो अपनी अम्मी की तरह कोई पक्की नौकरी वाली बीवी चाहता था। पर अम्मी की तरह बीवी नहीं। अब्बा के साथ उनकी कभी नहीं पटी। बीवी ज़्यादा जानकार और ज़हीन हो तो शायद, ऐसा ही टकराव होता है। शुरू में, मतलब होश सँभालने के बाद उसने सोचा था कि वह अम्मी-अब्बा के बीच ग़लतफ़हमियाँ दूर कर देगा। बस, उन्हें इतना समझाना पड़ेगा कि जिन बातों को तूल देकर उन्होंने दूरियाँ बना रखी हैं वे बहुत मामूली हैं। ज़िंदगी को इनमें घसीटने का कोई मतलब नहीं। लेकिन जल्द ही उसे समझ में आ गया कि जिन्हें वह उनकी ग़लतफ़हमियाँ मानता वह उनकी ज़िंदगी की सचाई है। इसमें वह कुछ नहीं कर सकता। लेकिन अम्मी- अब्बा की ग़लतफ़हमियाँ दूर न कर पाने का मतलब यह नहीं कि वह रिश्तेदारों की ग़लतफ़हमियाँ दूर न कर सके। घर की बात अलग है। यहाँ वह अपने बात-व्यवहार से जता सकता है कि वह, और इसलिए उसके अम्मी-अब्बा भी घमंडी और जलनखोर नहीं हैं। पर यहाँ आकर लग रहा है कि वह इतना भी अक़्लमंद नहीं कि सबकी ग़लतफ़हमियाँ दूर कर सके। शायद, कोई कर भी नहीं सकता।

रिश्तेदारों से मिलने-जुलने का उत्साह जाता रहा था। एक शिरीन ही थी जो उसकी दिलचस्पी को क़ायम रखी हुई थी। उससे मिलने के बाद अब वह अपनी कल्पना की सुंदर, लेकिन घरेलू किस्म की बीवी में कुछ तब्दीलियाँ करने को मज़बूर था। उसके बगल में खड़ी शीरीन ब्लैक-ह्वाइट मर्मेड स्कर्ट में बेहद खूबसूरत लग रही थी। ऊँची-पूरी, सुडौल। गोल चेहरे पर गहरी चमकीली आँखें, सुतवाँ नाक और उभरे हुए होंठ। बादलों जैसे लम्बे, कर्ली, शेड्स वाले बालों के बीच उसका गोरा चेहरा चाँद-सा चमक रहा था। अपनी कल्पना की बीवी में जिस बिंदास खुलेपन को वह पसंद नहीं करता था वही उसे शिरीन में भा रहा था। फिर भी उसे एक बीवी के रूप में देखने से वह हिचक रहा था। ऐसी फास्ट फॉरवर्ड लड़की क्या एक अच्छी बीवी भी साबित होगी! फिलहाल, फ्लर्ट करने में क्या बुराई है! उसने सोचा और कहा, "...तो...जल्द ही हम आपको टीवी पर देखने जा रहे हैं!"

वह खिलखिलाई। तब तक वे चलते हुए गेट पर पहुँच चुके थे। घोड़ीवाला सड़क की दूसरी तरफ खड़ा था। वह वहीं से डिवाइडर पार कर सड़क क्रास करने की कोशिश में था। पर उसे मौका नहीं मिल रहा था। गाड़ियों की

रेलम-पेल, और पास ही ट्रैफिक पुलिस।

आफ़ताब के अब्बा भुनभुनाए। मामूजान ने घोड़ी वाले को ज़ोर से चिल्लाकर इशारा करते हुए कहा, "गोल चक्कर...गोल चक्कर...वहीं से क्रासिंग पार कर के आओ!"

घोड़ीवाले ने पता नहीं, कितना समझा, नहीं समझा, झुँझलाते हुए घोड़ी को पीछे मोड़कर उस पर बैठ गया और दुलकी चाल से गोलचक्कर की ओर बढ़ गया। पाँच मिनट बीत गए। दस मिनट बीत गए। घोड़ीवाला नहीं पहुँचा। मेहमान भी बेचैन होने लगे। आफ़ताब के अब्बा साले साहब को डाँटने लगे, "सुलेमान!...यही इंतज़ाम किया है तुम लोगों ने?"

ज़नानियाँ भी अधीर होने लगीं। बन्ने को दरवाज़े पर खड़ा रखकर इंतज़ार कराना अच्छी बात नहीं! दो-एक लड़कों को बाइक पर गोल चक्कर की तरफ दौड़ाया गया। उन्होंने आकर बताया कि घोड़ीवाले का तो अता-पता नहीं है। आफ़ताब के अब्बा का पारा चढ़ गया। अब किसको क्या बोलें? "हुँह!" उनके मुँह से निकला, फिर मामूजान को बोले, "...वह आने से रहा। अब जाओ...कार ही ले आओ!"

मामूजान ने तो मिट्टी पलीद करा दी। उन्हें मुँह लटकाए जाते देखकर आफ़ताब ने मन ही मन कहा। इस वाक़ये ने छोटी फूफी जान के मुरझाए चेहरे पर ताज़गी ला दी। अल्लाह का करम! सबको अपनी औक़ात का पता चल जाता है। पैसा है तो क्या हुआ? महूरत के समय काम न आया तो किस काम का? मेहमानों को बुलाकर बेइज़्ज़त करने का नतीज़ा है! नीयत सही न हो तो काम ऐसे ही बिगड़ते हैं! ऐन वक्त पर घोड़ीवाले ने भठा दिया। वे असलम को कनखिया कर मुस्कराईं। कनखियाने का मतलब वह समझ गया, पर उसे अच्छा नहीं लगा। बन्ने के घोड़ी के बजाय कार से जाने में कोई बेजा बात भी नहीं थी। पर फूफीजान इस पर ही खुश थीं। कैसी बहन हैं? और वह इन्हीं लोगों की ग़लतफ़हमियाँ दूर करने आया था। उसने सोचा और ऊबकर उसकी नज़रें शिरीन को खोजने लगीं। वह पीछे ही खड़ी थी। वह मुस्कराते हुए उसके बराबर में आ गया। वह भी मुस्कराई। वह बोला, "तो कहीं काम शुरू किया है आपने?"

"जी, अभी तो 'न्यूज़ प्वाइंट' में हूँ!" उसने एक लोकल न्यूज़ चैनल का नाम लिया, "...आगे देख रही हूँ!" अपने करियर को लेकर वह सजग दिखी।

"अरे, आपको तो नेशनल चैनल पर होना चाहिए।" उसने उसकी हौसला-अफ़ज़ाई करते हुए कहा, "दिल्ली आकर आज़माइए... अच्छा स्कोप है... वहाँ खुद को अकेली न समझिएगा। मीडिया में अपने भी वाक़िफ़कार हैं। आपके कुछ काम आ सके तो अपनी ख़ुशनसीबी होगी!"

उसके नाटकीय अंदाज़ को देखकर शिरीन हल्की-सी खिलखिला पड़ी। पास खड़ी लड़कियों का ध्यान उधर खिंच गया। उनमें से कुछ बुर्के में थीं। वे आपस में फुसफुसाईं। इतना खुलापन? क्या लड़कियों के लिए ज़ायज़ है? बड़े-बुज़ुर्ग पास खड़े हैं!

"जी, मैं भी यही सोच रही हूँ।" शिरीन उत्सुक हो उठी, "...बाहर निकले बिना अच्छे चैनल में जा पाना मुश्किल है। मैं तो अम्मी-अब्बा को कब से बोल रही हूँ। मान नहीं रहे हैं। लेकिन मैं मना लूँगी।"

शिरीन के हौसले को उसने मन ही मन सराहा। मज़बूत इरादे वाली लगती है यह लड़की! ऐसी लड़की से फ्लर्ट करने के बजाय दोस्ती करना बेहतर है! उसने हँसते हुए कहा, "आप ज़रूर मना लेंगी...और आप आएँगी तो बंदा हज़िर रहेगा।" दोनों हाथों को सामने फैलाकर उसने इस अंदाज़ में कहा कि फुसफुसाने वाली लड़कियाँ भी खिलखिला पड़ीं। असलम का दिल बाग-बाग हो गया।

मामूजान दस मिनट में कार ले आ गए। कार बक़ायदा फूल-मालाओं से सजी हुई थी। लेकिन बेचारे मामूजान की किरकिरी तो हो ही गई। घोड़ीवाले ने ऐन वक्त पर धोखा दे दिया तो वे भी भला क्या कर सकते थे? ऐन सबके सामने आफ़ताब के अब्बा के डाँटने पर वे मायूस हो गए थे। बड़ी फूफीजान कुछ लड़कियों को साथ लेकर उनके पीछे-पीछे गई थीं। लड़कियों ने घर में मौज़ूद मालाएँ, गजरे और फूल पत्तियाँ चिपकाकर कार को सजा दिया था।

ज़नानियों ने आफ़ताब को कार में बैठाया। ड्राइविंग सीट पर मामूजान थे। आफ़ताब की अम्मी और बहनें भी उसी कार में बैठ गईं। रिश्तेदार और मेहमान पीछे की कारों में बैठते जा रहे थे। छोटी फूफीजान और शाहीन मुँह फुलाए खड़ी थीं। कोई बुलाए तो वे भी बैठें! लेकिन सबको अपनों की पड़ी थी। कौन उधर ध्यान दे। आख़िरी कार में बैठते समय आफ़ताब के अब्बा की नज़र उन पर पड़ी, "रुक़इया बी!" उन्होंने पुकारा, "...खड़ी क्यों हैं? आप लोग भी आइए... बैठिए!"

छोटी फूफीजान, शाहीन और शिरीन आकर कार में बैठने लगीं। असलम को खड़े देखकर आफ़ताब के अब्बा ने उसे भी बुलाया, "अरे, तुम क्यों खड़े हो...आओ बरख़ुरदार!...इसी में आ जाओ!"

असलम को उनका बरख़ुरदार कहना अच्छा लगा। इसी तरह की नज़दीकी बनाने वह आया था। गाड़ी के पास आकर वह बैठने की जगह देखने लगा। आगे और बीच की सीटें भरी थीं। पीछे आमने-सामने की एक सीट पर छोटी ख़ालाजान और शाहीन बैठ गई थीं। दूसरी पर शिरीन के बगल में सीट खाली थी। ख़ुदा मेहरबान है! उसने शिरीन की ओर मुस्कराते हुए देखा। उसने खिसक कर उसके लिए ज़गह बना दी। असलम अपनी ख़ुशी को दबाते हुए बैठ गया, बोला, "चलिए, आप लोगों के साथ ही...कितनी दूर है फूफाजान?" उसने पूछा।

"सात किलोमीटर।"

फ्रंट सीट से आफ़ताब के अब्बा ने बताया, "...हमारा फार्म हाऊस तो है...दो-दो शादियाँ एक साथ हो जाती हैं वहाँ। चलो, देखना भला!"

छोटी फूफीजान ने उसे फिर कनखियाया। देख लो, कितने शेखीबाज हैं! धन-दौलत जैसे सिर्फ इन्होंने ही देखा है! असलम को भी साथ देने के लिए मुस्कराना पड़ा। उसकी मजबूरी शिरीन ने देख ली और वह भी मुस्करा पड़ी।

000

कथा-कहानी

स्वाभिमान

सेवक नैयर

सेवक नैयर
801-802, ए 2-ए, मानिकचंद मालाबार
हिल्ज़, वानोवरी, पुणे – 411040
मोबाइल- 8308093028
ई-मेल- sewaknayyar@gmail.com

तीस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते शिव चरण जीवन के सब उतार-चढ़ाव देख चुका था। शिव चरण का जन्म टिहरी-गढ़वाल के एक अत्यंत पिछड़े हुए गाँव में हुआ था। उसकी माँ उसे जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई थी। पिता गाँव के एक छोटे-मोटे हलवाई के साथ काम करता था। गाँव में ब्याह-शादियाँ होती थीं या किसी धार्मिक व सामाजिक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता था तो दोनों को खाना बनाने का काम मिल जाता था। इस प्रकार जो थोड़ी-बहुत कमाई होती थी उसी से वे साल भर गुज़ारा करते थे।

शिव चरण का पिता उसे पढ़ा-लिखाकर नामी रसोइया बनाना चाहता था। इसलिए उसका दाखिला गाँव से दो कोस दूर सरकारी स्कूल में करवा दिया गया था। शिव चरण पढ़ाई-लिखाई में होशियार था। हर बात मिनटों में समझ लेता था। हर काम फटाफट सीख जाता था। दस-ग्यारह का हुआ तो पिता के काम-काज में उसका हाथ भी बँटाने लगा था। लेकिन स्वाभिमानी ऐसा था कि नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता था। कोई उसके, उसके पिता अथवा उसके गाँव के खिलाफ दो अपशब्द भी बोल देता था तो वह मरने-मारने पर उतारू हो जाता था। इसलिए पिता को हर समय चिंता लगी रहती थी कि छोटी जात में जन्मा शिव चरण बड़ा होकर जाने क्या गुल खिलाएगा।

शिव चरण अभी पंद्रह-सोलह का ही हुआ था कि उसके गाँव में भयानक बाढ़ आ गई। गाँव के ऐन ऊपर एक काली बदली फटी और पूरे के पूरे गाँव को धराशायी कर गई। उसकी आँखों के सामने गाँव के गली-मुहल्ले बाढ़ में गर्क हो गए। मिट्टी और घास-फूस से बने कच्चे मकान एक-एककर ढहने लगे। वह खुद तो किसी तरह पीपल के एक विशाल पेड़ पर चढ़कर बच गया परंतु अपने पिता को न बचा पाया। गाँव के बीस-तीस लोगों के साथ वह भी पहाड़ों की गंधली मिट्टी से सने पानी की तेज़ तूफानी लहरों में बह गया। जब तक शहर से एन डी आर एफ की टीम सहायता के लिए गाँव पहुँचती, बहुत देर हो चुकी थी। कई हफ्तों तक लापता लोगों की तलाश चलती रही लेकिन कुछ फायदा न हुआ। दूर-दराज़ के मैदानी इलाक़ों में जब कुछ शव बरामद हुए तो यह पहचानना भी कठिन हो चुका था कि उनमें शिव चरण के पिता का शव था भी या नहीं।

शिव चरण दो दिन तक भूखा-प्यासा पीपल के पेड़ पर ही टँगा रहा था। एन डी आर एफ के एक जवान अनिल जादव ने जब उसे नीचे उतारने का प्रयत्न किया तो वह उसका विरोध करने लगा था क्योंकि उसका स्वाभिमान आड़े आ रहा था। वह इस बात को क़तई सहन नहीं कर सकता था कि किसी की दया अथवा कृपा पर आश्रित होकर जिए। उसकी इसी बात से अनिल

जादव उसका कायल हो गया था। वह शरीर में शिव चरण से तगड़ा था। अत: उसने ज़बरदस्ती शिव चरण को अपने कंधों पर बैठाया और नीचे उतार लिया। शिव चरण चीखता-चिल्लाता रहा लेकिन अनिल जादव ने एक न सुनी। बल्कि उसने शिव चरण को अपनी बचाव-नौका में बैठाया और अपने कैंप में ले आया था। कुछ ही दिन में शिव चरण एन डी आर एफ की पूरी टीम के साथ घुल-मिल गया था। भोर होते ही उनके साथ काम पर निकल जाता था और पूरा दिन बाढ़-पीड़ितों की सेवा में लगा रहता था। बाढ़ का प्रकोप समाप्त हुआ तो एन डी आर एफ की टीम उसे अपने साथ देहरादून ले आई थी और अपने सेंटर की मेस के बनिए के पास काम पर रखवा दिया।

मेस में शिव चरण जवानों और अधिकारियों का खाना परोसने से लेकर उनके जूठे बर्तन साफ करने तक के सब काम करता था। दिमाग से होशियार तो था ही, शरीर से भी तकड़ा था और परिश्रमी भी था। सूर्य उगने से पहले ही जग जाता था। बाल्टी में पानी लेकर अधिकारियों की कारें व स्कूटर धोया करता था। दोपहर के खाने के बाद खाली समय मिलता तो कॉमन-रूम से रद्दी अखबार समेटकर लिफाफे बनाया करता था। ऐसे हर काम में रुचि लेता था; जिसमें उसके आत्म-सम्मान का हनन न हो और दो-पैसों की कमाई भी हो जाए।

देखते ही देखते शिव चरण मेस की रसोई का हर काम समझने लगा था। राशन और सब्ज़ियों की खरीद, उनकी खपत का हिसाब-किताब, कारीगरों और कारिंदों की हाज़री इत्यादि सब सँभालने लगा था। उसकी रगों में छोटे-मोटे रसोइये का जो खून दौड़ रहा था अब वह ठाठें मारने लगा था। शाम को चाय के समय स्नैक्स-काउंटर पर उसके बनाए समोसे और कचौड़ियाँ खूब पसंद किए जाते थे। हाथों-हाथ बिक जाते थे। बनिए से शाब्बाशी मिलती थी और नए-नए पकवान बनाने का उत्साह भी पैदा होता था।

अब शिव चरण ने अपनी कमाई से एक महँगे वाला थ्री-जी स्मार्ट-फ़ोन खरीद लिया था और उसमें असीमित डेटा-प्लैन डलवा लिया था। कुछ ही दिनों में अनिल और उसके साथियों ने उसे यू-ट्यूब, व्हट्स-एप्प, फेसबुक और इंस्टाग्राम चलाने में एक्सपर्ट बना दिया था। जब भी खाली समय होता, वह यू-ट्यूब से नए-नए व्यंजनों की रेसिपियाँ डाउनलोड करता और बनिए से आँख बचाकर उन पर अपना हाथ आज़माता था। परिणाम अच्छा निकलता था तो रेसिपी बनाने की शुरू से अंत तक की प्रक्रिया का वीडियो बनाकर टिक-टॉक पर पोस्ट कर देता था। फिर घंटों फ़ोन पर नज़रें टिकाए देखता रहता कि कितनों ने 'लाइक' किया, कितने 'कमेन्ट' मिले और कितने नए लोग उसे फॉलो करने लगे ! कुछ ही महीनों में उसने अच्छी-ख़ासी फैन-क्लब तैयार कर ली थी जो उसके जीवन की हर गतिविधि में रुचि लेने लगी थी।पाक-कला में शिव चरण की अद्भुत प्रतिभा के चलते, मेस का धंधा खूब चलने लगा था। कैंप के परिसर में अधिकारियों व जवानों के कई परिवार रहते थे। अब वे भी शिव चरण के हाथ की बनी डिशिज़ होम-डिलिवरी द्वारा मँगवाने लगे थे। बनिए की आमदनी भी खूब बढ़ने लगी थी। वह शिव चरण के आचरण, व्यवहार, और कार्य-क्षमता से बेहद खुश था। उसे अपने घर का सदस्य मानने लगा था। मेस या घर का कोई भी काम होता था, वह शिव चरण के सहारे छोड़ देता था। उसपर आँख मूँदकर भरोसा करता था। समस्या तो तब खड़ी हुई जब एक दिन उसने शिव चरण को अपनी बेटी प्रेमा के साथ घर के आँगन में आँख-मिचौली करते हुए पकड़ लिया। प्रेमा की डाँट-फटकार हुई तो उसने मान लिया कि वह शिव चरण से प्यार करती थी। दोनों छुप-छुपकर मिलते भी थे। मौका पाकर 'नाज़ थिएटर' में मैटिनी शो भी देखने चले जाते थे। रणवीर सिंह की फिल्म 'गल्ली बॉय' तो वे तीन बार देख आए थे। कई बार शिव चरण पिछवाड़े की सीढ़ियों से आधी-आधी रात को प्रेमा के घर की छत पर पहुँच जाता था। दोनों घंटों बाहों में बाहें डालकर चंद्रमा के शीतल प्रकाश की छाँव में बैठे रहते थे, एक साथ जीने-मरने की क़समें खाते थे और 'अपना टाइम आएगा' गुनगुनाया करते थे।

बनिया शिव चरण और प्रेमा की इस हरकत से बहुत नाराज़ हुआ था औए दुखी भी। उसे शिव चरण से क़तई ऐसी उम्मीद न थी। उसने विश्वासघात किया था। कुछ दिन तो वह मन ही मन घुटता रहा। अपमान के कड़वे घूँट पीता रहा। प्रेमा को और खुद अपनी तक़दीर को कोसता रहा। फिर एक दिन अवसर पाते ही उसने एन डी आर एफ के अधिकारियों के सामने शिव चरण की पोल खोल दी। वह चाहता था कि शिव चरण सबकी नज़रों में गिर जाए। चाहता था कि उसे धक्के देकर कैंप से बाहर निकाल दिया जाए। या फिर उसके स्वाभिमान को ऐसा धक्का लगे कि वह खुद ही कैंप छोड़कर भाग जाए। वह जानता था कि शिव चरण को ज़िंदगी में अपनी इज़्ज़त से अधिक कुछ भी प्रिय नहीं था। उसकी ख़ातिर वह कुछ भी कर सकता था, किसी भी हद्द तक जा सकता था, अपनी जान तक दे सकता था !

और हुआ भी ऐसा ही ! शिव चरण अपना अपमान बर्दाश्त न कर सका। उसने प्रेमा को फ़ोन लगाया और कहा कि वह अपने चरित्र पर ऐसी लांछन लगवाकर वह कैंप में नहीं रह सकता। वह उससे प्रेम करती है तो उसके साथ घर से भाग चले अन्यथा वह अपनी जान दे देगा। प्रेमा ने उसे हौसला दिया, उसकी ढाढ़स बंधाई। उसने कहा कि वह शिव चरण से सच्चा प्यार करती है। उसके लिए कुछ भी करने को तैयार है। दोनों के बीच कुछ गिट-मिट हुई और वे रातों-रात कैंप छोड़कर भाग गए।

प्रेमा और शिव चरण के अचानक गायब हो जाने की खबर कैंप में जंगल की आग की तरह फैल गई। प्रेमा का पिता तो गुस्से से पागल हो उठा। शिव चरण को गालियाँ देता हुआ वह सीधा कैंप-कमांडेंट के दफ़्तर पहुँचा और पुलिस में रपट लिखवाने की माँग करने लगा। लेकिन मामला बहुत संवेदनशील था। कैंप के परिसर में बीसियों परिवार रहते थे, जवान बहू-बेटियाँ रहती थीं, लेकिन आज तक कभी ऐसी वारदात नहीं हुई थी जिससे कैंप की प्रतिष्ठा पर आँच आए। अब प्रेमा का

मामला पुलिस तक पहुँचता तो पूरी फोर्स का नाम बदनाम हो सकता था। उन पर लोगों का विश्वास उठ सकता था। इसलिए कमांडेंट ने समझ-बूझ से काम लिया। पहले तो उसने प्रेमा के पिता से दिली हमदर्दी जताई, उसके गुस्से को शांत किया, फिर बड़ी गंभीरता से उसे समझाया-

"पुलिस में जाने से कुछ लाभ न होगा। बल्कि बात और बिगड़ जाएगी। मुझे नहीं लगता कि यह काम शिव चरण ने अकेले ने किया होगा। निश्चित तौर पर इसमें आपकी बेटी का भी हाथ है। अब ज़रा सोचिए.... आपकी बेटी जवान है, शायद बालिग भी हो चुकी है ! ऐसे में वह पुलिस के हाथ लग भी गई और उसने मान लिया कि शिव चरण निर्दोष है.... कि वह अपनी मर्ज़ी से घर छोड़कर भागी है, तो आपकी क्या इज़्ज़त रह जाएगी ?"

प्रेमा के पिता के पास इस बात का कोई उत्तर न था। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। उसे खुद यह चिंता सता रही थी कि बात फैल गई तो वह किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगा। उसी की बेटी पर उँगलियाँ उठेंगी। उसी को लोग दोषी ठहराएँगे। ऐसे में उसकी छोटी बेटी का रिश्ता होना भी मुश्किल हो जाएगा। कुछ दिन तक तो वह बहुत परेशान रहा और अपनी पत्नी पर गुस्सा निकालता रहा। उसे दोष देता रहा कि यह सब उसी के लाड़-प्यार का नतीजा था। उसी ने प्रेमा को खुली छूट दे-देकर बिगाड़ रखा था, सिर पर चढ़ा रखा था ! फिर ज्यों-ज्यों वक़्त गुज़रता रहा, प्रेमा के पिता के ज़ख्म भी भरने लगे। आख़िर, उसने इस सबको अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया।

शिव चरण और प्रेमा दो-एक महीने तक छुपते-छुपाते रहे.... अपने अतीत से दूर भागने की कोशिश करते रहे। पकड़े जाने के भय से आज यहाँ और कल वहाँ...... खानाबदोशों का सा जीवन व्यतीत करते रहे। उनके बारे में किसी को कुछ पता न चल पाए इसलिए शिव चरण ने दिल पर पत्थर रखा और अपने सर्वाधिक प्रिय शौक, सोशल-मीडिया, को भी अस्थाई रूप से तिलांजली दे दी। अब वह

व्हट्स-एप्प, फेसबुक, इंस्टाग्राम खोलता तो था, अपने फैन्ज़ द्वारा अपने बारे में पोस्ट किए जा रहे कमेंट्स भी पढ़ता था, लेकिन उनपर अपनी प्रतिक्रिया न दे पाता था। बड़े शौक से कभी अपनी, कभी प्रेमा के साथ अपनी सेल्फियाँ निकालता था, वीडीओ भी बनाता था, लेकिन पोस्ट न कर पाता था। यहाँ तक कि उसने प्रेमा को भी समझा दिया था कि वह सोशल मीडिया का प्रयोग शौक से करे परंतु ऐसा कुछ भी पोस्ट न कर बैठे जिससे उसके पिता या किसी और को उनके बारे में कोई जानकारी प्राप्त हो।

अंतत: जब वे छुपने-छुपाने की रोज़-मर्रा की कवायत से तंग आ गए तो एक दिन शिव चरण ने एन डी आर एफ के अपने पुराने और विश्वसनीय मित्र, अनिल जादव को फ़ोन लगाया और सारा किस्सा ब्यान कर दिया। अनिल जादव अलीगढ़ का रहने वाला था। उसने शिव चरण को सुझाव दिया कि वह प्रेमा को लेकर अलीगढ़ चला जाए और उसके माँ-बाप के साथ उनके घर में रहे। यह बात शिव चरण कहाँ मानने वाला था। उसका स्वाभिमान तो उसके नाक की नोक पर टिका रहता था। इसलिए उसने दो-टुक इंकार कर दिया। अनिल जादव से यहाँ तक कह दिया, "तुम मेरे परम मित्र हो। मैं तुमसे सुझाव चाहता हूँ..... तुम्हारा एहसान नहीं !"

अनिल जादव शिव चरण के स्वभाव से भली-भाँति परिचित था। उसे टिहरी-गढ़वाल में बाढ़ का वह दिन आज भी अच्छी तरह याद था जब शिव चरण ने पेड़ से नीचे उतरने में उसकी सहायता लेने से साफ इंकार कर दिया था। इसलिए उसने शिव चरण की इस बात का बुरा नहीं मनाया, बल्कि उसे सुझाव दिया -

"अलीगढ़ में मेरे स्कूल के दिनों का एक मित्र, अलताफ़ हुसैन, रहता है। लोग उसे बाहुबली कहते हैं। वह अत्यंत साधन-सम्पन्न व्यक्ति है। पूरे शहर में उसका दबदबा है। रेलवे अधिकारियों की साँठ-गाँठ से उसने रेलवे की ज़मीन पर 'इंदिरा नगर' नाम की एक अनाधिकृत बस्ती बसा रखी है। मैं कहूँगा तो वह तुम्हारी सहायता ज़रूर करेगा। तुम्हें सिर छुपाने की जगह दिलवा देगा। हो सकता है कोई काम-धंधा भी करवा दे।"

शिव चरण प्रेमा को लेकर अलीगढ़ चला आया और बाहुबली से मिला। एन डी आर एफ में इतने वर्षों में उसने जो थोड़ी-बहुत धन-राशि कमाई थी उसका बड़ा भाग तो पहले ही यहाँ-वहाँ होटलों में रुकने-रुकाने में खर्च हो चुका था। जो बचा था, उसने बाहुबली की हथेली पर रखा और उससे 'इंदिरा नगर' में एक खोली एलॉट करवा ली। अब उसके हाथ-पल्ले कुछ न बचा था लेकिन उसकी आँखों में सुनहरे कल के सपने तैरने लगे थे। उसके दिल में असीम जोश था, वलवले थे..... उमंगें थीं ! वह जानता था कि उसके पास पाक-कला का जो अद्भुत हुनर है, उसकी बदौलत उसे अपनी दुनिया बसाने में अधिक समय नहीं लगेगा। और दुनिया भी ऐसी जिसमे प्रेमा हर प्रकार की सुख-सुविधाओं का आनंद ले सके। वह कदापि नहीं चाहता था कि जीवन में कभी भी उसे शिव चरण के साथ घर से भागने के अपने निर्णय पर पछताना पड़े।

रेलवे अधिकारी और बाहुबली मिल-जुलकर 'इंदिरा नगर' में हर वर्ष दस-बीस नई खोलियाँ जोड़ देते थे। लिहाजा, वहाँ की आबादी भी अब अच्छी-ख़ासी हो चुकी थी। ऐसा वोट-बैंक तैयार हो चुका था, जिसे नज़र-अंदाज़ करना किसी भी राजनीतिक पार्टी के वश की बात न थी। बाहुबली ने नगर-निगम के उस वार्ड के कॉर्पोरेटर से मिलकर शौचालय और पेय-जल की व्यवस्था भी

करवा दी थी। विधान सभा के पिछले चुनाव के दौरान वहाँ के प्रत्याशी ने अपने 'पब्लिक 'फंड' से पूरी बस्ती में स्ट्रीट-लाइट लगवा दी थी, कच्चे रास्तों को पक्का करवा दिया था और एक छोटा सा मंदिर भी बनवा दिया था।

खोलियों के डिपॉज़िट और भाड़े से जो आमदनी होती थी, विभाग के अधिकारी और बाहुबली आपस में बाँट लेते थे। इतना ही नहीं, 'इंदिरा नगर' के पूर्वी भाग से ऐन सटकर एक स्टेट-हाइवे निकलता था, जो ट्रेफिक से खचाखच भरा रहता था। बस्ती के पास ही एक रेलवे-फाटक भी था जो दिन में बीसियों बार खुलता और बंद होता था। बाहुबली ने पी डब्ल्यू डी के अधिकारियों से मिलकर फाटक के दोनों ओर सरकारी ज़मीन पर अनाधिकृत खोखे लगवा दिए थे। फाटक पर तैनात कर्मचारी से भी उसकी पूरी साँठ-गाँठ थी। हर महीने उसे उसका हिस्सा मिल जाता था और वह हर रेलगाड़ी के वहाँ से गुज़रने के समय से पंद्रह-बीस मिनट पहले फाटक बंद कर देता था। परिणाम-स्वरूप, हर आधे-पौने घंटे में सड़क पर कारों, स्कूटरों, बसों और ट्रकों का जमावड़ा लग जाता था जिसे पंद्रह-बीस मिनट तक वहाँ रुकना ही होता था। इसी बीच खोखे और फेरी वाले अपना धंधा जमा लेते थे। गरमा-गरम चाय, आलू और प्याज़ के पकौड़े, भाँति-भाँति के कट-फ्रूट, गन्ने का रस, पेन-पेंसिलें, टोपियाँ, चश्मे, गाड़ी साफ करने के कपड़े, बच्चों के बैटरी से चलाने वाले चीनी खिलौने आदि खूब बिकते थे।

अनिल जादव की सिफारिश पर बाहुबली ने शिव चरण को एक खोखे का कब्जा भी दिलवा दिया। फिर क्या था ..... अगले ही दिन शिव चरण ने खोखे की साफ-सफाई की, शिव-शंभू भोलेनाथ की शीशे के फ्रेम में जड़ी एक भव्य तस्वीर लगाई और खोखे के बाहर 'स्वादिष्ट बाहुबली समोसे' नाम का पट्टा चमका दिया। फिर 'इंदिरा नगर' के मंदिर के पुजारी ने जो शुभ-मुहूरत बताया था, उस समय बाहुबली के भारी-भरकम हाथों से एक नारियल फुड़वाया गया और समोसों का धंधा चालू हो गया। शिव चरण तो शुरू से ही परिश्रमी था। अब उसके पास एक बहुत बड़ा प्रेरणा-स्रोत भी था, अपनी प्रिय प्रेमा का स्नेह और उसका साथ ! इसलिए वह जी-जान से मेहनत करने लगा।

शिव चरण बचपन से ही सूर्य निकलने से पहले जग जाने का आदी था। अब प्रेमा की दिनचर्या भी वैसी ही बन गई थी। दोनों मुँह-अँधेरे उठके शौच को निकल जाते थे। फिर स्नान के बाद डबलरोटी और कड़क चाय का नाश्ता लेकर समोसे बनाने की तैयारी में जुट जाते। शिव चरण उबले हुए आलू, मटर, धनिया, अदरक, हरी-मिर्च आदि का मसाला तैयार करता और प्रेमा मैदा गूँधकर खोल बनाती। फिर दोनों मिलकर समोसे भरने लगते। इमली और पुदीने की चटनी बनाई जाती। सारा सामान तैयार हो जाता तो उसे एक बड़ी टोकरी में रखकर वे काम पर निकल पड़ते। खोखे में सबसे पहले धूप-बत्ती की जाती और फिर भोलेनाथ की आरती। फिर वे गैस की भट्टी पर कड़ाई में तेल डालते और समोसे तलने शुरू कर देते। प्रेमा गद्दी और गल्ला सँभालती और शिव चरण पत्ते के डोनों में समोसे और चटनी भरकर कारों, बसों, ट्रकों में बैठे सैलानियों को बेचने लगता। कई बार तो दोपहर तक ही उनका पूरा सामान बिक जाता। ऐसे में वे खोखे को ताला लगाकर कोई-न-कोई नई हिन्दी फ़िल्म देखने निकल पड़ते और रात को किसी मशहूर ढाबे पर खाना खाकर ही वापिस लौटते।

देखते-देखते शिव चरण के जीवन पर भोलेनाथ की अपार कृपा बरसने लगी। उसे लगने लगा कि 'गल्ली बॉय' के रणवीर सिंह की तरह उसका 'टाइम' भी आ रहा था। उसने सब्जी- मंडी और बाज़ार जाने के लिए बाहुबली का पुराना मोटर-साइकिल खरीद लिया था। प्रेमा गर्भवती हुई तो उसे खोखे पर आने से मना कर दिया गया था। उसके मनोरंजन के लिए खोली में एक टेलीविज़न लगवा दिया गया था और दीवार पर एक हृष्ट-पुष्ट हँसते-खेलते बच्चे का कैलेंडर। काम-काज में हाथ बँटाने के लिए शिव चरण ने एक गढ़वाली लड़के, गणेश को काम पर रख लिया। वह भोर होते ही वह शिव चरण की खोली पर पहुँच जाता था और प्रेमा की तरह समोसों की तैयारी में शिव चरण की सहायता करता था। अब शिव चरण गद्दी पर बैठकर समोसे तलता था और नकदी सँभालता था और गणेश पत्ते के दोनों में समोसे और चटनी भरकर कारों, बसों, ट्रकों में बैठे सैलानियों को बेचने निकल जाता था।

शिव चरण की आमदनी के साथ-साथ प्रेमा के प्रति उसका प्यार भी लगातार बढ़ रहा था। समोसों के लिए वह बाज़ार करने जाता था तो प्रेमा के लिए उसकी पसंद की कोई न कोई चीज़ अवश्य लेकर आता था। कभी फूलों के गजरे, कभी लखनवी कुर्ती, कभी नेल-पोलिश तो कभी हरे काँच की चूड़ियाँ। वह उसके सब अरमान पूरे करना चाहता था। काम से लौटते समय कभी उसके लिए डोमिनोज़ का पिज़्ज़ा ले आता था और कभी मैकडॉनल्ड के बर्गर और फ्रेंच-फ्राइज़। खोली में प्रवेश करते ही वह प्रेमा को बाहों में भर लेता था, पागलों की तरह चूमता था और जब तक वह दस-बीस बार "छोड़ो भी..... छोड़ो भी" नहीं कह देती थी, वह उसे अपने से अलग नहीं होने देता था। प्रेमा उसके लिए कडक चाय बनाकर लाती थी तो वह दिन भर की कमाई उसकी झोली में डाल देता था। चाय की चुसकियाँ लेते हुए उससे कहता था-"अब अपना 'टाइम' आने वाला है। बच्चा हो जाने दो.. बस, फिर तुम्हारे माँ-बाप से मिलने देहरादून चलेंगे। नवासे को देखकर वह फूले नहीं समाएँगे। सारे शिकवे-गिले भुलाकर हमें गले से लगा लेंगे। मैं भी अनिल और कैंप के दूसरे साथियों से मिल आऊँगा। फिर हमें किसी से डरने की ज़रूरत नहीं होगा। हम दिल खोलकर बच्चे की तस्वीरें फेसबुक और इंस्टाग्राम पर पोस्ट किया करेंगे। मैं अपने बाहुबली समोसों की मशहूरी भी करूँगा। हल्दीराम जैसा धंधा जमाऊँगा। मेरे फैन मुझे वापस देखकर बहुत खुश होंगे...!"

शिव चरण के जीवन में सब अच्छा-अच्छा चल रहा था कि अचानक कोविड-19 की महामारी चीन से निकली और पूरे विश्व में फैल गई। इंग्लैंड और अमेरिका जैसे साधन-सम्पन्न देश भी इसके प्रकोप से बच न पाए। कुछ ही दिनों में ही मरीजों और मृतकों की

संख्या अविश्ववसनीय ढंग से बढ़ने लगी। इससे पहले कि कोई कुछ समझ पाता, एक दिन प्रधान-मंत्री ने 'जनता कफ़्र्यू' की घोषणा की और दो दिन बाद पूरे देश में कफ़्र्यू जैसा लॉक-डाऊन लगा दिया। सब काम-धंधे ठप्प पड़ गए। सड़कें, गलियाँ, मुहल्ले सूने हो गए। कारें, स्कूटर, बसें.... यहाँ तक कि रेलगाड़ियों तक के चक्के जाम हो गए। बीमारों और बीमारी से मरने वालों की संख्या आसमान छूने लगी। अस्पतालों में रोगियों के लिए बेड कम पड़ने लगे। स्वास्थ्य सेवाएँ चरमराने लगीं। शमशानों में दाह-संस्कार के लिए शवों के ढेर लगने लगे। मरघट से सन्नाटे में दिन-रात रुग्ण-वाहिनियों की डरावनी साँय-साँय हर ओर गूँजने लगी। कोरोना के सामने अमीर-गरीब, बूढ़े-जवान, पढ़े-लिखे और अनपढ़ सब लाचार दिखाई देने लगे थे।

'इंदिरा नगर' की खोलियाँ एक-दूसरे से इस प्रकार सटी हुई थीं कि एक खोली में यदि एक व्यक्ति भी संक्रमित हो जाता तो न केवल उस खोली के बाक़ी लोग बल्कि आस-पास की दो-चार खोलियों के सब लोगों के संक्रमित होने की पूरी संभावना हो सकती थी। बस्ती के लोग मास्क तो पहनने लगे थे परंतु 'दो गज़ की दूरी' बनाए रखना उनके वश में न था। किसी-किसी खोली में तो आठ-आठ दस-दस लोग एक साथ रहते थे। उनका खाना-पीना, उठना-बैठना सब एक साथ होता था और वह भी दस बाय दस की छोटी सी खोली में। बस्ती में केवल एक शौचालय होने से बीमारी फैलने का खतरा और भी बढ़ जाता था।

ऊपर से प्रेमा गर्भ की अवस्था में थी। टेलीवीज़न पर प्रतिदिन बताया जाता था कि इस महामारी से कैसे बचा जाए। बड़े-बड़े विख्यात डॉक्टर मानने लगे थे कि कोरोना के विषाणु वृद्ध, दूसरी बीमारियों से पीड़ित लोगों तथा गर्भवती महिलाओं के लिए अधिक हानिकारक हो सकते थे। उन्हें और उनके साथ रहने वाले लोगों को विशेष रूप से सावधान रहने की आवश्यकता थी। उन्हें किसी सूरत भी घर से बाहर नहीं निकलना था। इसलिए शिव चरण और भी परेशान रहता था।

खोली से बाहर कदम रखते हुए घबराता था। प्रेमा के साथ क़ैदियों की तरह दिन-रात खोली में पड़ा रहता था।

टेलीविज़न पर अस्पतालों व मुर्दाघरों के अत्यंत घिनौने दृश्य देख-देखकर जब दिल दहलने लगता था तो वह अपने मोबाइल पर व्हट्स-एप्प, फेसबुक या इंस्टाग्राम खोल लेता था। अपने फैन्ज़ द्वारा उसके बारे में पोस्ट किए जा रहे कमेंट्स पढ़ता था। तीव्र इच्छा होती थी कि उनपर अपनी प्रतिक्रिया लिखे, अपने फ़ैन्ज़ को अपने, प्रेमा और अपने होने वाले बच्चे के बारे में बताए, लेकिन ऐसा न कर पाता था। यही सोचकर संतोष कर लेता था कि उसके फैन्ज़ अब भी उसके साथ हैं। उसे निरंतर फॉलो कर रहे हैं। उसके बारे में चिंता करते हैं और यदि वह किसी संकट में है तो वे हर प्रकार से उसकी सहायता करने की इच्छा भी रखते हैं। लेकिन वह तो अव्वल दर्जे का स्वाभिमानी व्यक्ति था। किसी से किसी प्रकार की मदद लेकर वर्षों में बनाई अपनी छवि को धूमिल नहीं कर सकता था। वह मन ही मन सोचा करता था कि कभी ऐसी नौबत आ भी गई तो अपने स्वाभिमान से समझौता करने की बजाए वह अपनी जान देना पसंद करेगा!

'इंदिरा नगर' के बीचों-बीच एक अहाता था जिसके दक्षिणी भाग में सीमेंट का एक पक्का चबूतरा बना दिया गया था। वहाँ नवरात्रि के दिनों में रामलीला का आयोजन किया जाता था। किसी पीर-पैगंबर का उर्स होता था तो वहाँ क़व्वालियाँ गाई जाती थीं। दूसरे दिनों में बस्ती के बूढ़े-बुज़ुर्ग लोग सुबह-शाम चबूतरे पर रखे बेंचों पर आकर बैठा करते थे। अपना सुख-दुख साझा करते थे। अखबार और टेलीवीज़न के माध्यम से प्राप्त खबरों पर चर्चा किया करते थे। जब से कोरोना की महामारी शुरू हुई थी और देश भर में लॉक-डाउन लगा दिया गया था, चबूतरा और बेंच दोनों बिलकुल अकेले पड़ गए थे। हफ्ते में एक दिन कुछ सरकारी लोग एक टेम्पो-नुमा गाड़ी लेकर बस्ती में आते थे। गाड़ी में सूखा राशन भरा रहता था। वे चबूतरे के बेंचों पर बैठकर बस्ती में रहने वाले गरीबी-रेखा से निचले वर्ग के लोगों को मुफ्त राशन बाँटते थे। यह सब प्रधान-मंत्री द्वारा घोषित राहत-योजनाओं अंतर्गत किया जाता था। बस्ती में कई ऐसे लोग ऐसे भी थे जिन्होंने सच्चे-झूठे कागजात बनवाकर गरीबी-रेखा के निचले वर्ग में अपना नाम दर्ज करवा रखा था। राशन की गाड़ी के आते ही वे भिखमंगों की तरह पंक्तियों में खड़े हो जाते थे और गाड़ी के जाते ही अपना राशन दूसरे ज़रूरतमन्द लोगों को मुँह-माँगे दामों पर बेचने लगते थे। कभी-कभी कई निजी संस्थाओं की गाड़ियाँ भी भोजन अथवा ज़रूरत की दूसरी चीज़ें बाँटने के लिए बस्ती में आया करती थीं।

एक दिन संध्या के समय शिव चरण के खोखे पर काम करने वाला गढ़वाली लड़का गणेश, छुपते-छुपाते उसकी खोली पर पहुँचा। हज़ारों-लाखों प्रवासी मजदूरों की तरह वह भी अपने गाँव अपने लोगों के पास वापिस जाना चाहता था। इसलिए उसे पिछले पाँच महीनों की अपनी पगार चाहिए थी, जो उसने शिव चरण के पास जमा करवा रखी थी। शिव चरण के पास अब ज़्यादा पूँजी नहीं बची थी। इतने दिन से वह बिना किसी रोज़गार और बिना किसी सरकारी मदद के घर-गृहस्थी चला रहा था। घर का राशन, प्रेमा के लिए फल-फ्रूट, टॉनिक और दवाइयाँ और ज़रूरत की दूसरी सारी चीज़ें वह दूकानों से खरीद कर ही इस्तेमाल कर रहा था। लेकिन गणेश को उसकी पगार देने में उसने ज़रा भी गुरेज नहीं किया। उसका जो भी हिसाब बनता था, प्रेमा

से कहकर तुरंत चुकता कर दिया। अपनी गरज़ के लिए किसी का दूसरे का हक़ मारना उसकी प्रकृती में न था। ऐसा करता तो उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँच सकती थी। गणेश को ज़रा भी उम्मीद न थी कि उसकी रकम इतनी आसानी से उसे मिल जाएगी। इसलिए उसने शिव चरण के पाँव छूए, दोनों हाथ जोड़कर उसका आशीर्वाद लिया और चलता बना।

शिव चरण खोली के दरवाज़े पर न जाने कितनी देर बुत बना खड़ा रहा। गणेश को शाम के गहराते अँधेरों में ओझल होते देखता रहा। सोचता रहा कि अब वह क्या करे ? प्रेमा और उसके होने वाले बच्चे को लेकर वह कहाँ जाए? टिहरी-गढ़वाल में तो न उसका घर बचा था और न ही कोई लोग जिन्हें वह अपना कह सकता था। देहरादून वह जा नहीं सकता था। ऐसी हालत में प्रेमा को उसके पिता के घर ले जाने में उसका स्वाभिमान आड़े आता था। प्रेमा के प्रसव का समय दिन-ब-दिन नजदीक आ रहा था और शिव चरण की जमा-पूँजी दो-एक दिन में ही समाप्त होने वाली थी। प्रसव में रुपये-पैसों की ज़रूरत पड़ेगी तो वह कहाँ से लाएगा ? लॉक-डाऊन की अवधि आगे-से-आगे बढाई जा रही थी और समय था कि पर लगाकर उड़ रहा था।

शीघ्र ही वह दिन आ पहुँचा जिसका डर था। वह नहा-धोकर टेलीविज़न पर कोरोना के समाचार देख रहा था जब प्रेमा ने खिड़की से बाहर झाँका और शिव चरण के पास आकर कहने लगी, -"देखिए खाना पकाने के लिए घर में ना आटा बचा है ना चावल। बाहर अहाते में किसी गैर-सरकारी संस्था की ओर से एक टेम्पो आया है। वे लोग कच्चा राशन बाँट रहे हैं। काग़ज़-पत्र की पड़ताल भी नहीं कर रहे। बस्ती के सब लोग लाइन में खड़े हैं। देखो..... आप भी थोड़ा राशन ले आओ तो कुछ दिनों के भोजन की व्यवस्था हो जाएगी।"

प्रेमा की बात सुनकर शिव चरण सकते में आ गया था। उसके पैरों तले की ज़मीन खिसकने लगी थी। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि उसे यह दिन देखना पड़ेगा जब उसकी अपनी प्रेमा उसे भीख में मिल रहा राशन लाने को कहेगी। उससे उसे यह उम्मीद हर्गिज़ न थी। वह तो उसके स्वभाव से भली-भाँति परिचित थी। जानती थी कि वह जान दे देगा परंतु किसी के सामने हाथ नहीं फैलाएगा। उसके चेहरे की नसें कसने लगीं थीं। उसकी आँखों में खून उतर आया। न जाने कितनी देर वह जड़ बना वहीं बैठा अपने गुस्से पर क़ाबू पाने की चेष्ठा करता रहा। फिर उसने नज़रें उठाकर प्रेमा की ओर देखा। अपनी प्रिय प्रेमा की ओर देखा.... जिसकी बाहों में बाहें डालकर वह चंद्रमा के शीतल प्रकाश की छाँव में घंटों बैठा रहता था। जिसके साथ उसने जीने-मरने की क़समें खाई थीं। जिसके सुर में सुर मिलाकर वह गुनगुनाया करता था, 'अपना टाइम आएगा'।

फिर जाने क्या सोचकर वह खिन्न मन से उठ खड़ा हुआ। उसने खूंटी से एक झोला उतारा। शर्म से सर झुकाए, छोटे-छोटे पग भरता हुआ वह न चाहते हुए भी अहाते में खड़े टेम्पो की ओर बढ़ने लगा। अभी वह थोड़ी ही दूर गया था कि कुछ देखकर ठिठक गया। राशन बाँटने वाली संस्था अपने साथ एक कैमरा-मैन लेकर आई थी, जो राशन लेने वाले हर व्यक्ति की राशन लेते हुए फ़ोटो खींच रहा था। उसकी अंतरात्मा जाग उठी और उससे कहने लगी, "शिव चरण .... लौट जा। वर्ना दान में राशन ग्रहण करते हुए तेरा फ़ोटो भी खिंच जाएगा। संभव है कल यही फ़ोटो किसी समाचार-पत्र में छप जाए या फिर व्हाट्स-एप्प, फ़ेस-बुक अथवा इंस्टाग्राम पर वायरल हो जाए और हज़ारों-लाखों लोगों तक पहुँच जाए ..... शायद तुम्हारे फैन भी इसे देख लें !!"

अंतरात्मा की इस आवाज़ ने उसे ज़ोर से झकझोरा और आगे बढ़ने से रोक दिया। उसने तुरंत अपने क़दम अपनी खोली की ओर घुमा लिए। अब वह खाली हाथ था परंतु उसके चेहरे पर निराशा कदापि नहीं थी। उसने अपने स्वाभिमान को ठेस लगने से बचा लिया था। अब वह अपना सिर ऊँचा किए तेज़ तेज़ पग भरता हुआ खोली की ओर बढ़ रहा था.. !

शिव चरण ने खोली में प्रवेश किया तो देखा कि प्रेमा खिड़की के पास खड़ी सुबक-सुबककर रो रही थी। उसने खोली से बाहर निकलते हुए शिव चरण की झिझक और उसके संकोच को ताड़ लिया था। उसके बीच रास्ते में ठिठकने और तुरंत लौट आने का कारण भी वह समझ गई थी। उसने शिव चरण को सच्चे मन से चाहा था। दिल से प्यार किया था। उसके अंदर कब क्या चल रहा होता था, वह भली-भाँति समझने लगी थी। उसकी रग-रग से वाकिफ हो चुकी थी। अब उसे शिव चरण के इस हद्द तक स्वाभिमानी होने पर गर्व हो रहा था। उसे दुख भी हो रहा था कि उसने अपने प्रियतम को पहली बार उसकी मर्ज़ी के खिलाफ कोई काम करने के लिए विवश किया था। उसे अपने-आपसे घिन आ रही थी। वह मन-ही-मन अपने-आपको कोस रही थी। उसने शिव चरण को अपनी बाहों में भर लिया, अपना सिर उसके कंधे पर रखा और फूट-फूटकर रोने लगी। शिव चरण भी अपने-आपको रोक न पाया। उसने प्रेमा को बिस्तर पर बैठाया, उसकी गोद में अपना सिर रखा और घंटों तक रोता रहा। उसकी कोख में पल रहे अपने बच्चे को पागलों की तरह चूमता रहा।

उस रात शिव चरण की खोली में चूल्हा नहीं जला। घर में खाने को अनाज का एक भी दाना न था। वे दोनों भूखे पेट सो गए। सोए भी या नहीं, यह भी नहीं कह सकते। लेकिन खोली की खिड़की के ऐन ऊपर जो छोटा सा एक रौशनदान था, उसमें से रात-भर चंद्रमा का शीतल प्रकाश छन-छनकर अंदर आता रहा। अगले दिन जब पड़ोसियों ने काफी देर तक भी शिव चरण और प्रेमा को शौच के लिए बाहर निकलते नहीं देखा तो उन्हें हैरानी हुई। आठ-दस पड़ोसियों ने इकट्ठे होकर उनकी खोली का दरवाज़ा खटखटाया। जब बहुत देर तक किसी ने दरवाज़ा नहीं खोला तो उनकी हैरानी चिंता और डर में बदल गई।

किसी तरह से उन लोगों ने खिड़की के पाट खोले तो देखा कि शिव चरण और प्रेमा मरे पड़े थे। पूरा फर्श उनकी एक-एक कलाई की कटी हुई धमनियों से बहते हुए रक्त से लाल हो चुका था ....!

000

कथा-कहानी

देवता

अरुण अर्णव खरे

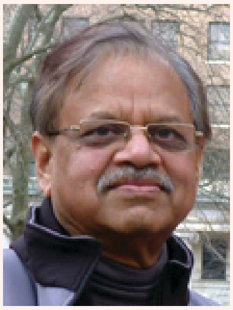

अरुण अर्णव खरे
डी-1/35 दानिश नगर, होशंगाबाद रोड,
भोपाल (म०प्र०) 462 026
मोबाइल- 9893007744
ईमेल- arunarnaw@gmail.com

तोरन सिंह आज बहुत प्रसन्न था। उसके बेटे सूरज सिंह को बारहवीं पास करते ही बड़े साब ने वर्कचार्ज में बाबू बना दिया था, साथ ही यह भरोसा भी दिलाया था कि सूरज जैसे ही कंप्यूटर की परीक्षा पास कर लेगा, उसे वह रेगुलर कर देंगे। इस ख़ुशी को सबसे बाँटने तोरन साब से तीन दिन की छुट्टियाँ लेकर अपने गाँव आया था। तोरन के ख़ानदान में पहली बार कोई सरकारी बाबू बना था। उसके सारे सगे संबंधी या तो खेतिहर मज़दूर थे या फिर उसकी तरह साब लोगों के बँगलों पर काम करते थे। उसकी पत्नी पूनिया तो जैसे अपने मोड़े की उपलब्धि पर बौरा गई थी। दिन में कितनी ही बार वह सूरज का माथा चूम चुकी थी। इसी ख़ुशी में उसने बिरादरी वालों को ग्राम देवता के चबूतरे पर पूड़ी-रायता जींमने का न्योता तक दे डाला था।

बड़े साब ने बोला था सूरज को सोमवार को ही ड्यूटी ज्वाइन कराने के लिए, अतएव तोरन सूरज को लेकर इतवार को ही गाँव से वापस आ गया। सूरज की पोस्टिंग साब ने अपने चहेते कार्यपालन यंत्री के ऑफ़िस में की थी। सूरज के काग़ज़ पत्तर पलटते हुए बड़े बाबू बिंदेसरी यादव ने पहले तोरन और फिर सूरज की ओर इतनी पैनी निगाहों से देखा कि दोनों ही सिहर गए। तोरन हाथ जोड़कर लगभग गिड़गिड़ाते स्वर में बोला - "कोनऊ कमी है का बाबू जी .. बचवा है .. आप समझा दो पूरी कर लावेगो .. मैं तो कछू समझूँ न .. दूसरी जमात तक ही पड़ो है हमने"

"नहीं .. नहीं .. कोई कमी नहीं है .. सब काग़ज़ दुरुस्त हैं .." बिंदेसरी यादव बोले - "तुम्हें पता है कि लड़के के कितने नंबर हैं"

"नाँय मालूम मोए .. इत्तो पता है कि वाय फस्ट कलास आओ है और इंजीनरिंग को इम्तहान भी पास करो है तबईं बड़े साब ने ईखों बाबू बना दओ" - कहते हुए तोरन की आँखें गर्व से दमकने लगी।

"तुम लड़के का कैरियर बरबाद कर रहे हो तोरन .. तुम्हारा लड़का तो हीरा है हीरा .. इसे क्यूँ बाबू बना रहे हो .. तुम बताओ सूरज .. कौन सा इंजीनियरिंग का इम्तिहान पास किया है तुमने" - बिंदेसरी ने उत्सुक निगाहों से दोनों की ओर बारी-बारी से देखा।

"जी, पी.ई.टी. पास किया है .. एस.सी. की मेरिट लिस्ट में 133वां नंबर है, सब कहते हैं कि मनचाही ब्रांच मिल जाएगी, पर बहुत पैसा लगता है पढ़ाई में। बापू ख़र्च नहीं उठा पाएँगे। बड़े साब ने कहा कि तुम्हें पक्की नौकरी लगा देंगे। बहुत इंजीनियर बेरोज़गार घूम रहे हैं।" सूरज ने बताया।

"बड़े साब ने ऐसा कहा तुमसे।" - बिंदेसरी ने आश्चर्य से पूछा।

"हओ" - जवाब तोरन ने दिया - "हम कहाँ से लाखों लाते, फ़ीस देवे खों, वो तो साब बड़े दयालु हैं, हम ग़रीबन पर जो इत्ती किरपा करत हैं।"

बिंदेसरी बाबू ने सारे कागज़ व्यवस्थित किए और सूरज को ऑफ़िस में ज्वाइन कराने की आवश्यक कार्यवाही पूर्ण की। बिंदेसरी ने एक बार पुन: सूरज को सोचने के लिए कहा पर कम पढ़ा-लिखा तोरन तो सूरज के बाबू बन जाने से ही सातवें आसमान पर जा बैठा था। वह तो बड़े साब की किरपा के तले स्वयं को दबा महसूस कर रहा था। उसे समझ में ही नहीं आया था कि बिंदेसरी बाबू बार-बार क्यूँ पूछ रहा है, कहीं उसका कोई स्वारथ तो नहीं है।

बिंदेसरी बाबू ने सूरज को ज्वाइन करवा लिया था। तोरन सूरज को वहाँ छोड़कर चला गया। शाम को जब दोनो मिले तो तोरन के मन में बहुत से सवाल थे। उसे कोई परेशानी तो नहीं हुई। ईई साब से उसकी भेंट हुई कि नहीं .. कुछ काम भी सीखा कि नहीं .. बिंदेसरी बाबू ने कोई गड़बड़ तो नहीं की .. ऑफ़िस के बाकी लोग कैसे लगे उसे ..

"बापू, बिंदेसरी बाबू जी ने फिर से मुझसे कहा था कि तुम्हारे जब इतने अच्छे नंबर हैं तो तुम बाबूगिरी करके क्यूँ अपना कैरियर खराब कर रहे हो .. वह तो बड़े साब को भी इसका दोष दे रहे थे कि उन्होंने जानबूझ कर मेरा कॅरियर खराब किया है .. वह कह रहे थे कि मुझे बैंक से लोन भी मिल जाता और कॉलेज की फीस भी माफ हो जाती"- सूरज जो पहले बड़ा खुश नज़र आ रहा था, तोरन को कुछ उदास सा लगा।

तोरन को ध्यान आया जब उसने बड़े साब को सूरज के इंजीनरिंग में पास हो जाने की खबर सुनाई थी तो वह बहुत खुश नज़र नहीं आए थे और जब उन्होंने सूरज को बाबू बनाने के लिए तोरन से कहा था तो नीला बिटिया भी बड़े साब पर नाराज़ हुई थी। उसे तो सूरज के बाबू बन जाने की इतनी खुशी थी कि उसे नीला की बात से दुख हुआ था। वह समझ नहीं पाया था कि नीला बिटिया क्यूँ बड़े साब पर नाराज़ हो रही है।

"तुम बिंदेसरी बाबू की बातन खों दिल पे न लो बिटुआ... हो सकत है बड़े साब ने कबहुं ऊँखों फटकारो हो जासे वो उनसे चिढ़त हो, हमने बड़े साब की बरसों सेवा करी तबहुं उन्होंने तुमाओ इतनो ध्यान रखो, हम गरीबन की आज सुनत कौन है... हमाई बिरादरी में आज तक कोनऊ बाबू नई बनो हतो, तुमने तो हमाओ नाम रोशन कर दओ... तुम अब मन लगा के काम करो...साब कछु दिन में तुमाओ परमोसन भी कर देहें।" तोरन ने सूरज को समझाते हुए कहा।

दो माह गुज़र गए। सूरज ने ऑफ़िस का काम कुछ-कुछ सीख लिया था। सब उसके काम और लगन से खुश थे। तोरन और पूनिया की भी सारी बिरादरी में अपने बिटुआ की उपलब्धि के कारण इज़्ज़त बढ़ गई थी। तोरन भी बड़े साब के इस उपकार के बदले दोहरे चाव से उनकी सेवा में लगा रहता था।

बड़े साब के इकलौते बेटे प्रियेश, यानि कि चिंकू बाबा का पढ़ने में मन नहीं लगता था .. बड़े साब इस कारण परेशान रहते थे। 12वीं में वह एक बार फेल हो चुका था और इसी साल उन्होंने उसका एडमीशन डोनेशन देकर किसी इंजीनियरिंग कॉलेज में कराया था। बिटिया नीला इस बात को लेकर बड़े साब से नाराज़ रहती थी और कभी-कभी उनसे सूरज का उदाहरण देते हुए उलझ जाती थी। नीला द्वारा सूरज का इस तरह पक्ष लेना तो तोरन को अच्छा लगता था पर बड़े साब से झगड़ा करना उसे नहीं सुहाता था। उसने एक दो बार अकेले में उसे समझाने की कोशिश भी की थी तो बिटिया ने "काका तुम नहीं समझोगे" कहकर चुप करा दिया था।

तोरन सिंह पिछले चौबीस सालों से बोधराम निरंजन के घर पर काम कर रहा था। उस समय से जब निरंजन नया-नया सहायक यंत्री के पद पर भरती हुआ था। उसकी पहली पोस्टिंग बुन्देलखण्ड के इलाक़े में हुई थी जहाँ छुआ-छूत और ऊँच-नीच का भेद उस समय समाज में कुष्ठरोग सरीखा जमा बैठा था। इस कारण बोधराम के घर पर कोई भी कर्मचारी काम करने को तैयार नहीं था। उसके पहले पदस्थ रहे मनोरंजन शुक्ल के घर पर काम करने वाले छुटके रैकवार और हरिलाल साहू ने साफ़-साफ़ मना कर दिया था - "साब हम घर पर काम नहीं करेंगे...हमारी बिरादरी में बात पता चल गई तो हम समाज से ही बाहर कर दिए जाएँगे... हमारे बाल-बच्चों के विवाह तक नहीं हो पाएँगे और हमारा हुक्का-पानी, आपस में उठना-बैठना तक हराम हो जाएगा।"

सुनकर बोधराम सन्न रह गया था। एक झटके में ही उसकी अफ़सरी धरातल पर आ गई थी। वह अनुशासनहीनता का दोनों के ख़िलाफ़ हण्टर चलाना चाहता था लेकिन जिले के एक अनुसूचित जाति के बी.डी.ओ. के समझाने पर उसने अपना इरादा त्याग दिया था। घर के कामकाज के लिए उसने ननिहाल से दूर के एक रिश्तेदार तोरन को बुला लिया था और उसे घर पर ही सर्वेण्ट क्वार्टर में रहने की जगह दे दी थी। तबसे निरन्तर तोरन बोधराम के घर पर काम कर रहा था। बोधराम के कई ट्रांसफ़र हुए। शासन के नए बने प्रमोशन-नियमों के तहत जल्दी-जल्दी उसके तीन प्रमोशन भी हो गए और वह अपने साथ नियुक्त हुए अनेक अफ़सरों को पीछे छोड़ते हुए चीफ़ इंजीनियर बन गया। जल्दी-जल्दी बिना बारी के प्रमोशन पा जाने के बाद वह अहंकारी हो गया था और अपने साथी अफ़सरों तक से बदतमीज़ी करने लगा था। तोरन बोधराम के इस बदलते व्यवहार का साक्षी था। जिनसे बोधराम कभी सर कह कर बातें करता था, उनसे ही वह कई बार बुरा

सलूक कर बैठता था।

चीफ़ इंजीनियर बनने के बाद अपने पहले दतिया दौरे पर बोधराम ने छुटके और हरिलाल सहित वृंदावन पटेल उपयंत्री को भी निलंबित कर दिया था। वे दोनों वृंदावन की साइट पर ही कार्यरत थे तथा वृंदावन के कहने पर ही अफ़सरों के घरों में काम करते थे। अपनी पहली पोस्टिंग के समय से ही तीनों बोधराम के निशाने पर थे। पर दो माह के अन्दर ही तीनों की बहाली के आदेश बोधराम को निकालने पड़े थे। कर्मचारी नेता भक्तचरण ने धमकी दी थी यदि चौबीस घण्टे के भीतर निलंबन वापिस नहीं लिया गया तो उसके बंगले के बाहर तम्बू लगाकर भूख हड़ताल की जावेगी।

नौवीं में पढ़ने वाली नीला को पिता का पक्षपाती व्यवहार पसन्द नहीं आता था। भक्तचरण की धमकी के बाद जब बोधराम को पीछे हटना पड़ा तो वह बहुत आहत था। नीला तीनों की बहाली से खुश थी .. उसने बोधराम को थैंक्स बोला। बेटी के मुँह से ये सुनते ही वह बिफर गया। उसे लगा भक्तचरण के साथ ही उसकी बेटी भी उसकी मजबूरी का मज़ाक उड़ा रही है। वह बड़ी ज़ोर से नीला पर चिल्लाया, बिचारी रोती हुई अपने कमरे में चली गई।

बोधराम की पत्नि शामली ने उसे शान्त करने की कोशिश की। बोधराम को भी लगा कि उसने अकारण ही नीला को इतनी ज़ोर से डाँट दिया है। उसने शामली से कहा - "तुम ही बताओ मैं क्या करूँ। नीला हर बात में विरोध करती है... वह तो आरक्षण तक की विरोधी है... यदि यह बैसाखी न होती तो मैं भी इंजीनियर न बन पाता... चिंकू के रंग-ढंग तुम देख ही रही हो... बिना आरक्षण के वह कुछ बन कर दिखा सकता है क्या...आरक्षण के बावजूद भी उसे ढंग की नौकरी मिलेगी मुझे सन्देह है।"

"समय के साथ नीला भी सब समझ जाएगी। इस उमर में बच्चे ऊँच-नीच नहीं समझते। उसे भी क्लास में कौन एस.सी. का मानता है। उसकी पहिचान तो एक बड़े अफ़सर की बेटी की है। ऊँची जाति के गरीब बच्चों को देखती है तो व्यथित हो जाती है। उसने आप सरीखे गरीबी के दिन ही कहाँ देखे हैं। आप उससे प्यार से बात किया कीजिये।" - शामली ने सलीके से अपनी बात बोधराम के सामने रखी।

"तुम ठीक कहती हो शामली" - बोधराम ने कहा - "लेकिन नीला हर बात में हमारा विरोध करती है।"

"सूरज के प्रति आपके रुख ने उसे आहत किया था .. उसे लगने लगा है कि आप स्वार्थी हैं.. आप किसी का हित नहीं कर सकते.. मुझे भी लगता है कि सूरज के लिए आपने सही निर्णय नहीं लिया था.. तोरन समझता है कि सूरज को बाबू बना कर आपने उस पर बहुत बड़ा अहसान किया है। वह तो आपको देवता समझता है" - शामली का स्वर बहुत संयत था। वह नीला का पक्ष बोधराम को समझाने का प्रयास कर रही थी, साथ ही उसे यह भी ध्यान रखना पड़ रहा था कि बोधराम उसकी बातों से आहत महसूस न करे।

"शामली तुम भी मुझे ग़लत समझती हो। पर मैंने जो भी किया अपने बच्चों के भविष्य के लिए किया।" - बोधराम के स्वर में कातरता थी -"तुम्हें याद है न, दतिया में कोई भी हमारे घर पर काम करने को तैयार नहीं था। मैं तोरन को नहीं लाया होता तो खाना बनाने से लेकर चौका-बर्तन भी तुम्हें ही करना पड़ता। यदि तोरन जैसे लोगों के बच्चे भी अफ़सर बन जाएँगे तो फिर हमारे चिंकू का क्या होगा। अफ़सर का बेटा होकर क्या बाबू बनकर धक्के खाने के लिए छोड़ दूँ उसे। किसी तरह चिंकू अफ़सर बन भी गया तो कौन मिलेगा उसके घर पर काम करने के लिए। मैंने सूरज को लेकर जो भी किया बहुत सोच समझ कर किया। वह बाबू बनकर खुश है,और तोरन भी।"

शामली को कुछ भी नहीं सूझा कि क्या बोले। बाहर उसे कुछ गिरने की आवाज़ सुनाई दी तो वह बाहर निकली। हवा के झोंके से राधा-कृष्ण की मूर्ति गिरकर टूट गई थी। तोरन टुकड़ों को समेटते हुए अपनी झोली में रख रहा था।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

सन्नाटा

छाया श्रीवास्तव

छाया श्रीवास्तव
1022, हैंना टावर, गौढ़ सौन्दर्यम
टैक जोन IV, ग्रेटर नॉइडा वेस्ट
गौतम बुद्ध नगर, यू पी
मोबाइल- 9313787497
ईमेल- srivast.chhaya@gmail.com

सारी रात माँ खाँसती रही। कई बार दिया उठ – उठ कर उसे पानी पिलाती रही। नींद तो टूट ही गई थी – माँ के लाख मना करने पर भी आधी रात से माँ के सिरहाने बैठी–बैठी ऊँघती रही। उसे सबेरे ऑफ़िस भी जाना है, बस इसी बात से माँ-बेटी रह-रह कर विचलित हो रही थीं। माँ को इधर बीमारी की हालत में छोड़ ऑफ़िस जाना दिया को बहुत तकलीफ देता था। माँ खाँस–खाँस थक कर सो गई। रात के सन्नाटे में इस दो कमरे के छोटे से फ़्लैट की दीवारों से टकरा उसकी साँसों की आवाज़ गूँज सी रही थी – बंद कमरे की दीवारों से टकरा मानों चीत्कार कर रही हों जैसे ज़िंदगी मौत की भीख माँग रही हो। माँ की हालत दिन पर दिन बिगड़ती ही जा रही थी।

दिया का बदन टूट सा रहा था सारा दिन, ऑफ़िस में दिमाग भी स्थिर नहीं हो पा रहा था। सोचती, फुलटाइम मेड रख ले पर आजकल मेड्स कितनी डिमांडिंग होती हैं। फिर बीमार माँ के साथ अकेले पूरा घर मेड पर छोड़ा भी तो नहीं जा सकता। और सच बात तो यह थी कि दिया अफ़ोर्ड भी नहीं कर सकती थी।

माँ की टीचिंग जॉब भी छूट गई थी, ट्यूशन के लिए भी बच्चे आना बंद कर चुके थे।वह तो बहुत स्मार्ट व ऐक्टिव रहीं, कपड़ों का सिलैक्शन भी बहुत बढ़िया था। ज़रा सा तैयार होतीं, निखर जातीं। उम्र का असर तो उन पर था ही नहीं। दिया उनकी बहुत बड़ी ऐडमायरैर थी। माँ एक सिंगल मदर ही थी, पापा की याद दिया को धुँधली सी ही थी। वह काफ़ी छोटी थी, चार – चार साल की रही होगी – जितना भी याद आता, ख़राब – ख़राब सा ही होता। पापा शायद बहुत पीते भी थे। ऊँची – ऊँची आवाज़ में दोनों की तक़रार - कुछ बुरी सी परछाईं दिया के मानस पटल पर आती जाती रहती। माँ को पापा के बारे में बात करना अच्छा नहीं लगता था, तो दिया भी वह टॉपिक छेड़ती नहीं थी। धीरे – धीरे पापा की याद भूली कहानी सी हो गई। एक बार पापा कहीं निकले तो फिर कभी नहीं लौटे।

000

माँ फिर ज़ोर–ज़ोर से खाँसने लगी। अभी तक तो कुछ महीने से कोरोना के चलते वर्क फ्रॉम

होम से राहत थी। लैपटॉप पर काम तो रहता था पर बीच – बीच में माँ की देखभाल भी हो जाती थी। माँ बहुत कमज़ोर होती जा रही थीं, फिर भी लगी रहती थीं। कोरोना टेस्ट भी कराया, नैगेटिव निकला, कुछ राहत हुई। पर दवाई वगैरह के बावजूद माँ की कमज़ोरी बढ़ती ही जा रही थी। वह बेहद परेशान रहती थीं, कैसे काम चलेगा-उसके बाद दिया का क्या होगा। शायद यह भी बड़ी वजह थी जो उसे ठीक न होने दे रही थी। वैसे दिया इंडिपेंडेंट थी, समझदार भी, बहुत लड़कियाँ अकेली रहती हैं, पर उम्र भी तो बढ़ती जा रही थी। आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे, सोते जागते पौ फटने को आई। जल्दी-जल्दी माँ के लिए कुछ बनाया।

'तुम क्या खाओगी सारे दिन दिया?' माँ ने करीब–करीब कराहते हुए पूछा।

'अरे माँ, रोज़ क्यों वही बात दोहराती हो, ऑफ़िस में सब मिलता है, कुछ खा लूँगी'- दिया भी अक्सर माँ की हर वक्त की नैगिंग से झुँझला सी जाती।

'बाय'– माँ का माथा चूम निकल गई।

आज तो रास्ते भर दिया बेहद थकी व परेशान रही। एक तो ऑफ़िस में कोरोना का डर, हर समय मास्क लगाए दम घुटने लगता है। सोशल डिस्टैसिंग, बार– बार हाथ सैनीटाइज़ करो–और व्हाट नॉट। और फिर भी एक अंजाना सा डर... दूसरे पल अपने को सँभालती – हम से बदतर और लोग भी हैं – कैसे सारे अस्पताल भरे पड़े हैं – कितनों का कोई देख भाल करने वाला भी नहीं, अंत समय भी जैसे कोई बुरे कर्मों का फल हो – न कोई अपना न पराया। शायद वो मैट्रो में कुछ सोचते–सोचते ऊँचा बड़बड़ाने लगी थी। एक दो लोगों को अपनी ओर ताकते देख कॉन्शिस हो, होश में आई।

आज किसका मुँह देखा था, इतना बुरा दिन बीता। किसका देखा होगा...माँ–बेटी, दो ही तो हैं घर में, एक दूसरे को देखना ही नियति है। बॉस से, फिर एक कुलीग से जाने किस बात पर बहस सी हो गई–वह बहुत थकी थी, रात भर सो नहीं पाई थी- यह तो कोई समझ नहीं पाएगा। बस अपने को सही ठहराना, ईगो

प्रॉब्लम, ऑफ़िस में अबीर न होता तो शायद इस वातावरण में दम ही घुट जाता। नौकरी भी तो नहीं छोड़ सकती थी, लगता दुनिया में उससे ज़्यादा आर्थिक मजबूरी किसी को न थी। वापसी में अबीर उसे समझाता रहा कि इतनी सीरियसली हर बात को नहीं लिया करे। मैट्रो से उतर वो लोग घर के पास ही कॉफ़ी पीने बैठ गए। चलते-चलते दिया ने धीरे से अबीर से कह तो दिया, 'घर चलो... ' पर मन में यही कहा कि वह मना कर दे। क्या घर का हाल है, फिर बिस्तर पर पड़ी माँ...

'फिर कभी ..' अबीर दिया की हथेली धीरे से दबा बोला। उसका स्पर्श ज़ख़्मों पर किसी मरहम से कम ना था। दिया घर की ओर हो ली। अबीर का साथ कुछ ज़्यादा दिन का नहीं था, नया आया था ऑफ़िस में। दिया को हमेशा कुछ परेशान, थका–थका सा देख वह उसकी ओर आकर्षित हुआ। दिया देखने में तो अपनी माँ की तरह 'सुंदर' की कैटीगरी में नहीं आती थी- हाँ, रंग ज़रूर साफ़ था। पर कुछ आकर्षण था, एक स्वभिमानी सा व्यक्तित्व जो अबीर को भा गया। पर दिया हमेशा खिंची–खिंची सी रहती। माँ की दिन पर दिन की गिरती सेहत ने शायद उसका मानसिक संतुलन ही बिगाड़ दिया था।

जैसे–जैसे घर नज़दीक आ रहा था, एक अजीब सी मनहूसियत उसे घेरने लगी। माँ के पास पहुँचने की बेचैनी होते हुए भी घर का बोझिल वातावरण शायद उसे निगलने को आता।

माँ उठी थी, शायद पानी–वानी लेने–दिया एकदम भड़क गई-

'क्यों उठती हो नाहक, गिर पड़ोगी–कुछ हड्डी–वड्डी टूट गई तो और मुसीबत होगी।' - दिया बिना सोचे समझे माँ पर बरस पड़ी, मानों सारे दिन की थकान-भड़ास निकाल रही हो।

'पानी खत्म हो गया था, प्यास लगी थी...' नम आँखों से गुनहगार सी माँ बिस्तर पर लुड़क गई।

'ओ माँ- आ रही हूँ ...' और हाथ मुँह धो भागती सी माँ के सिरहाने ज़मीन पर ही बैठ गई।

'सॉरी माँ, आई एम सो सॉरी...' माँ को कस कर दबोचते, जाने कितनी बार माथा गाल चूमती रही। दोनों की आँखें मानों कितने दिनों से बह जाने को तड़प रही हों। कैसा दर्द था, बस आँसू ही इस बेबसी को समझ पा रहे हों जैसे।

खाना खाते ही माँ सो गई। एकदम निश्चल-शांत, जैसे आँसुओं ने सारा दर्द बहा दिया हो। कई बार दिया ने उसकी नब्ज़ महसूस करने की कोशिश की, एक अजीब सा डर लगा रहता था उसे। बग़ल में आराम कुर्सी पर कुशन लगाए दिया माँ के मुरझाये चेहरे को एकटक देखती रही। क्या से क्या हो गया, कितनी सुंदर दिखती थी माँ कुछ दिन पहले तक। स्कूल जाते समय जब तैयार होती तो यह न पता लगता कि साड़ी उस पर फब रही है या उसने साड़ी में निखार ला दिया है। माँ साड़ी ही पहनती, कई बार दिया ने परसुएड किया कि सूट भी पहना करे, पर वह साड़ी में ही सहज रहती। बहुत छोटी थी, तभी से दिया के सिर पर पिता का साया न रहा। माँ वही स्कूल की नौकरी व ट्यूशन से घर चलाती। घर किराये का था, माँ की बहुत इच्छा थी कि छोटा ही सही, पर अपना घर हो। माँ ने दिया की हर छोटी-बड़ी इच्छा पूरी करने की कोशिश की, उसको छोटी-छोटी लग्ज़री में रहने की आदत डाल दी थी, दिया खुश थी।

बैठे–बैठे ही दिया की आँख लग गई। फिर नया सवेरा, नया संघर्ष... इसके सिवा कुछ नया नहीं था। बहुत थक चुकी थी दिया।

माँ के ठीक होने के आसार ही नहीं दिख रहे थे। कभी – कभी मन कहता, ' भगवान् या तो माँ को ठीक ही कर दे या फिर...' कहीं ऐसा कोई बेटी अपनी माँ के लिए ऐसा सोच भी सकती है ... छि:। पर कहीं मजबूर दिया के मन में ऐसे ख़याल पनपने तो नहीं लगे थे ?

माँ ने पापा के जाने के बाद कितनी मुसीबतों से पाला दिया को, यह वो ख़ूब समझती थी। बचपन में क्रैश दिया को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था, पर माँ की लाचारी थी। भागी–भागी सुबह ही टिफ़िन व लंच बना उसे क्रैश छोड़ना, फिर शाम को दिया को ले घर आ, घर के काम में जुट जाना। दिया यही सब देखते स्कूल, कॉलेज और अब जॉब तक आ गई। अब कमाने लग गई थी तो वह भी माँ को जो मन में आता गिफ्ट करती रहती थी। माँ के सिवाय उसका इस दुनिया में था ही कौन ....

000

अबीर का साथ उसे अच्छा लगता था। माँ की वजह से उसके लाख कहने पर भी ऑफ़िस के बाद कहीं नहीं जाती, जो भी साथ रहता, वही मैट्रो में, स्टेशन भी इतनी जल्दी आ जाता। रात-बिरात अक्सर सोते-जागते अबीर के साथ बिताए पल फिर–फिर जीती। उसके बेसबब स्पर्श का एहसास अबीर के ना होने पर भी दिया को धीरे से सहला जाता। शायद वह दोनों ही धीरे–धीरे एक दूसरे के करीब आ रहे थे। माँ को दिया दिन भर में घटा सब कुछ हमेशा लंबे –चौड़े दृष्टांत के साथ बताती पर अबीर का ज़िक्र उसकी ज़ुबान पर न आ पाया।

आज अबीर ऑफ़िस नहीं पहुँचा। फ़ोन भी उसका नहीं मिल रहा था और ऑफ़िस में कोई लीव ऍप्लिकेश, न कोई ख़बर थी। सारे दिन दिया को खाली–खाली सा लगता रहा। मन में बुरे-बुरे ख़याल आते जाते रहे। वो छुट्टी माँग जल्दी ही ऑफ़िस से निकल पड़ी। और सामने से अबीर आता दिखा। दिया हैरान, ख़ुशी के साथ राहत के एहसास से भर उठी। यकायक उसकी बाहों ने अबीर को जकड़ लिया– चारों तरफ़ लोगों का ख़याल किये बगैर।

'अरे–रे- रे ... '

अबीर दिया की इस प्रतिक्रिया के लिए शायद तैयार ना था।

'काम डाउन–काम डाउन दिया.. ' धीरे से उसके दोनों गालों को प्यार से थपथपाते दिया को धीरज दिलाया।

'बस अभी अंदर से एक मिनट में आया, यहीं रहना।'

दिया ने रियलाइज़ किया कि कई लोग उनको घूर रहे थे। वह एक किनारे आड़ में हो गई।

'तुम मुझे बता तो सकते थे कि आज नहीं आ रहे, मैं कितनी..' और दिया की आँखें बरबस छलक आईं। धीरे से अबीर के कंधे पर सिर टिका दिया। ऑफ़िस के पास ही एक छोटा सा पार्क था, आज वे दोनों वहीं बैठ गए थे। माँ का ख़याल दिया ने धीरे से परे सरका दिया। अबीर ने बताया उसे दूसरी कंपनी में ल्युक्रेटिव जॉब मिल गई है, आज उसी सब का फ़ाइनल होना था–फ़ोन स्विच ऑफ था दिन भर। दिया के मुँह से एक शब्द न निकला– आँसू उसकी सारी व्यथा बयान करते लुढ़क पड़े।

'ओहो, पास ही में तो है नया ऑफ़िस, हम रोज़ मिलते रहेंगे दिया-, प्रॉमिस...गॉड' प्रॉमिस हँसते हुए दिया को बहलाने की नाकाम कोशिश में दोनों कान पकड़ लिए- 'और अभी एक महीना नोटिस टाइम है, वी विल हैव फ़न ...'

'मुझसे पीछा छुड़ाना चाहते हो – ऊब गए?' दिया ने अबीर को सीधे देखते पूछा।

प्रतिक्रिया में अबीर ने दिया को कस के आलिंगन में बाँध लिया।

'मुझे जल्दी घर जाना है– माँ...' सम्मोहन का पल फ़ौरन ही बिखर गया।

'ओह माँ...' अबीर के भाव से झुँझलाहट झलक रही थी। आँसू व उलाहने भरी पलकें उठा दिया ने अबीर की ओर देखा।

'ओह सॉरी, तुम्हें हर्ट करने की कोई मंशा नहीं थी, बस यूँ ही मुँह से निकल गया...। ' अबीर ने सफ़ाई दी। अबीर असल में दिया के अपनी बीमार माँ के चौबीस घंटे के ऑब्सेशन से ऊब चुका था। वह कहीं दिया को ले भी जाना चाहता था तो माँ की वजह से कुछ भी संभव न था।

मैट्रो में करीबन दोनों अपने – अपने मन के ऊहापोह में उलझे चुप ही थे। अबीर को अपने रास्ते जाते देख दिया खड़ी रही – उसे लगा मानों वह उससे दूर होता जा रहा है। अबीर की खोती आकृति जैसे दिया के दिल को कचोट सी रही थी। उसकी पर्सनैलिटी में कुछ खास आकर्षण नहीं था, लम्बा, दुबला, कुछ पेल सा। कभी जीन्स वगैरह नहीं पहनता, ढीली सी पैंट जिसे वह जब तब ऊपर खिसकाता रहता। दिया से उम्र में काफ़ी बड़ा होने के बावजूद उसका सौम्य सा चेहरा, उसकी गहरी आँखें दिया को अंदर तक भिगो जातीं। और सबसे अहम बात, अबीर के साथ दिया को एक फीलिंग ऑफ सेक्योरिटी का एहसास होता, दिया उसके साथ नि:संकोच हो लेती।

'मुझसे बात करो दिया ...' दिया को गुमसुम देख माँ धीरे से बोली – 'अब तो मानाओ तुम्हें मुझसे मुक्ति मिले...।'

'अब तुम फिर शुरू हो गईं। ठीक हो जाओगी। सनीचर इतवार को डॉक्टर का अपॉइंटमेंट लेती हूँ, ज़रूर कोई दवा बदलेंगे – आराम मिलेगा।'

'कुछ आराम नहीं मिलेगा – अब तो किसी तरह ये ताम – झाम उठ जाए.. '

दिया कुछ कहने को हुई – देखा माँ सो चुकी थीं।

000

दिया और अबीर के पास एक महीना था – दिया ने तो अपने को अनपढ़ी किताब के जैसे अबीर के सामने खोल कर रख दिया था। आज अबीर की रोज़ – रोज़ की ज़िद के आगे हार उसके घर हो ली। घर क्या, एक कमरा था विद अटैच्ड बाथरूम – वहीं रैक पर छोटा – मोटा किचन, एक पलंग, बिस्तर उल्टा – पुल्टा बिखरा हुआ। अबीर को अचानक रियलाइज़ हुआ कि कहाँ दिया को इस कबाड़खाने में ले आया – शर्मिंदगी सी हुई। पर दिया थकी सी धप्प से बिस्तर पर अधलेटी सी बैठ गई।

'कुछ लोगी ? आज चाय कॉफ़ी नहीं चलेगी – लैट अस सैलिब्रेट ... ' और एक ग्लास में कोई ड्रिंक – शायद व्हिस्की ही थी, ले आया।

'एक ही ग्लास काफ़ी है न '- अबीर की आँखों में शरारत झलक रही थी।

'नहीं नहीं, यह नहीं – मैंने कभी नहीं पी..' दिया घबरा सी गई।

'तो आज से शुरूआत कर दो, आज सैलेब्रेशन की शाम है, यूँ ही गुज़र जाने दो..।' दिया के लाख मना करने पर भी अबीर ने उसके होठों से ग्लास लगा दिया। वो दोनों कब चादर की सिलवटों में खो गए, पता ही नहीं चला। अबीर के उन्मुक्त प्यार में दिया संपूर्णत: भीग चुकी थी। उसकी बाहों में उसे असीम सुख की अनुभूति का एहसास हुआ। जैसे बरसों से प्यासी थी दिया। कब आधा एक घंटा बीत गया, दोनों को पता ही नहीं चला। आज माँ के ख़याल को दिया ने बीच में आने नहीं दिया।

अचानक जैसे गहरी नींद से जागी हो, कूद कर कपड़े, बाल ठीक कर घर भागने की छटपटाहट से घिरी अकेले ही घर के लिए निकल पड़ी। कल माँ को चैकअप के लिए ज़रूर ले जाना है – अपने अंदर की ग्लानि को दबाते बुदबुदाई, 'आज माँ से कैसे आँख मिला पाएगी..' फिर बीते पल याद कर शर्माती सी मुस्कुरा दी।

माँ की रिपोर्ट आ गई – दिया ने माँ से बात छुपा ली। उनको एड्स था। दिया का दिल बैठ गया। डॉक्टर ने कहा कि इतने इंजेक्शन्स लगे

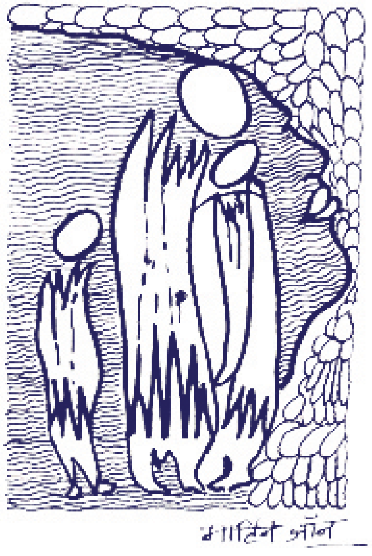

हैं, ख़ून चढ़ा है, किसी से भी इन्फेक्शन हो सकता है। सारी ज़िंदगी इतनी तकलीफें सहने के बाद यह बीमारी भी माँ को ही होनी थी। अबीर को बताया, उसने कुछ ख़ास रियैक्ट नहीं किया।

'अब तुम रोना न शुरू कर देना – होता है, आज कल सब पॉसिबल है, टेक इट ईज़ी...' दिया अबीर के रिलैक्स्ड रिऐक्शन से हैरान थी।

एक महीना कैसे बीत गया पता ही नहीं चला। अबीर के साथ मानों उसके सारे स्ट्रैस दूर हो जाते। अब तो दिया अबीर के संसर्ग के लिए बेताब रहती। 'आज तुम्हें घर चल कर माँ से मिलना ही पड़ेगा।' दिया ने ज़िद पकड़ ली। और रास्ते अलग होते – होते ज़बरदस्ती उसे हाथ पकड़ अपने घर की ओर मोड़ लिया।

'अरे तुम अबीर ...?' माँ अनायास भौचक्की सी रह गई। एक पल को अबीर भी हैरान हो कभी दिया को तो कभी उसकी माँ को देखता रह गया।

'कैसी हो मृणालिनी ?' कुछ सँभलते हुए पूछ बैठा।

'तुम दोनों एक दूसरे को जानते हो..। ' जवाब सुनते ही दिया के बदन मानों सुन्न पड़ गया।

'बहुत अच्छी तरह से..., यह मृणालिनी हैं, शहर के रईसों में मशहूर सो कॉल्ड कॉल गर्ल। अभी तक अपनी सुंदरता की आड़ में उम्र को पीछे खिसकाए हुए..। ' अबीर एक साँस में कहता चला गया। 'बड़े – बड़े लोग इनके मेज़बान थे, मैं तो उनमें से अदना सा एक था – अब यह नतीजा है...।' माँ को इंगित करते कुछ शब्दों में सब कुछ कह गया।

माँ थकी सी बिस्तर पर बैठी सब आरोप सुनती जा रही थी।

'सी यू दिया...।' अबीर पलटा और दरवाज़े के बाहर निकल गया।

'मैं क्या करती, तुम्हें अच्छी लाइफ़ देने के लिए, मुझे यह सब करना पड़ा-तुम्हें लग्ज़री की आदत थी...।'

'बहुत अच्छी लाइफ़ दी तुमने मुझे माँ..।'

'माँ' कहते भी उसे घिन सी आ रही थी, माँ से भी, खुद से भी। दिया ने कभी सोचने, समझने की कोशिश ही नहीं की, कि माँ इतना सब कहाँ से करती है। दिया बेजान सी चुपचाप अपने कमरे में बंद हो गई– उस रात न खाना बना, न दोनों ने खाया, न माँ ने दवा ली।

सबेरे माँ की हालत बहुत ख़राब थी, एकदम होश नहीं था। एम्बुलैंस बुलानी पड़ी, कोविड केस नहीं था, तो दिया को साथ बैठने दिया गया। ग्लूकोस और ऑक्सीजन से लैस माँ से मन ही मन पूछती रही–'तुमने ऐसा क्यों किया..? '

एडमिट करा घर आ गई। कुछ ही घंटों में हॉस्पिटल वालों ने खबर दी – माँ अचानक कोलैप्स कर गई हैं। टैस्ट में वो कोविड पॉजिटिव निकलीं। घर ले जाने की इजाज़त नहीं है।

'आप फ़ौरन आ जाएँ, सारी फॉर्मेलिटीज़ पूरी करनी हैं, क्रिमेशन भी।'

'अकेली हूँ, आप ही क्रिमेशन करवा दें – मैं आ कर बाकी सारी फॉर्मेलिटीज़ पूरी कर देती हूँ।'

आख़िरी बार माँ का चेहरा भी नहीं देखा। कितने अनकहे सवाल – जवाब लिए वह चली गई।

सब कुछ निबटा कर घर आते ही माँ के बिस्तर पर गिर पड़ी। फिर घिन से भर झटके से उठ बगल में आराम कुर्सी में अधलेटी सी छत की ओर शून्य में ताकती चारों ओर के चीखते सन्नाटे में धँस गई...।

000

भाषांतर

यथार्थ के क्रूर चक्र

मलयालम कहानी

लेखिका - कमला दास

अनुवादक - अनामिका अनु

अनमिका अनु
अनामिका विल्ला, हाउस नम्बर 31,कावु लेन, श्रीनगर, वल्लाकाडावु
त्रिवेंद्रम, केरल, पिन 695008
मोबाइल- 8075845170
ईमेल– anamikabiology248@gmail.com

माँ ने अकेलेपन के कड़वे फल को अपने जीवन में प्रथम बार तब खाया जब उसकी शादीशुदा बेटी ने धीरे-धीरे उससे दूरियाँ बढ़ा ली। उसे लगा कि अकेलापन विषमुष्टी (काहिरा) का वह वृक्ष है जिसे उसने अपने जीवन में दूर तक इससे पूर्व इंगित नहीं किया था। वह यह देखने में व्यस्त थी कि कैसे उसकी बेटी चली गई और उसके चेहरे के आवभाव भी बदल गए। उसके पति उसी वर्ष मृत्यु को प्राप्त हुए जिस वर्ष उसकी बेटी का जन्म हुआ था। तब से वह जी तोड़ कोशिश कर रही है कि वह माता-पिता दोनों के दायित्वों का निर्वहन संपूर्णता से कर सके। बेटी से अपने मध्यमवर्गीय मूल को छिपाने के लिए वह दोस्तों से पैसे उधार लेती है ताकि वह अपनी बेटी के लिए सिल्क के कपड़े खरीद सके, शहर के बेहतरीन शिक्षक से अपनी बेटी को ट्यूशन दिला सके और जन्मदिन के दिन बाग के पेड़ों पर रंगीन बल्ब जला सके। अंतत: उसने अपनी बेटी का विवाह एक धनी और व्यवहारी लड़के से कर दिया। इन सब के बाबजूद ज़िंदगी उसे किस ओर ले गई ? उसने अनगिनत बार पड़ोसियों से कहा है कि इस विवाह से उसे दामाद के रूप में एक बेटा भी मिल गया है। मगर वह दामाद शादी के बाद उससे औपचारिक बातचीत भी नहीं करता है। उसने बेटी से पूछा भी था कि आख़िर क्या बात है? कितनी जल्दी वह प्यारा सा लड़का बिल्कुल अनजबी में तब्दील हो गया। क्या कुछ दुष्ट लोगों ने मेरी निंदा की है? बहुत से पुरुषों ने उसे पाप से समोहित करने की कोशिश की, पति की अनुपस्थिति में उसका सौन्दर्य उसके लिये बोझ बन चुका था। मगर वह ज़िंदा रही तो बस अपनी बेटी में भगवान् और भगवती दोनों के स्वरुप को देखकर, बिना किसी के माया जाल में फँसे। वह रात में लेटकर बेटी को बाँहों में भर लेती और नींद का इंतज़ार करती तब उसने दु:स्वप्न में भी इस दिन की कल्पना नहीं की थी कि कोई भी दिन उसकी बेटी और उसके संचित प्रेम के बिना होगा। उसे पूर्ण विश्वास था कि वह मृत्यु तक अपनी बेटी के साथ ही रहेगी।

शादी से पहले उसकी बेटी को किसी और लड़के से प्यार हो गया था। वह नौसेना में अभियंता था। जब भी वह छुट्टियों में आता था तो उसके लिए और उसकी बेटी के लिए विदेशी कपड़े, प्रसाधन और इत्र लाता था। कुछ ग़लतफहमियों के कारण वह रिश्ता टूट गया। लेट कर

बिस्तर में मुँह छिपाकर वह बहुत समय तक रोती रही, उसके बाद उठी और उससे बोली - "मैं उसके बारे में दोबारा कभी नहीं सोचूँगी।" जिस तरह से रिश्ते में दरार आई, उसके लिए उसकी बेटी ही ज़िम्मेदार थी। लेकिन इस बात के लिए उसने कभी अपनी बेटी को नहीं कोसा। कभी उसे फटकारने का भी नहीं सोचा। क्या वह लड़की जो अभी बीस साल की होने जा रही है, उससे स्त्रैण सुलभ सौम्यता की मिसाल होने की उम्मीद करना उचित होगा? क्या किसी पुरुष को यह अधिकार है कि वह एक स्त्री को सिर्फ इसलिए बदचलन कह दे; क्योंकि वह किसी पुरुष के साथ एक आध बार सिनेमा देखने चली गई। क्या एक पुरुष जो हर वक़्त जहाज़ में काम करता है उसको यह अधिकार है कि वह निरंकुश ज़िद करे कि उसकी पत्नी घर से बाहर न जाए। इसी तरह वह अपनी बेटी की हर हरकत के पीछे एक कारण ढूँढ़ती और उसकी हिम्मत बढ़ाती। शायद इन सबके बदले ही, उसकी बेटी उसे उन मौकों पर गले लगा कर उसके कान में कहती थी-"मेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी माँ है।"

उन क्षणों में उसके पेट के गहरे अंदर गर्व भरी मरोड़ उठती थी। वह उन दोस्तों को दुश्मन की तरह देखती थी जो उसे उसकी बेटी पर लगाम कसने को कहते थे। उन दिनों उसे सिर्फ़ अपनी बेटी का प्यार चाहिए होता था।

दामाद की उसके प्रति उदासीनता का कारण कौन हैं? जब उसने बेटी से पूछा तो उसने कंधों को उठाकर अपनी अनभिज्ञता ज़ाहिर की। "कौन जाने मैं नहीं जानती।" वह बोली।

उसके शारीरिक आव- भाव और शब्दों ने यह दिखा दिया कि वह माँ की वेदना को गंभीरता से नहीं लेती। जब वह अपनी बेटी के घर बिना सूचना के पहुँची तो नौकरानी जिसने दरवाज़ा खोला, वह पीली पड़ गई।

"आप कृपया यहाँ बैठ जाएँ। मैं ऊपर जाकर उनको बताती हूँ।"

"क्या मैं ऊपर नहीं जा सकती?"

"बिल्कुल नहीं, साहब को किसी का ऊपर आना अच्छा नहीं लगता। वे मुझे डाँटेंगे।" नौकरानी ने कहा।

"फिर मैं यहाँ बैठती हूँ, तुम जाओ दोनों को बुला कर लाओ।"

लगभग आधे घंटे बाद लड़की उठकर नीचे आई और चेहरा धोया।

"तुम इतनी सुबह क्यों आ गई माँ?" उसने पूछा।

माँ को लगा था कि उसको देखकर बेटी खुश होगी और हर बार की तरह उसके गालों को चूम लेगी। लेकिन उसने किसी भी प्रकार का प्रेम प्रदर्शन नहीं किया।

"यह बदलाव कैसे आया?" माँ ने पूछा।

"बदलाव, कैसा बदलाव?" बेटी ने पूछा।

मेरे आने से तुम खुश नहीं लग रही हो। मैं तुम्हारे लिए जो केले और सब्ज़ियाँ लायी हूँ, वह कार में हैं। नौकरानी को बोलो कि वह कार में से ले आए।" माँ बोली।

"माँ अब से सब्ज़ियाँ मत लाना। इन्हें अच्छा नहीं लगता है।" बेटी बोली।

"तुम सब्जियों का उपयोग नहीं करती?" माँ ने पूछा।

बेटी चुप रही।

"मैंने क्या किया है बच्चा? तुम दोनों मेरे साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार क्यों कर रहे हो? या तुम किसी की बनी बनाई कहानियों में आ गई हो?" माँ ने पूछा। बेटी उस क्षण भी मौन रही।

माँ उल्टे पाँव लौट आई, बिना चाय का इंतज़ार किये। उसे लगा कि उसकी उपस्थिति दामाद के लिए ही नहीं बल्कि उसकी अपनी बेटी के लिए भी अरुचिकर है।

उस दिन न उसने नहाया और न खाना बनाया। वह सिसक-सिसक कर रोती रही। अँधेरे कमरे में पीठ के बल लेट कर, वह अपनी बेटी के बचपन की एक-एक घटना को एक-एक करके याद करने लगी। उसने महसूस किया किया, उसकी बेटी के बातचीत और व्यवहार के वे छोटे-छोटे अंश जो कल उसे खुशी देते थे, आज वही उसे दु:खी कर रहे हैं।

वह महिला जिसे कभी उसकी बेटी ने "दुनिया की सबसे बेहतरीन माँ" कहा था।

वह माँ आज "मेरा बच्चा, मेरा बच्चा" कह कर रो रही है और सिसकियाँ भर रही है।

बीतते समय के साथ माँ नितांत अकेली हो गई। उसके बाल सफ़ेद हो गए। नहीं सोने के कारण उसका रक्तचाप बढ़ गया और उसके पड़ोसी अब उसे दया की दृष्टि से देखने लगे।

"क्या तुम्हारी बेटी तुम्हारे पास नहीं आती?" पड़ोसी पूछते।

"हाँ वह आती है। वे रात में आते हैं। दोनों दिन में व्यस्त होते हैं।" माँ बोलती। और इस तरह माँ झूठ बोलने लगी।

एक दिन वह बाथरूम में बेहोश हो गई। वह सफाई करने वाली महिला ही थी जिसने पड़ोसियों को बुलाया और उसे अस्पताल में भर्ती कराया। अस्पताल में जब उसे होश आया तो उस महिला ने उससे पूछा-"अम्मा आप अपनी बेटी को देखना नहीं चाहती?"

"उसे मत बताना।" माँ ने कहा।

"जब मैं घर वापस लौट जाऊँगी, तब उसे बताना, उसे बेवजह क्यों घबराना?"

सब्ज़ी वाला, सफाई करने वाली महिला का पति, दूधवाला और धोबी, सब उसे देखने अस्पताल आए।

"तुम्हारी बेटी नहीं आई?" धोबी ने पूछा।

"मैंने उसे कहा था। आज सबेरे मैं वहाँ गया था और उन्हें बताया था, तब साहब ने कहा था कि वे पैसों के साथ अस्पताल आएँगे।" सब्जी वाले ने कहा।

"अब तो अँधेरा होने वाला है।" धोबी बोला।

"अब वे नहीं आएँगे।" सफाई करने वाली महिला ने कहा।

"किस चुगलखोर ने माँ के बारे में बेटे (दामाद) से झूठ बोला होगा? पापी, अभी तो बेटी की शादी के दो साल भी नहीं हुए हैं, तभी तो वह माँ को जान भी नहीं पाया है। यह कितनी कुम्हला गई है।" सब्जी वाला बोला।

"यह सब तुम्हारी बेटी का किया-कराया है।" सफाई करने वाली महिला बोली।

"वह शायद सोचती होगी कि उसकी पुरानी करतूत माँ के मुँह से उसके पति को सुनने को नहीं मिलें।"

माँ उन शब्दों को सुनकर स्तब्ध रह गई। पर उसे यथार्थ के क्रूरचक्र को सुनना पड़ेगा।

000

व्यंग्य

लोकार्पण

श्रीकांत आप्टे

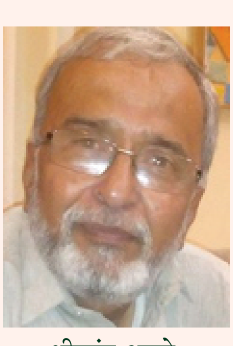

श्रीकांत आप्टे,
जी-1/81, गुलमोहर कालोनी,
भोपाल, 462039
मोबाइल- 9179990388

पिछले माह मैंने जितने दाह संस्कारों में भाग लिया उतने ही पुस्तकों के विमोचन कार्यक्रमों में भाग लिया। कुछ बार तो यूँ भी हुआ कि शाम को मैं किसी पुस्तक के विमोचन कार्यक्रम में होता और अगली सुबह विश्राम घाट में किसी के दाह संस्कार में। जब-जब ऐसा हुआ तब-तब मैंने पता लगाने का प्रयास किया कि मरने वाला कहीं कल शाम वाले विमोचन कार्यक्रम में तो नहीं था। मुझे शक होता कि मृतक कल शाम विमोचित पुस्तक पढ़कर ही मरा होगा। पोस्टमार्टम कराया होता तो पोस्टमार्टम रिपोर्ट भी यही होती। पर मैं जानता हूँ कि यह शक निराधार है। वरना, बहुत-सा वो जो साहित्य के नाम पर रचा जा रहा है, वही काफी था आबादी की समस्या से निपटने के लिए।

सप्ताह के अलग-अलग दिनों में शहर के अलग-अलग मोहल्लों में जितना नियमपूर्वक साप्ताहिक हाट लगता है, उतना ही नियमपूर्वक शहर में पुस्तक विमोचन कार्यक्रम होते हैं। जिधर नज़र उठाओ उधर ही विमोचन हो रहा है। एक ख़ुराक खाली पेट, एक खुराक खाने के बाद और एक खुराक रात सोने से पहले, यह आलम विमोचनों का। चश्मा लगाए, बाल बिखेरे, कंधे पर झोला लटकाए कोई दूर से आता दिख जाए तो डर लगने लगता कि ज़रूर विमोचन का निमंत्रण लेकर आ रहा होगा। हालात ऐसे बिगड़े कि अपने गुट वाला अपने गुट वालों के हाथों पिटने लगा। गुट वाले हैं भाई इसका मतलब यह तो न हुआ कि विमोचन में ही बैठे रहें। घर-बार वाले भी हैं। सब्ज़ी- भाजी, राशन- पानी भी लाना होता है। हमें तो आप माफ करें। हम न आ पाएँगे।

"कमाल करते हैं आप। अपने गुट के हो कर ऐसी बात कर रहे हैं। बताइए भला आप न आएँगे तो भला कौन आएगा।"

"अबे तेरी तो... साला गुट गया भाड़ में।"

बाज़ार में विमोचन का सिक्का खोटे सिक्के-सा फिरने लगा तो नया सिक्का उछाला गया,

'लोकार्पण'। ज़्यादा सार्थक और उचित है यह शब्द।

"हे लोक ! यह कूड़ा- करकट मैंने तेरे लिए ही रचा था, सो तुझे ही अर्पित करता हूँ। तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा।"

विमोचन हो या लोकार्पण उसके लिए एक अदद पुस्तक काफी है। पुस्तक साहित्यिक हो यह आवश्यक नहीं। संतवाणी, सेक्सवाणी, परिवार नियोजन के उपाय, गुप्त रोगों का इलाज, सट्टा लगाने के गुर, विवाह योग्य कुमार- कुमारियों की सूची, टेलीफ़ोन डायरेक्टरी कुछ भी चलेगा पुस्तकाकार का में। जो अधिक प्रतिभाशाली हैं वे कैलेंडरों और डायरियों का भी लोकार्पण करवा लेते हैं।

हॉल, पंडाल, मेला, दफ्तर, नुक्कड़, चौराहा, केशकर्तनालय, सुलभ शौचालय हर स्थान चलेगा। कहीं भी करवाइए। जिसकी जैसी औक़ात। लेखक अगर अफ़सर हो तो वही करेला और नीमचढ़ा वाली मिसाल। अव्वल तो इंतज़ाम अफ़सर को मुफ्त मिल जाते हैं और अगर मुफ्त की जुगाड़ किन्हीं कारणों से न हो सके तो प्रायोजक किस दिन काम आएँगे। लेखक अगर चुरकट हो तो घर पर ही करवा लेगा पर करवाएगा ज़रूर।

लोकार्पण के लिए खासा टीमटाम जुटाना पड़ता है। अपने पैसों से पुस्तक तो छपवा ली। अब अपने ही पैसों से उस पुस्तक को लपेटने के लिए खूबसूरत रंगीन कागज़ या ज़रीदार कपड़ा, रंगीन फीता, पुस्तक रखने के लिए खूबसूरत थाली भी खरीदना होगी। अगर सारे पैसे पुस्तक छपवाने में खर्च हो गए हों तो कोई बात नहीं। ये आइटम किराये पर भी मिलते हैं। बेहतर तो यही होगा कि आप एक बार खर्च करने की हिम्मत जुटाकर इन्हें खरीद लें। इसके लिये बैंक से लोन की संभावना का पता करें। पैसा उधार देने के लिये बैंक उधार बैठे हैं। अपना कार्यक्रम निपटाकर सामान को कागज, कपड़ा, फीता चिंदी-चिंदी हो जाने तक किराया वसूलें। अभी का खर्च तो निकल ही आएगा, अगली पुस्तकों की छपाई और उनके लोकार्पणों की जुगाड़ भी हो जाएगी।

शहर में रजिस्टर्ड लोकार्पिस्टों की कमी नहीं है। रिटायर्ड भी हैं और नौकरी शुदा भी।

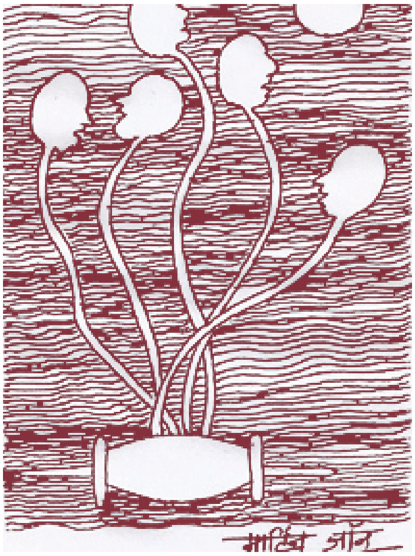

हमेशा लोकार्पण करने वाली खास ड्रेस लगाए घूमते रहते हैं। लोकार्पण का कुछ ठीक नहीं। क्या पता कब, कहाँ करना पड़ जाए। हाँ भाई, अवसर है, कहीं भी उपस्थित हो सकता है। कंधे पर शॉल और पेट में भाषण लेकर ही चलते हैं घर से। अक्सर तो घर बैठे ही मिल जाते हैं लोकार्पण करवाने वाले। कभी-कभी तो इतने मिल जाते हैं कि एक को निपटाया और चल पड़े दूसरे को निपटाने। कभी मामला उलटा भी पड़ जाता है। सप्लाई अधिक डिमांड कम, कठिन परिस्थिति हो जाती है। सुबह से पेट में भाषण लिए बैठे हैं। दोपहर बीत गई। शाम हो गई। पर एक भी खुदा का बंदा नहीं आया जो कहे कि सर, मेरी पुस्तक का लोकार्पण कर दें। लानत है इस शहर के आयोजकों पर। है क्या हो गया है इस शहर को, इसकी फिज़ा को। क्या सारे लेखक साले मर गए। कठिन परिस्थिति में भी रजिस्टर्ड लोकार्पिस्ट धीरज नहीं खोते।

"उठो वत्स ! तुम्हें ही कुछ करना होगा। स्वावलंबी बनना होगा। बन जाते हैं स्वावलंबी। निकल पड़ते हैं तलाश में। चक्कर लगाते हैं इस या उस हॉल के। मन में दोहराते हैं, गीता का उपदेश, "तुम कर्म करो, फल की चिंता मत करो। उद्यमेन ही सिध्यंति कार्याणि, न मनोरथै: ही, नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रवेशंति मुखे मृग:। मिल जाता है मृग मुख में प्रवेश करने के लिए।

रजिस्टर्ड लोकार्पिस्ट हैं। सभी जानते हैं कि कार्यक्रम में घुस आए हैं तो कुछ न कुछ तो इनसे करवाना ही पड़ेगा। ऐसे नहीं मानेंगे ये। अध्यक्ष महोदय नहीं आए हैं। सो अध्यक्षता करवा लेते हैं। अरे अध्यक्ष जी हॉल में प्रवेश कर रहे हैं, कोई बात नहीं मुख्य अतिथि बना लेते हैं। वैसे भी पर्याप्त देर हो चुकी है पर साला वह मुख्य अतिथि नहीं आया अभी तक। अगर मुख्य अतिथि और अध्यक्ष दोनों उपस्थित हैं तो विशिष्ट अतिथि बना लो भैया। आ गए हैं तो भीड़ में तो न बैठेंगे। जानते ही हैं आप। भाई साहब हद करते हैं आप, ठीक से देखिए विशिष्ट अतिथि भी आ गए हैं। तो यार अति विशिष्ट अतिथि बना लो। कुछ भी बना लो और पिंड छुड़ाओ इनसे वरना पिंडदान तक कोसेंगे ये हमें और आपको।

इस तरह वे पहुँच जाते हैं मंच पर। निगाहें गड़ी रहती हैं उनकी रंगीन कागज़ या कपड़े में लिपटी पुस्तक पर। लपलपाती रहती हैं उनकी उँगलियाँ पुस्तक पर बंधे फीते को खोलने के लिए। फीता खोलने का इतना अभ्यास हो चुका है इनकी उँगलियों को कि घर में पाजामें का नाड़ा भी खोलते हैं तो उसी अंदाज़ में।

रजिस्टर्ड लोकार्पिस्टों के अलावा पुलिस दरोगा, तहसीलदार, पटवारी, सरपंच, आपका बॉस और बीवी के बॉस की उँगलियों का इस्तेमाल भी आप उस रंगीन फीते को खुलवाने के लिए कर सकते हैं। संविधान या दंड संहिता की धारा में रुकावट नहीं बनती।

एक साहब ने रेल से अप- डाउन के सफ़र में जो रचा उसका लोकार्पण उन्हीं रेल कंडक्टर महोदय के कर कमलों से करवाया जिनकी बोगी में वह वर्षों तक बिना नागा, बिना टिकट सफर करते रहे। और एक साहब ने 'बलात्कार के तरीके' पुस्तक का विमोचन उन्हीं थानेदार साहब से करवाया जो कुछ दिनों पूर्व यह पवित्र कर्म थाने में ही करने के कारण चर्चित हुए थे।

अभी तक यह विमोचन- कम- लोकार्पण का धंधा देशी संस्थाओं तक सीमित है। पर यदि इसमें मुनाफे का प्रचार कर दिया जाए तो बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी इस धंधे में उतर पड़ेंगी।

000

संस्मरण

हम भी कमीने तुम भी कमीने

ज़ेबा अल्वी

यह बात काफी पुरानी है, लेकिन कुछ नई बातें, नई अज़ीयते, नए ज़ख़्म, कुल मिलाकर यह उन इंसानी रवैयों की दासतान है जिनमें सिर्फ़ और सिर्फ़ 'तक़सीम' का दर्द है। यह न काई अदबी शहपारह है न उच्च कोटि के साहित्य का कोई नमूना, न कोई दावा है। बस यह हम जैसे इंसानों की कुछ कमज़ोरियाँ हैं जिन पर ख़ुद हमारा बस नहीं- ''हमने उनसे कहा कि इतने कठोर मत बनो मगर दोनों तरफ़ से अनसुनी रही।'' नफ़रत कि जड़ें इतनी गहरी होती हैं, तब और जब इनकी सिंचाई भी दो तरफ़ा हो।

हम आपको बीस साल पीछे लिये चलते हैं। हमारी छोटी बहन शादी के केवल दो साल बाद बच्ची की पैदाइश में मर जाती हैं। बड़े भाई और छोटा भाई दोनों पाकिस्तानी हैं। बड़े भाई लखनऊ आते हैं और ग़म से बेहाल बचे-खुचे ख़ानदान, दो छोटी बहनों और माँ को साथ ले जाना चाहते हैं, मुसतक़िल तौर पर। दोनों बहनें साथ चली जाती हैं मगर हमारी माँ के पासपोर्ट में किसी ज़रूरी कार्यवाही के कारण अभी कुछ दिन उन्हें रुकना पड़ता है। यह तय होता है कि तमाम कार्यवाही के बाद अम्मी को वीज़ा के लिए हम दिल्ली ले जाएँगे।

हफ़्ते दो हफ़्ते के बाद हम अपनी पाँच महीने की बच्ची को आपा के भरोसे छोड़ दिल्ली जाने की तैयारी कर रहे थे कि फ़ोन की घंटी बजी। फ़ोन राम लाल जी का था। उन्होंने कहा तुम अकेली अम्मी को लेकर मत जाओ, मैं भी साथ चलता हूँ।

वैसे तो रेलवेज़ में होने के नाते दिल्ली उनके लिए कभी दूर नहीं थी लेकिन राम लाल जी हमारे ग़म में अपनों की तरह दुखी थे। राम लाल जी से साहित्यिक संबंध के अलावा एक घरेलू संबंध भी था।

हमारे लगभग सभी दोस्त, मिलने-जुलने वाले हमारी माँ के व्यवहार और उनकी बातों से बहुत प्रभावित थे। राम लाल जी अम्मी की बहुत इज़्ज़त और क़द्र करते थे। दिल्ली में उन्होंने हम लोगों के बहुत कहने पर भी किसी होटेल या रिश्तेदार के यहाँ नहीं ठहरने दिया और अपने उस घर में ठहराया जहाँ अब उनके छोटे भाई रहते थे।

कभी राम लाल जी ने हमें बताया था कि यह घर उन्हें क्लेम में मिला था। जवान बेटी के ग़म में निढाल न अम्मी की आँखों में नींद, न हमारी। बस आँखों ही आँखों में सवाल-व-जवाब थे।

तिमंज़िला मकान, लकड़ी के नक़्क़ाशी दरवाज़े, दर, दालान, ताकें, मेहराबें, झरोखे, खिड़कियाँ, रौशनदान, चह चीख़-चीख़ कर बता रहे थें कि- ''यह मकीं (घर में रहने वाले)

ज़ेबा अल्वी
बी-105, अफ़नान आर्केड, ब्लॉक-15,
गुलिस्ताने जौहर, कराँची,
पाकिस्तान -75290
ईमेल- zeba.alavi@gmail.com
मोबाइल- +92-3350315438,
+92-3007031421

हमारे नहीं हैं। यहाँ तो कोई और थे।'' किसी बुज़ुर्ग ख़ातून की जाए नमाज़ की चौकी रही होगी यहाँ पर। इन ताकों में रेहेल रखी जाती रही होंगी। बच्चे अपने अपने क़ाएदे थामे, सर पर छोटी-छोटी टोपियाँ धरे मस्जिद के मौलवी साहब से पढ़ कर आते ही अपनी माँओं के गले में झूल जाते होंगे ख़ुशी से। एक मिडिल मुसलमान घराने की छाप वहाँ के दर-व-दीवार से टपक रही थी।

ख़ुदा तो उस वक़्त भी वहाँ मौजूद था उन तुग़रों की जगह। फ़र्क़ सिर्फ़ था तो राम और रहीम का। दिलों के सन्नाटे इस घर में पूरी तरह घर कर गए थे। अगर कुछ था तो बस- ''कोई आवाज़ आती रही रात भर...''

सुबह राम लाल जी हम लोगों को लेकर पाकिसतानी दूतावास पहुँचते हैं। यह सच था कि सब हम अकेले नहीं कर सकते थे। एक ज़रिया उन्होंने निकाल लिया था जिससे हमें ''क्यू'' में नहीं लगना पड़ा। राम लाल जी का जज़्बा, उनकी आँखों की चमक, पाकिस्तानी एम्बेसी की ओर बढ़ते उनके क़दम एक कॉन्फ़िडेंस के साथ, यह बातें सिर्फ़ वही लोग महसूस कर सकते हैं जो उनके क़रीब हों। हमारा यह पहला मौक़ा था वहाँ जाने का। न रास्तों का पता, न यह मालूम कहाँ किसके पास जाना है। ऐसे में उनका साथ हम लोगों के लिए किसी नेमत से कम नहीं था।

अम्मी को सहारा देकर वह वीज़ा आफ़िसर के कमरे में दाख़िल होते हैं। सामने एक करख़्त (कर्कश) चेहरा लिए अफ़सर बैठा है। सवाल- क्यों जाना चाहती हैं? यह आपकी कौन है? हमारी और इशारा। नाम? फिर राम लाल जी से सवाल- आप इनके कौन हैं ? इन बेटे का दोस्त। नाम- राम लाल। आप क्यूँ आए हैं? क्या आप न आते तो इनको वीज़ा न मिलता? जाइए बाहर बैठिए। निगाहें ऐसी ज़िल्लत भरी कि तौबा। उसके सुर्ख़ सफ़ेद शोला फ़रोज़ाँ, बूलहबी चेहरे पर सुरख़ी कुछ और फैल गई। काटो तो ख़ून नहीं मुहावरे का जिस्म पर क्या असर होता है यह उस लम्हे जाना।

राम लाल जी सिर झुकाए, भारी क़दमों से (शायद आँखों में नमी भी हो) बाहर निकल

जाते हैं। एक करख़्त आवाज़ फिर गूँजी- ''जाइये बाहर मोहर लगवा लीजिये।''

हम और अम्मी एक दूसरे को देखते हैं। कैसे नज़रें मिलाएँगे राम लाल जी से? मआज़रत ख़्वाहानी (माफ़ी माँगने वाली) नज़रों से देखते हैं उनकी तरफ़। उनका ज़र्फ़ कि वह इस बात को ख़ामोशी से पी गए। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट थी। 'ज़बान' रंग लाई। गेट पर जिस गार्ड की ड्यूटी थी, कुछ ज़बान से और कुछ आँखों की ज़बान से बात हुई होगी। हम लोगों की किसी बात को सुने बग़ैर वह कहने लगे- चलो अम्मी को पानी-वानी पिलाते हैं। वह हमें एम्बेसी के एक ख़ास कमरे में ले गए जो कि एक रेफ़्रेशमेंट रूम था। दूसरे कमरे में जहाँ दो नौजवान झल-झल करते सफ़ेद शलवार सूट, काली वासकट, शादाब चेहरे लिये हमारे मुंतज़िर थे। चिलचिलाती जून की गर्मी और धूप से परेशान हम लोग, सुर्ख़-सुर्ख़ तरबूज़ की फाँकों ने उस करख़्त सुर्ख़ चेहरे की करख़्तगी को ठंडक में बदल दिया।

गेट पर राम लाल जी की जिस गार्ड से बातचीत हुई थी उसका और उन दो नौजवानों का संबंध पाकिस्तान के साउथ इलाक़े मियाँ वाली से था। मिट्टी की ख़ुशबू मिट्टी तक पहुँची। वह लोग इतनी मोहब्बत से मिले कि बयान से बाहर। वहाँ संबंध था तो सिर्फ़ ''ज़मीन'' का था। हमारे कुछ आँसू पुँछे। रामलाल जी शायद सब कुछ भूल कर उस थोड़े से वक़्त में उन नौजवानों से अपनी यादें शेयर करने लगे। पासपोर्ट पर ठप्पा भी फ़ौरन लग गया।

वह राम लाल जी जो तक़सीम के बाद पहली मर्तबा पाकिस्तान आते हैं, लखनऊ में बनवाए जाने वाले अपने घर 'शांति निकेतन' के लिए मियाँ वाली की मिट्टी उसकी बुनियादों में डालने के लिए अपने साथ ले जाते हैं, उनके साथ ऐसा सुलूक?

उस ज़माने में पाकिस्तानी दूतावास में जो स्टाफ़ था उसकी काफ़ी शिकायतें थी। ख़ास तौर से वीज़ा के इन हज़रत की, जो वीज़ा अफ़सर (शनवारी पठान) थे। सुना था एक बार उन्होंने एक बूढ़ी महिला की पाँचों उँगलियाँ ज़ख़्मी कर दी थीं। वह महिला अभी बाहर डरी सहमी (शायद इनके व्यवहार पर) निकल ही रही थी कि जनाब ने तैश में आकर दरवाज़ा इतनी ज़ोर से बन्द किया कि उसकी उँगलियाँ आ गई थीं। जो भी हो ऐसी बहुत सी नफ़रतों की बातें कही-सुनी जाती रहीं।

पासपोर्ट का हासिल करना हिन्दुस्तान में थोड़ा दुश्वार था। यह बात 1982 की है। (अब क्या सूरत-ए-हाल है नहीं मालूम) लखनऊ के एक पॉश इलाक़े में पासपोर्ट ऑफ़िस था। लाइन में तो लगना ही पड़ता था। उस ज़माने में हमारे पैर के फ्रैक्चर का दूसरा आपरेशन हुआ था ओर एक बैसाखी के सहारे हम चल-फिर सकते थे। लाइन में जो धक्कम-पेल होती है वह हम दोनों देशों की तहज़ीब, तमीज़ ओर कल्चर का हिस्सा है। एक बाबू को कुछ हम पर दया आई और उसने अपने से बड़े यानी बड़े बाबू के कमरे की लॉबी में हमें बिठा दिया। यहाँ से सीधे दाख़िल होने पर अब वह बड़े बाबू कार्यवाही मुकम्मल होने पर हमें पासपोर्ट देते।

बड़े बाबू को अपने रुतबे और शान का कुछ अधिक ही मान था। बाहर का शोर-व-गुल की उनकी तबीयत पर भारी था जबकि यह बाहर की बेचैनी भी उन्हीं की पैदा की हुई थी। अगर वह अपने फ़र्ज़ को ठीक तरह से निभाते तो यह नहीं होती। मगर उनके पास बैठे (उन्हीं के अनुसार) लगवे-भगवे उनकी तफ़रीह का सामान ऊटपटाँग बातें, क़हक़हे, चाय पानी, पान-तम्बाकू, पच पच थूकने,

दाँतों की बार-बार खुदाई जैसे कामों में भी उनका साथ दे रहे थे।

बड़े बाबू बिलकुल गंजे तो नहीं थे। बालों की थोड़ी-थोड़ी झालरों से पंखा अठखेलियाँ कर रहा था। अपने बड़े बाबू होने का एहसास दिलाने के लिए वह अपने छोटे बाबुओं को डाँटने डपटने के लिए कभी-कभी बाहर भी निकल आते थे। अचानक उनकी नज़र हम पर पड़ी-''इनका हियां काहे बिठाए हौ?'' छोटे बाबू बोले- ''अरे ई बहिन जी बिकलांग हैं।''

''तो का मतलब है? समैन अंधे, लूले, लंगड़न का हियैन भर लेहौ का, बिठालो इनका बाहर?''

हमें अफ़सोस नहीं हुआ। हमें बुरा भी नहीं लगा। हमें लगा राम लाल जी के साथ होने वाले व्यवहार का बदला आज ले लिया गया।

1981 में हम अपने एक साल के बेटे और तीन साल की बेटी को लेकर पाकिस्तान आते हैं। आए थे जहाज़ से। वापसी पर चूँकि बड़े भाई और भाभी भी साथ आ रहे थे, इसलिए कि दो बच्चों को सँभालना हमारे लिए बहुत मुशकिल था; यह तय हुआ कि ट्रेन से जाएँगे, क्यूँकि इतने लोगों का जहाज़ का किराया हम अफ़ोर्ड नहीं कर सकते थे। सबसे बड़ा मसअला रूट चेंज करने का था। इसके लिए मिनिस्ट्री आफ़ फ़ॉरेन एफ़ेयर्ज़ से सम्पर्क करना ज़रूरी था, और इस्लामाबाद जाना पड़ता। छोटे भाई ने बहुत दौड़ धूप की तो यहीं यानी कराची से रूट चेंज होने की कुछ आशा हुई।

रमज़ान शरीफ़ का पावन महीना था। पहले तो एक दाढ़ी वाले मौलाना ने इस को सिरे से असंभव कहा। छोटा भाई चिरौरियाँ करता रहा अगर वह राज़ी नहीं हुए। काफ़ी गिड़गिड़ाने के बाद शायद वह कुछ पिघले और पूछा-''तेरा रोज़ा है?'' भाई ने 'न' में जवाब दिया। उस अफ़सर ने हिक़ारत से थूका- ''चल, जवान-जहान होकर रोज़ा भी नहीं रखता।'' फिर दूसरे दिन आने को कहा। दूसरे दिन भाई पहुँचा तो मौलाना ने सीढ़ियों की ओर इशारा किया कि वहाँ से वह पासपोर्ट कलेक्ट कर ले। वहाँ तीन-चार रोज़ेदार क्लर्क

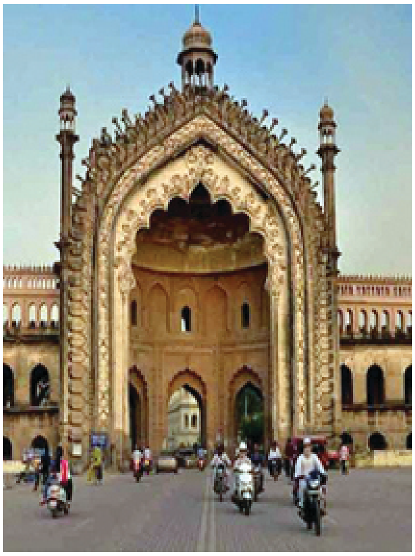

मौजूद थे जिनसे आँखों-आँखों में या पहले ही फ़ोन पर बात हो चुकी होगी। उन्होंने कोई ''रिश्वत'' नहीं ली बस रोज़ा खोलने के लिए कुछ ले लिया।

इस सिलसिले का अभी कुछ साल पहले का एक दिन याद आ गया। हम और हमारे भाई बस से दिल्ली से लाहौर पहुँचे, लाहौर से कराची ट्रेन का सफ़र था। ट्रेन लेट पर लेट होती गई जैसा कि यहाँ रेलवे का चलन है। हमारा सेलफ़ोन भी दम तोड़ चुका था। बराबर के कूपे में दो नौजवान कराची में घर वालों से बात करा देते थे। उनके बराबर ही एक बावर्दी पुलिस का जवान भी बैठा था जो मुसतक़िल उन लड़कों से हँसी-मज़ाक कर रहा था। वह हमसे मुख़ातिब हुआ- और अम्माँ इंडिया में कहाँ-कहाँ गईं? कितने दिन रहीं आदि। फिर एकदम वह उन लड़कों से बोला-''एक बात है, हम पुलिस वाले यहाँ के हो या वहाँ के, एक ही तरह के हैं (वह अपनी एक समान बातों पर रौशनी डालने लगा) बस एक अंतर है, वह सौ पचास में ही ख़ुश हो जाते हैं और हम हज़ार-पान-सौ से कम नहीं लेते....।''

1994 काफ़ी बदले बल्कि बहुत कुछ बदले हुए हिन्दुस्तान जाने का मौक़ा मिलता है। बाबरी मस्जिद की घटना घट चुकी थी। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, नफ़रतें दोनों तरफ़ से अपनी चरम सीमा पर थीं।

पहले दिल्ली पहुँचे। वहाँ एक सप्ताह रुक कर लखनऊ आए। अब दोबारा जिस शादी के लिए आए थे वह दिल्ली में थी, इसलिए जाना था। पुलिस लाएजन ऑफ़िस से डिपार्चर लेना था। ऑफ़िस लखनऊ के बेहतरीन इलाक़े जवाहर भवन नाम की बिल्डिंग में है। (इस क़दर ख़ूबसूरत इमारत, जो हमारी आँखों के सामने बनी अब उसकी बुरी हालत कर दी थी। हर कोना पान की पीक से एब्स्ट्रेक्ट आर्ट का नमूना पेश कर रहा था।) वहाँ के माहौल में भी बड़ा तनाव था। अपनी नफ़रतों को अपनी मसरूफ़ियतों में ढाँपता हुआ स्टाफ़।

कुछ देर बाद पासपोर्ट और पेपर्ज़ देख कर एक साहब बोले- ''अभी तो आप दिल्ली रह कर आई हैं? फिर जाना है क्या?'' बताया कि वहाँ की शादी का वीज़ा है। लखनऊ और बाराबंकी में भी रिश्तेदार हैं। एक तरफ़ से आवाज़ आई-''ई साला बजपेय्या जब से फोरेन मिनिश्टर हुआ है(एक और मोटी गाली) धड़ा धड़ बीजा खोल दिहिस है।''

लगता था कि वह लोग भरपूर तरीक़े से तैयार बैठे हैं कि कोई न कोई ऐसी बात कहें जिसमें उनकी नफ़रत का इज़हार हो। सामने बैठी हुई एक स्टाफ़ की महिला हमारी बेटी को मुस्तक़िल घूर रही थी और बीच-बीच कुछ टुपुक्के भी बोल देती थी। सख़्त सर्दी में सिकुड़ी, शाल से बार-बार हाथ निकालती हुई, मैली-चीकट फ़ाइलों में उलझने से ज़्यादा साथ काम करने वाले लोगों से एक्सचेंज आफ़ थॉट्स पर ज़्यादा थी। सुर्ख़ कपड़ों, दमकते चेहरे के साथ वह हँसती खिलाखिलाती तेरह चौदह साल की लड़की होश में पहला बार आई थी ''क़सूर'' शायद उसका यही था। अपनी उत्सुकता को छिपा नहीं पा रही थी। जोश-वलवला टपका पड़ रहा था।

एक तो सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि पाकिस्तानी बच्चे हिन्दुस्तान को अमिताभ बच्चन, शाहरुख़ ख़ान, सलमान ख़ान, माधुरी दीक्षित फ़लाने-ढमाके से आगे जानने की कोशिश ही नहीं करते। बल्कि यह कहना ग़लत न होगा कि उनके शजर-ए-नसब (वह पुस्तिका जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी का ब्योरा हो) तक मालूमात में इन्हें दिलचस्पी होती है। उन्होंने वह हिन्दुस्तान न देखा है, न सुना है, जिसमें हमारी नस्ल पली-बढ़ी हैं। क़ुसूर

इनका नहीं है, इनकी परवारिश का है। अब हम इन बातों पर रोएँ या गाएँ।

ख़ुद हमारी बेटी का अमिताभ से मोहब्बत का यह हाल है (और था), इसलिए कि चार साल की वह बच्ची सुबह उठते ही, आँखें मलती सबसे पहला सवाल यह करती कि- ''अम्माँ अमिताभ केशा है, पेपल देखा टी.वी. देखा आपने?'' (यह उस समय की बात है जब हम हिन्दुस्तानी थे)

यहाँ हम उर्दू बोलने वालों का परिचय दो तरह से दिया जाता है- हिन्दुस्तानी, बिहारी आदि। बहस लम्बी हो जाएगी अगर हम यह बताएँ कि कहाँ हम लोगों को ''भाकड़'', कहाँ भय्यो और कहीं दूसरे हास्यास्पद नामों से पुकारा जाता है। हमें यह कहने में ज़रा भी बाक नहीं है कि अस्ल क़ुरबानी हमने दी है या फिर उन हिन्दुओं ने जिनको यहाँ से बहुत कुछ क़ुरबान करके जाना पड़ा। यहाँ पंजाबियों, सिंधियों, और दूसरी क़ौमों ने दिल से हमें एक्सेप्ट नहीं किया।

बात कहाँ से कहाँ चली गई। पल-पल की रिपोर्ट आ रही थी कि अमित जी अब कैसे हैं, जब शूटिंग के दौरान उन्हें चोट आई थी। आज भी जब वह सात आठ साल के बच्चे की माँ है कोई झूठे मुँह भी कह दे कि तुम बम्बई आओ (मुम्बई न हम बोल सकते हैं न लिख सकते हैं) तो तुम्हें अमिताभ से मिलाएँगे तो खुश हो जाती है।

कहते हैं सदी के बेतहरीन एक्टर का अवार्ड जनाब को मिला। वहाँ से एक आवाज़ आई थी कि - मिलना दिलीप कुमार को चाहिए था कि उस वक़्त फ़िल्मों में होने के बावजूद, काली सफ़ेद फ़िल्मों में अपनी अदाकारी का वह सिक्का जमाया जो आज भी दिलों पर राज कर रहा है। मगर वह बेचारा मुसलमान जो ठहरा।

हमार एक दोस्त का ख़याल है कि फ़िल्मों में गंदी गालियों, नेगेटिव केरेक्टर्ज़ का सिलासिला भी इन्हीं की देन है। ज़्यादा क़सूर हमारी परवारिश का है। एक दिन हमारी बेटी आर्कमिडिज़ की तरह यूरिका...यूरिका... की सदा गाती हुई आईं, कहने लगीं-''अरे अम्मा, यह वही 'काकोरी' जहाँ के आप लोग रहने

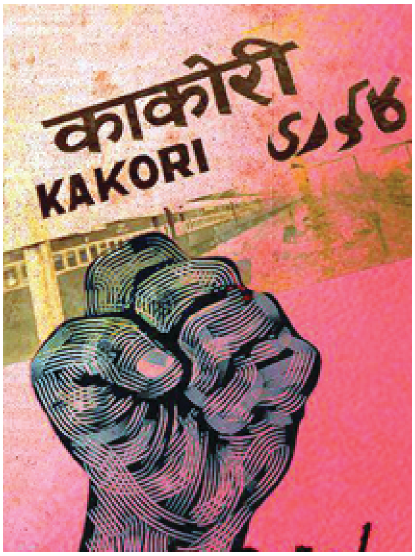

वाले हैं?'' हमने पूछा क्यूँ? तो कहने लगीं कि आमिर ख़ान कहता है- ''काकोरी जाएँगे... वहाँ के कबाब खाएँगे...'' उसके कहने पर फ़िल्म 'रंग दे बसंती' देखी। उसे क्या बताते कि बचपन में हमारी माँ ने इन हीरोज़ से हमें अवगत कराया था। 'काकोरी कांड' (जिसको अँग्रेज़ों ने डकैती का नाम दिया। भगत सिंह, अशफ़ाक़ उल्लाह ख़ान, राम प्रसाद 'बिस्मिल'...

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

देखना है ज़ोर कितना बाज़ू-ए-क़ातिल में है...

ये थे असल हीरोज़ जिनके बारे में पढ़ाया गया, बताया गया। अब चूँकि यह बात अमिर ख़ान ने कही है इस लिए तुम्हें उसके महत्त्व का अंदाज़ा हो रहा है।

बहरहाल, बात कहाँ से कहाँ निकला आई। बारहबंकी में वह तमाम लोग याद आए जिनसे हमें बेपनाह मोहब्बत थी और वे भी हमसे मोहब्बत करते थे। एक-एक का हाल पूछते हैं। बड़ी बहन से गुप्ताइन (मिसिज़ गुप्ता) के बारे में पूछते हैं- कैसी हैं कहाँ हैं? (हिन्दुस्तान के बाज़ क़स्बों में आज भी शोहर के नाम या पेशे से औरत की पहचान है जैसे कि-पेशकार की बीवी पेशकारन, डिप्टी की बीवी डिप्टियान, वकील की बीवी वकलाइन आदि) बाजी ने बताया अब वह नहीं मिलती हैं (यानी बाबरी मस्जिद घटना के बाद)। पड़ोस में रहने वाली मिसिज़ गुप्ता का बेटा इस घर के 'बड़े' के कबाब खाए बग़ैर रह नहीं सकता था। अब वह सब ''कार्य सेवक'' हैं। वही पड़ोसन रातों में थाली बजाती और मुसलमानों के ख़िलाफ़ नारे लगाती- ''पाकिस्तान जाओ नहीं तो क़ब्रिस्तान''। वह पड़ोसन जो हमारी भांजी की शादी में ढोल पर लहक-लहक कर गाती थी- ''मदीने से ठंडी हवा आ रही है...''

बारहबंकी के जिस स्कूल में हम पढ़ा चुके थे जहाँ सब साथ बैठ कर खाना खाते थे, हम तीन मुसलमान टीचर्ज़ उनके लिहाज में कभी गोश्त की कोई डिश नहीं ले जाते थे कि उनमें से अधिकांश को परहेज़ था। जबकि वहाँ की हेड मिस्ट्रेस गोश्त की बहुत शौक़ीन थीं, वह काएस्थ थीं। उन्हें घर ले जाने के लिए हम लोग कभी कबाब कभी कुछ पका कर ले जाते थे। वैसे काएस्थों को सुना है कट्टर हिन्दू आधे मुसलमान कहते हैं। एक तो गोश्त खाने के कारण (जो कि सही नहीं) दूसरे जब दीवाली के मौक़े पर आम तौर पर लोग लक्ष्मी की पूजा करते हैं तो ये क़लम या सरस्वती की पूजा करते हैं। (हमें भी कुरआन का पहला हुक्म है, 'पढ़ो' यानी 'इक़रा' इल्म हासिल करना औरत मर्द दोनों पर फ़र्ज़ है।

1981 में निजी मजबूरी के कारण, लखनऊ, लालबाग के एक वर्किंग होस्टल में रहना पड़ा वहीं टी.वी. पर (एडमिनिस्ट्रेशन में) काम करने वाली एक लड़की भी रहती थी (नाम इस वक़्त याद नहीं आ रहा है- नजमा-सलमा, निगहत जो भी हो, हम उसका नाम निगहत रख लेते हैं) निगहत हमें आपा कहती थी। साँवली थी मगर नैन-नक़्श बेहद सुंदर बड़ी-बड़ी आँखें, घने-काले बाल चेहरे पर बला की 'भलाहत'। वहाँ के माहौल से वह भी तंग थी। हमारी रूम मेट एक वृद्ध महिला मिसिज़ बोस थी। वह भी किसी मुसलमान लड़की के साथ अनकम्फ़र्टेबेल महसूस करती थीं। हम उनकी मजबूरी थे कि उस समय कोई कमरा ख़ाली नहीं था। निगहत की रूम मेट को भी हमने कहते सुना था कि- ''आई कांट स्टैंड विद मुस्लिम''। उसने रूम भी चेंज कर लिया था। हालाँकि सारे कमरे भरे हुए थे मगर उसे अपनी ही जैसी सोच रखने वाली ने एडजस्ट कर लिया था।

एक दिन बैठे-बैठे हमने और निगहत ने तय किया क्यूँ न हम लोग दो कमरों का एक फ़्लैट रेंट पर ले लें, ख़र्च उतना ही आएगा। उस समय इंद्रा नगर नया-नया बसा था और यहाँ आसानी से मुनासिब किराये पर फ़्लैट मिल सकता था। किसी ने बताया कि फ़लाँ मकान का एक पोर्शन ख़ाली है। पता लेकर गए। वहाँ पहुँचे तो एक साहब बाहर निकले, देखने में भले मानस लग रहे थे। अंदर ले गए, पोर्शन देखा। नाम-पता वग़ैरह सब पूछते रहे। थोड़ा-थोड़ा सब कुछ तय होता नज़र आ रहा था कि अचानक उन्होंने सवाल दागा कि-''क्या आप टी.वी. पर काम करती हैं?'' हमने बताया कि हम एक सरकारी दफ़्तर में काम करते हैं। फिर उन्होंने कहा परसों शाम हमने आपको टी.वी. पर देखा था। हमने उन्हें बताया कि एक कार्यक्रम उर्दू शाएरी का 'अवध पंच' नाम से आता है उसमें भाग लिया था। बिना किसी हिचकिचाहट के वह एक दम खड़े हो गए-''देखिए हम टी.वी. पर काम करने वाली औरतों को घर नहीं देते।'' वह हज़रत 'मुसलमान'थे। (लौटे के बुद्धू घर को आए)

निगहत को जो घटा वह बताया। वह कहने लगी आपा परेशान न हो, कल संडे है हम लोग साथ निकलेंगे। मेरी एक दोस्त ने यह पता दिया है। इतवार को हम लोग पहुँचते हैं। वह साहब (शर्मा जी, गुप्ता जी, वर्मा जी जो भी रहे हों, नाम याद नहीं आ रहा है) रेफ़रेंस पर अच्छी तरह बिठाते हैं। सारी टर्म्ज़ एण्ड कंडीशंज़ तय हो जाती हैं- किराया वक़्त पर देना होगा, परिवार छोटा होना चाहिए आदि। वह चाबियों का गुच्छा निगहत को थमा देते हैं। अभी हम लोग चाबियाँ लेकर उठने ही को थे कि वह महाशय अंदर कमरे से हाँफते-काँपते आते हैं और चाबियों का गुच्छा लगभग झपटते हुए छीन लेते हैं। हम लोग हैरान परेशान कि आख़िर हुआ क्या है? ''जाइये, जाइये, हम किसी मुसलमान को घर नहीं देते।'' उनके सपाट चेहरे पर कोई शर्म, कोई शर्मिंदगी नहीं थी। चूँकि पहनावे से अदांज़ा नहीं होता। हिन्दू, मुसलमान सभी महिलाएँ साड़ी बाँधती हैं (अंदर जाकर शायद वह दिये

गए रेफ़रेंस से पता करते हैं।) जिसने पता दिया था वह भी हिन्दू ही थी। मगर क्या किया जा सकता है इस सोच पर। हम लोग अपने 'मुसलमान' होने पर शर्मिंदा, शर्मिंदा (हालाँकि ऐसा बिलकुल नहीं था) लौटे आते हैं।

बहरहाल कोशिश जारी रही। हम लोग इंद्रा नगर में ही जहाँ किसी ने बताया था जा रहे थे। थोड़ा झुटपुटा हो चुका था। हम लोगों से थोड़ा आगे एक महिला सफ़ेद, पतले नारंगी बॉर्डर की साड़ी बाँधे थोड़ा तेज़ चल रही थीं। वह महिला उसी फ़्लैट के आगे रुक कर गेट खोल रही थीं जो किराए के लिए ख़ाली था। जबकि उस पर 'टुलेट' की कोई तख़्ती नहीं लगी थी। किसी के बताए हुए पते पर ही हम लोग पहुँचे थे। महिला के चेहरे पर मुस्कुराहट थी। वह बोलीं हमें पहुँचने में कुछ देर हो गई है। घर दिखाने लगीं। छोटे से लॉन में बड़ी-बड़ी घास और झाड़ियाँ उगी हुई थीं। प्लास्टर भी जगह-जगह से उखड़ा। बताने लगीं अभी थोड़ा ठीक कराना है। असल बात यह है कि दो साल से ख़ाली पड़ा है। आप लोग देख लीजिए। हम लोगों ने नाम के साथ अपना परिचय दिया। बात यह है कि बड़ा बेटा शहर से बाहर है। काफ़ी समय से हम अपनी परेशानी में रहे, इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। छोटे बेटे को साँप ने डस लिया वह चल बसा। इसीलिए घर बुरी हालत में पड़ा है। फिर अचानक वह बोलीं-''शायद आप लोगों ने हमें पहचाना नहीं मैं मिसिज़ गौतम हूँ। डॉ.गौतम की पत्नी।'' हम एकदम सन्न से रह गए। निगहत उस वक़्त दूसरे शहर में रही होगी। उस समय उसकी उमर भी इतनी न रही होगी और न उस समय मीडिया इतना जागरूक था। मगर हम लखनऊ वाले उस घटना, घटना क्या दुर्घटना को कैसे भूल सकते हैं?

यह बात लगभग 1964 या 65 की है। ऐसा सनसनी फैलाने वाला वाक़या कम से कम हमने अपनी उमर में न देखा न सुना। डा.गौतम बलरामपुर अस्पताल का बेहद हैडंसम, हँसमुख किसी डिपार्टमेन्ट का इंचार्ज, शादी शुदा, दो बच्चों का बाप था।

रहमानी साहब एक मिडिल क्लास से संबंध रखने वाले बुज़ुर्ग नमाज़ी, परहेज़गार। बेटी शमीम रहमानी मेडिकल में दाख़िले की तैयारी कर रही थी। इसी सिलसिले में डा.गौतम से मुलाक़ात हुई थी शायद। फिर यह मुलाक़ातें इश्क़-व-मोहब्बत में बदल गईं। बहुत सी कहानियाँ जन्म लेती हैं। शमीम रहमानी कोई बला की हसीना तो नहीं थी मगर उसके सरापे में उसके घने काले, बहुत लम्बे बाल थे। (शायद इन्ही काली लम्बी घनी नागन जैसी ज़ुल्फ़ों का क़ैदी हुआ होगा बेचारा डॉ. गौतम) बहरहाल इनकी प्रेम कथाएँ, जो कि बाद में मंज़र-ए-आम पर आईं। दोनों एक दूसरे से मिलते, एक दूसरे के घर जाते रहे।

एक दिन पूरा लखनऊ इस सनसनीख़ेज़ ख़बर से गूँज उठा। हॉकर्ज़ हाथों में अख़बार लिए- आज की ताज़ा ख़बर... आज की ताज़ा ख़बर देने लगे-डॉ.गौतम का क़त्ल हो गया। एक मुसलमान लड़की ने एक हिन्दू औरत की माँग का सिंदूर छीन लिया। दो मासूम अनाथ हो गए। फिर तो हर सुबह एक नई कहानी। तरह-तरह की ख़बरें। शमीम रहमानी गिरफ़्तार हो गई। किसी औरत का सुहाग उजड़ गया था एक लड़की की वजह से। बूढ़े बाप का सर शर्म से झुक गया न्यूबरी रोड पर, नानपारा हाउस के पास रहने वाला यह परिवार हर-हर तरह से टारगेट बना रहा। बूढ़े बाप ने घर के बाहर कुर्सी डाल कर बैठना छोड़ दिया। न्यूज़ पेपर्ज़ मिर्च मसाला लगा कर तरह-तरह की ख़बरें छापते।

शमीम रहमानी का केस क़ाफ़ी उलझ गया था। क़त्ल शमीम ने किया या ग़ैरतमंद भाई ने। चूँकि क़त्ल शमीम रहमानी के घर पर हुआ था। और शायद भाई को बचाने के लिए ख़ून को दूसरा रंग दिया जा रहा था, तो यह क़त्ल उसने अपने सिर ले लिया। केस की पैरवी लखनऊ के जाने माने एडवोकेट सय्यद हसनैन नक़वी कर रहे थे। बहरहाल जिस दिन पेशी होती कचहरी रोड से लेकर दूर-दूर तक लोगों की भीड़ होती। नई-नई ख़बरों और कहानियों में लोग यह भूल जाते कि कहीं कोई घर उजड़ा है और कहीं किसी शरीफ़ ख़ानदान की इज़्ज़त का जनाज़ा निकला है।

दूसरी और लम्बी काली ज़ुल्फ़ें मुसलमान लड़कियों के लिए अज़ाब बन गईं। हमारे परिवार में हमारी सारी का कज़िंज़ की पहचान इसी तरह के ख़ूबसूरत बालों से थी। अलावा सुन्दरता के। उसी ज़माने में हमारे मामा की बेटी जो न केवल सुन्दर थी बल्कि आँखें और बाल ऐसे कि लोग देखते रह जाएँ। वह किसी मामूली बीमारी के कारण बलरामपुर अस्पताल में दाख़िल थीं। हम लोग रोज़ नहीं तो दूसरे दिन उन्हें देखने जाते। एक शाम वह बहुत उदास थीं। बताने लगीं अभी थोड़ी देर पहले मेडिक़ल स्टूडेंट्स लड़के-लड़कियों की पूरी टीम यहाँ थी। जाते-जाते एक दूसरे को ठेलते, ठहाके लगाते कह रहे थे कि देखो अब कौन हम में से डॉ.गौतम होता है।

बहरहाल जिसके पति को नागन ज़ुल्फ़ों ने डसा और जिसका बेटा साँप के डसने से न रहा, वह औरत अगर मुसलमानों से घृणा करे तो सही है। मगर वह तो इतनी नरमाई से मिली कि हम लोगों की समझ में नहीं आरहा था कि उसके साथ किस तरह से हमदर्दी का इज़्हार करें। हम लोगों को जल्दी थी इसलिए कोई दूसरा फ़्लैट मिल गया (किसी हिन्दू का)।

कभी-कभी अनजाने में ही किसी को चोट पहुँच जाती है। लखनऊ के एक पॉश इलाके में यू.पी. के पठानों के इलाक़े का एक परिवार, आला अफ़सर, घर में नौकर-चाकर हिन्दू भी मुसलमान भी। तीन बेटियों के पिता। छोटी बेटी की उम्र पाँच या छह साल। घर का वातावरण भी नार्मल सारे दोस्त हिन्दू भी

मुसलमान भी। सबसे मिलना, जुलना, आना-जाना। बच्ची की माँ ने बताया उनके पति के बहुत क़रीबी दोस्त बच्चियों से बेहद प्यार करने वाले, ख़ास तौर से छोटी से। ख़ूब प्यारी-प्यारी बातें करती गले में बाहें डाले- ''अंकल आप बहुत अच्छे हैं... आप बहुत अच्छे हैं... बस एक ख़राबी है आप में?'' अंकल बेचारे हैरान ''क्या बात बिटिया, क्यूँ नाराज़ है, बहुत दिनों से चॉकलेट नहीं लाए तेरे लिए? इसी लिए तू ख़फ़ा है? यही ख़राबी है न?'' बच्ची कहती है ''बस एक ख़राबी है कि आप हिन्दू हैं।''

तीर कमान से निकल चुका था। बच्ची की माँ बता रही थी हम सन्नाटे आ गए। ज़रूर किसी नौकर या आने-जाने वाले से सुना होगा। अब लाख लीपा-पोती करें, सब बेकार।

1980 में ईद के दिन जो बहुत बड़ा फ़साद मुरादाबाद में हुआ था, वह अपने पीछे बहुत कहानियाँ छोड़ गया। वह एक कभी न भुलाई जाने वाली घटना थी। मुरादाबाद में बादल रोए या नहीं मगर उस ईद पर लखनऊ में इतनी बारिश हुई कि बस-''आज की बरखा आप मुसलमानन की ईद सत्यानास कर दिहिस?'' ये आवाज़ थी घर में काम करने वाली राधा की।

न उसे मालूम न हमें मालूम कि आज की ईद मुरादाबाद के मुसलमानों के लिए वाक़ई 'सत्यानास' साबित हुई। वह तो दूसरे दिन के अख़बारों से मालूम हुआ कि क्या ख़ाक-व-ख़ून का खेल-खेला गया मुरादाबाद में।

अपने बाप, भाई, चाचा, मामा और बड़ों की उँगलियाँ पकड़े अपनी जेबों में ईदी लिए बच्चे कि अभी नमाज़ ख़तम होगी तो वह अपनी-अपनी ईदी से अपनी पसंद की मिठाइयाँ, खिलौने, पी...पी.. करते ग़ुब्बारे ख़रीदेंगे। सफ़ेद झल-झल करते करते पाएजामें, सरो पर टोपियाँ, छोटे बच्चे छोटी-छोटी टोपियाँ पहने छोटी बहनें भी साथ, गुलाबी, नारंजी, लाल कपड़े, छोटी-छोटी उढ़नियाँ डाले, हाथों में मेंहदी रचाए, भर-भर कलाई चूड़ियाँ आँखों में नन्हें-मुन्ने ख़्वाब सजाए कि अभी घर जाएँगी। माँओं ने सेवय्याँ तैय्यार कर ली होंगी, रिश्तेदार आएँगे ढेर सारी 'ईदी' मिलेगी। रंग ही रंग होंगे। रंग तो मिले उनको एक ख़ाक-व-ख़ून में लिपटा 'मटमैला रंग' दूसरा 'लहू रंग'। सैकड़ों की तादाद में मर्द और बच्चे मार गए।

बचपन में सुनी एक कहानी याद आती है और मशहूर शाएर इक़बाल के शेर का ये बन्द- ''मेरे तूफ़ाँ यम ब यम, दरया ब दरिया, जू ब जू''

कहते हैं एक मोहल्ले में लोग आपस में ख़ूब घुल-मिल कर रहते थे। आपस में भाईचारा था, प्रेम था। शैतान ने चैलेंज किया कि कहो तो मैं जब चाहूँ इनमें फूट डाल दूँ। मर्द बुज़ुर्ग ने कहा ऐसा कैसे हो सकता है? यह आपस में बहुत मिल-जुल कर रहते हैं। शैतान ने कहा तुम देखना। उसने केवल एक उँगली शहद की दीवार पर लगा दी। शहद पर मक्खी बैठी, मक्खी पर छिपकली लपकी, छिपकली पर बिल्ली झपटी, बिल्ली पर पड़ोसी बच्चे का कुत्ता झपटा। बच्चों में आपस में लड़ाई होने लगी। बात यहाँ तक बढ़ी कि बड़े भी कूद पड़े। फिर तो एक तूफ़ान मच गया। इस आग ने गली, मोहल्ले, पड़ोस में फैल कर पूरे शहर को अपनी लपेट में ले लिया।

कुछ ऐसी कहानियाँ मुरादाबाद के फ़साद में भी सुनने में आईं। किसी कुकर्मी ने ईद के दिन ठीक नमाज़ में मस्जिद के अंदर गंदगी में लथड़े सुअर को हकाल दिया। सुअर वैसे ही मुसलमानों के लिए अपवित्र जानवर है। ऐसे मौक़े पर जब सब सजदे में हों। फिर तो जो

हुआ वह बयान से बाहर है। हमारे एक बुज़ुर्ग बड़ी मोहब्बत करने वाले मौलाना इसहाक़ सम्भल्ली एम.पी. थे (कम्युनिस्ट पार्टी के) उनकी ज़बानी जो सुना वह एक दर्द भरी दास्तान थी। उसी ज़माने में हमारे घर आकर ठहरने वाले पंडित ओ.पी. मालवीय जी थे। इलाहाद के बुद्धिजीवी वर्ग से जिनका संबंध है। वह भी इसहाक़ सम्भल्ली जैसे पढ़े-लिखे अनबाएस्ड सोच रखने वाले थे। हर किसी ने निंदा की (पंडित जी उनमें है जिनकी टकसाल में ढले हिन्दू, मुसलमान लड़के आज भारत के आला ओहदों पर हैं।) उन्होंने भी कहा कि यह कैसे हो सकता है कि लोग अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ हथियार लेकर आए हों। क्योंकि यह बात फैलाई गई थी कि मुसलमानों के पास हथियार थे। मगर इस सोच का क्या कीजिए जो फल-फूल रही है। दोनों तरफ़।

जब हम पाकिस्तानी हो गए उसके कुछ ही दिन बाद उत्तर प्रदेश उर्दू आकादमी सेक्रेट्री (जो हमारे बॉस भी थे) जनाब सबाह उद्दीन उमर साहब अपने बेटे से मिलने पकिस्तान आए। बहुत मोहब्बत से मिले। ज़िया उल हक़ का ज़माना था। इधर-उधर की बातें हो रही थीं। एक पाकिस्तानी महोदय ज़िया उल हक़ को गालियाँ दे रहे थे। सबाह उद्दीन साहब उनसे बोले- ''जनाब ज़िया उल हक़ न होते तो आज रूस आपके यहाँ बैठा होता।'' जिस खुले माहौल में वह बोलने के आदी थे वैसा ही वह बोले। फिर हमसे कहने लगे कि- ''तुम्हें मालूम है, जिस दिन जमाअत-ए-इस्लामी के तुम्हारे काज़ी हुसैन अहमद ने (अल्लाह न करे हमारे हों। यह तो कह नहीं सकते थे कि- आपके मुँह में ख़ाक) अपनी किसी तक़रीर में फ़रमाया था कि दिल्ली के लाल क़िले पर पाकिस्तानी परचम लहराएँगे उसी दिन कुछ एक्सट्रीमिस्ट हिन्दुओं ने मुसलमानों की एक पूरी बस्ती जला दी थी।'' उस ज़माने में जमाअत-ए-इसलामी बहुत उछल-कूद रही थी। (उस ज़माने में क्या हर दौर में उछलती कूदती रही है, उस समय उन्हें डिक्टेटर बुरा नहीं लगता था।)

जहाँ तक ज़िया उल हक़, जुलफ़िक़ार अली भुट्टो या उनसे भी पहले के हुक्मरानों

का सवाल है उनकी पालिसियों, उनके नज़रिये, उनकी तर्ज़-ए-हुक्मरानी से तो मतभेद रखा जा सकता है मगर यहाँ लोगों का बस चले तो उन्हें क़ब्रों से खोद निकालें।

शर्म से पानी-पानी कैसे होता है इंसान यह उस समय लगा, जब अब से काफ़ी पहले किसी इंडियन चैनल पर हम एक प्राइम मिनिस्टर जनाब वी.पी. सिन्हा का एक इन्टरव्यू देख रहे थे। वे बहुत नरमाई से ऐंकर के प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे। न मुँह से झाग निकल रहा था न बॉडी लैंगुएज में लटके-झटके (अपने एक बहुत ही आम से घर में) थे। अगला प्रश्न ''बोफ़ोर्ज़'' संबंधित था। उत्तर था-''देखिये राजीव जी अब इस संसार में नहीं रहे। अब उनके विषय में कुछ कहना मैं पाप समझता हूँ।''

अफ़सोस सद अफ़सोस। हम जिस धर्म को मानने का दावा करते हैं, उसमें तो ज़िंदा लोगों की बैक बाइटिंग को अपने मरे भाई का मास खाने समान कहा गया है। ऐसे में मरे हुओं को कोसना? जिनका मुआमला ऊपर वाले के सुपुर्द हो।

अटल बिहारी जी अम्न-व-आशती का पैग़ाम (जंग न होने देंगे) लेकर दोस्ती बस द्वारा लाहौर आते हैं। मीनार-ए-पाकिस्तान पर बहुत बड़ा जलसा होता है। जमाअत-ए-इस्लामी को यह भी नामंज़ूर। उनके जाने के बाद वे अपनी जलन मीनार-ए-पाकिस्तान को 'ग़ुसुल' दे कर निकालते हैं। कहते हैं आगरा सम्मिट के बाद जब परवेज़ मुशर्रफ दिल्ली से लौटे तो वहाँ भी कुछ उग्रवादियों ने उन स्थानों को अशनान देकर 'पवित्र' किया जहाँ-जहाँ वह गए थे। जमाअत-ए-इस्लामी की करतूतों की सज़ा बेचारे मुशर्रफ़ को मिली।

सदी अपनी दास्तानें पीछे छोड़ गई। सोलह साल बाद हम फिर टूटे दिल ग़मजदा चेहरे लिए हिन्दुस्तान आते हैं कि हमारी जवान भांजी का मियाँ हार्ट अटैक में ख़तम हुआ था। बहुत मुश्किल से दो महीने बाद वीज़ा मिला था। अपने पाकिस्तानी भाई भी-''कुछ हमें खाना है- कुछ उन्हें देना है।'' पर चलते हैं। नफ़रतें फिर अपनी चरम सीमा पर थीं। अजमल कसाब ने गोलियों की बरसात की थी। सैकड़ों बेगुनाह मारे गए (जैसा कि दोनों मुलकों में होता है) वह दृश्य आज भी ज़िंदा है, तस्वीरों में भी और 'तसव्वुर' में भी। धुँए में फड़फड़ाते कबूतर जो न हिन्दू न मुसलमान, गोल दर गोल, जो उड़ सके उड़ गए। बाकी ताज होटल के सुर्ख़ गुम्बद पर बैठे जैसे पूछ रहे हों, हमारा क़ुसूर क्या था?

सुर्ख़ शोलों ने नफ़रतों के शोलों को और हवा दी। यहाँ से जाने वाले हम सब मुजरिम, सब आतंकवादी ठहरे। दोनों तरफ़ का मीडिया गिद्ध की तरह इस इशु को 'मुदार' की तरह भँभोड़ रहा था। हमारे भी एक मशहूर ऐंकर का फ़रमाना सुनिये-''आप खेंच कर उनके मुँह पर एक थप्पड़ मरिये जो यह कहता है तुम्हारे पाकिस्तान में यह हो रहा है, वह हो रहा है। कहिए देखो तुम्हारे हिन्दुस्तान में क्या हो रहा है...।''

हम जो टुकड़ों में बँटे हैं, सहम जाते हैं। ज़रा हमारे दिलों पर हाथ रख कर लोग देखें। यह भय कि शायद हम अपने भाई-बहनों, रिश्तेदारों, अपने दोस्तों (हिन्दू मुसलमान दोनों) से न मिल सकेंगे। 1971 की तरह हमारे पत्र इंगलैंड, अमेरिका होकर पहुँचेंगे और इससे पहले ही वहाँ रह जाने वाले बूढ़े माँ-बाप दम तोड़ देंगे। फिर अपने चचेरे, फुफेरे, मामा आदि के बेटों से निकाही लड़कियाँ रास्ते खुलने की प्रतीक्षा करेंगी। फिर हम किस मुँह से उनके मुँह पर थप्पड़ मारें? ख़ुद हमारे अपने लोग धमाके कर रहे हैं। लड़कियों के स्कूल जलाए जा रहे हैं। जिस धर्म ने औरत

मर्द दोनों पर इल्म हासिल करने को 'फ़र्ज़' क़रार दिया है, उसके मानने वाले ही उसको इस हक़ से वांचित कर रहे हैं। ग़ैरत के नाम पर औरत को 'कारी' किया जा रहा है। नमाज़ियों और यहाँ तक कि जनाज़ों पर भी बम बरसाए जा रहे हैं। ऐसे मौकों पर हिन्दू न हिन्दू होता है, मुसलमान न मुसलमान। सिवाए इसके कि वह एक वहशी दरिन्दा होता है।

हमें तीन जगहों का वीज़ा मिलता है। क़ानून बना था कि साठ और साठ से ऊपर को नान रिपोर्टिंग वीज़ा मिले जिससे बार-बार इस दौड़-धूप से सीनियर सिटिज़न बच जाएगा कि सुबह बारहबंकी से लखनऊ जाना है तो आधा दिन एंट्री और डेपार्चर में गुज़ार जाता है। लेकिन जैसा कि होता है क़ानून इम्पलीमेंट करने के लिए नहीं बनाए जाते (दोनों ओर)।

बारहबंकी से लखनऊ के लिए शाम को ही हम डेपार्चर लेते हैं। दुर्भाग्य कि हम अस्पताल पहुँच जाते हैं, तबीयत इतनी ख़राब होती है। हम और हमारी छोटी बहन इसी अफ़रातफ़री में भूल गए कि एग्ज़िट ले चुके हैं। छोटी बहन लखनऊ चली जाती है अनजाने में। वहाँ जब एंट्री कराने जवाहर भवन पहुँचती है, चूँकि तीन दिन गुज़र चुके थे (यक़ीनन ग़लती हमारी ओर से हुई थी) सारे स्टाफ़ ने एक तूफ़ान खड़ा कर दिया। तेरह हज़ार इधर और तेरह उधर माँगे गए। ''इतने दिन कहाँ रही? हरजाना (बनाम रिश्वत) अदा कीजिए, वरना जेल की हवा खाइए।'' मेडीकल सर्टीफ़िकेट भी दिया, गिड़गिड़ाए भी इतने पैसे कहाँ से दें। ग़लती भी मानी मगर सब बेकार। यह भी डर कि बहन मुसीबत में न पड़ जाएँ।

अपने दोस्तों को खटखटाया। विभूति नारायण राय साहब (वाइस चांस्लर महात्मा गाँधी इन्टर नैशनल यूनीवर्सिटी, वर्धा) को फ़ोन किया। सारी राम कथा सुनाई। आन कि आन में लाइनें खड़खड़ाईं। हमारी सफ़ाई दी गई होगी (कि हम आंतकवादी नहीं हैं) हम अपनी सफ़ाई में पहले ही बहुत कुछ कह चुके थे- हम यहीं पले-बढ़े हैं, हमारी जननी है यह ज़मीन, यहाँ के लोगों से हमें प्यार है, हमारे पुरखों की हड्डियाँ है यहाँ, (हमने यह कहा नहीं, भैंस के आगे बीन नहीं बजाई) और क्या बताएँ। सारे ग़ुब्बारों की हवा निकल गई। अब स्टाफ को यह अफ़सोस कि- ''इतने ऊँचे कहाँ पहुँच गई, हियैन कह-सुन लेतीं। (मतलब साफ़ था कि हम थोड़ा बहुत कम कर देते अब उससे भी गए)

विभूति जी न केवल दोस्त हैं बल्कि उनकी इंसान दोस्ती से इनकार नहीं किया जा सकता। शायद यह बात 1994-95 की है कराची से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'तकबीर' ने उन दिनों इलाहाबाद में होने वाले फ़सादात की एक रिपोर्ट छापी, जिसमें उस समय के डी.आई.जी. विभूति नारायण राय की बेहद तारीफ़ें की थीं कि उन्होंने हालात को किस तरह कंट्रोल किया था (विभूति जी की पोस्टिंग इन दिनों इलाहाबाद में है, यह उसी पत्रिका से मालूम हुआ)।

पिछले साल मशहूर कहानीकार असग़र वजाहत कराची आए। बहुत जगहों पर उनका स्वागत हुआ। 'आज' पत्रिका के अजमल कमाल के यहाँ एक बड़ी महाफ़िल सजी। जिसमें असग़र वजाहत ने अपनी बहुत ही छोटी-छोटी दिल को छू लेने वाला कहानियाँ सुनाईं। फिर बात निकली विभूति जी की। वजाहत ने बताया उनके व्यंग्य के विषय में और यह कि वह आजकल क्या लिख रहे हैं। बताने लगे कि जब विभूति जी की पोस्टिंग बी.एस.एफ. में थी, उन दिनों हम चार-पाँच दोस्त उनके पास पहुँचे, उनके ऑफ़िस, जबकि उस समय वह बहुत व्यस्त थे। मगर उनका साहित्य-और फ़र्ज़ एक साथ चल रहा था। छह-सात फ़ोन में घिरे विभूति जी कभी एक फ़ोन उठाते कभी दूसरा। उधर से जो भी बताया जा रहा हो, नहीं मालूम मगर विभूति जी ने कहा- ''सफ़ेद पताका दिखा दो।'' और फिर हमारे साथ बैठे हुए दोस्त से मुख़ातिब हुए- ''हाँ तो आप क्या बता रहे थे प्रेमचंद के विषय में?''

पाकिस्तान में विभूति नारायण राय को न केवल इज़्ज़त मिली बल्कि प्रेम भी। फ़सादात के विषय में उनका पहला उपन्यास 'शहर में कर्फ़्यू' आज भी लोगों की ज़बान पर है। शायद ऐसे ही लोग दिलों को जोड़ सकते हैं।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2021

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

संस्मरण

रामरतन अवस्थी जी मेरे पहले साहित्यिक गुरुओं में थे

वीरेन्द्र जैन

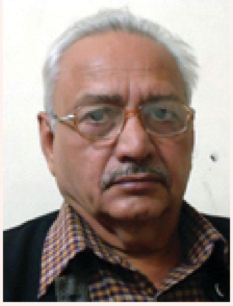

वीरेन्द्र जैन
2/1 शालीमार स्टर्लिंग रायसेन रोड,
अप्सरा टॉकीज के पास
भोपाल म.प्र. 462023
मोबाइल: 9425674629

बचपन में पिता से मिले साहित्यिक संस्कारों के बीच जब मैंने कक्षा दस में प्रवेश किया, तब शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय दतिया में मेरे कक्षा अध्यापक श्री राम रतन अवस्थी जी थे। उन दिनों मेरे स्कूल में तीन अध्यापक ऐसे थे जो साहित्य पढ़ाते ही नहीं थे अपितु साहित्यिक संभावनाओं को तलाश कर उन्हें संवारने का काम भी करते थे। इनमें श्री राधारमण वैद्य के अलावा शेष दो तो चर्चित कवि भी थे, जिनमें अवस्थी जी के अलावा दूसरे थे श्री घनश्याम कश्यप जो अध्यापकों के प्रतिनिधि के रूप में एक ग्रुप में विदेश यात्रा भी कर चुके थे।

यह 1962-63 का वर्ष था जब चीन के साथ हुए सीमा संघर्ष के कारण पूरे देश में भावनात्मक उबाल आया हुआ था और जिसकी सबसे मुखर अभिव्यक्ति हिन्दी कविता के मंचों पर हो रही थी। उन्हीं दिनों मध्य प्रदेश सरकार की ओर से भी जगह-जगह कवि सम्मेलन आयोजित करवाये जा रहे थे। दतिया में प्रतिवर्ष एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन की परम्परा थी जिसमें, नीरज, सोम ठाकुर, मुकुट बिहारी सरोज, आनन्द मिश्र, गोपाल सिंह नेपाली, भवानी प्रसाद मिश्र, काका हाथरसी, बालकवि बैरागी, रमानाथ अवस्थी, रामानन्द दोषी, तन्मय बुखारिया, देवराज दिनेश जैसे लोगों के अलावा क्षेत्रीय और स्थानीय वासुदेव गोस्वामी, चतुरेश, आदि कवियों को मैंने इसी सम्मेलन के दौरान देखा और सुना था। मैं इस बात को गर्व के साथ बताता था कि इस कवि सम्मेलन का संचालन मेरे क्लास टीचर अवस्थी जी किया करते हैं। इसी वर्ष में मैं अपनी कक्षा से कक्षा प्रतिनिधि चुना गया था, जिससे मेरा संपर्क उनसे बढ़ गया था। इसी दौरान स्कूल के वार्षिक फंक्शन के दौरान तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था जिसके निर्णायक भी श्री अवस्थी जी और वैद्यजी थे।

औसत से कुछ अधिक लम्बाई वाले अवस्थी जी तन कर और तीव्र गति से चलते थे। कवि गोष्ठियों में उनके गीतों को जिस ध्यान से सुना जाता था उससे उनके साहित्यिक क़द का अनुमान लगाना मुश्किल नहीं था। उनके गीतों में जो पूर्णता होती थी वही बात उनके पाठ में भी होती थी। यही कारण है कि मुझे आज भी उनके गीतों के मुखड़े और कुछ अंश याद हैं जैसे यह गीत-

सौ सौ दीप जलाये इस धरती के प्रांगण पर
फिर भी तम की गहराई का अंत नहीं निकला

सोचा था शायद अवनी की तपन शमन होगी

इसीलिए नीलाम्बर ने शबनम बरसाई थी

और शूल की पीर अरे शायद मिट जाएगी

इसीलिए उस पादप पर कलिका मुस्काई थी

मधुर मिलन को बाँहों की सीमा में बाँध लिया

फिर भी विरहानिल से व्याप्त दिगंत नहीं बदला

सौ सौ दीप ....

कवि सम्मेलन के अवसर पर नीरज समेत अन्य कवियों को देखने की उत्सुकता बनी रहती थी और हम किशोर किसी तरह तय समय से पूर्व पहुँच कर दूसरों को यह बताने का गौरव प्राप्त करना चाहते थे कि कौन-कौन आ चुका है या मैं किस-किस को पहचानता हूँ। उस दिन अवस्थी जी का उत्साह भी देखते बनता था। नीरज जी एक खास तरह का कालरदार कुर्ता पहनते थे, जिसके बटन गले से ठीक नीचे नहीं अपितु दाहिने तरफ होते थे। फुर्तीले अवस्थी जी भी उस दिन वैसा ही कुर्ता पहन कर आते थे।

फिर 1965-66 में उनका स्थानांतरण या प्रमोशन नौगाँव हो गया, और वे दतिया छोड़ गए। 1971 में मेरी नियुक्ति हरपालपुर में हो गई। तब तक मुझे लिखने का चस्का लग चुका था और मेरी रचनाएँ कुछ राष्ट्रीय पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। उन दिनों हिन्दी की राष्ट्रीय पत्रिकाएँ सीमित संख्या में ही प्रकाशित होती थीं, उससे उनमें प्रकाशित रचनाकारों के नाम को दूर तक पहुँचने में मदद मिलती थी, भले ही उन्हें इसका आभास ना हो। हरपालपुर में भी प्रतिवर्ष एक कवि सम्मेलन आयोजित होता था और उसमें मुझे भी आमंत्रित किया जाता था। एक वर्ष कुछ ज़्यादा ध्यान से सुन लिया गया तो मेरी ख्याति कुछ और आगे बढ़ी व बढ़ कर नौगाँव तक पहुँच गई। मुझे पता नहीं था कि वहाँ के कवि सम्मेलन का संचालन भी अवस्थी जी ही करते हैं। उनका आमंत्रण मिला और मैंने आदेश का पालन किया। अपने नगर से बाहर कविता पाठ का मेरा वह पहला कवि सम्मेलन था। पहले स्कूल में मिले पुरस्कार के बाद जिस पहले कवि सम्मेलन में मुझे कविता पाठ के लिए पारिश्रमिक मिला उसका श्रेय भी अवस्थी जी को ही जाता है। इसके बाद तो जब तक मैं हरपालपुर में रहा, मुझे छतरपुर, टीकमगढ, महोबा आदि आसपास के कवि सम्मेलनों के निमंत्रण भी मिलते रहे। इसी भरोसे मैं इस दुस्साहसी विचार तक भी पहुँचने लगा था कि अगर मंच से आय होने लगे तो मैं नौकरी न करने की अपनी दबी हुई इच्छा पूरी कर लूँ। वह तो विवेक ने समय पर साथ दिया और मैंने यह अतिवादी कदम नहीं उठाया।

प्रारम्भ में मेरी नौकरी एक छोटे बैंक में थी जिसमें अधिकारियों के स्थानांतरण अखिल भारतीय स्तर पर होते थे। इस नौकरी और मेरे कबीर स्वभाव ने मुझे बहुत भटकाया व मेरे स्थानांतरण पाँच राज्यों के पन्द्रह स्थानों में हुए। हर बार मैं अपने सभी परिचितों को पत्र लिख कर अपने ट्रांसफर और पता बदलने की सूचना देता था। सौ से अधिक की इस सूची में आदरणीय अवस्थी जी का नाम भी रहता था।

1989 से दूषित राजनीति के दुष्प्रभाव के चलते देश भर में जो विषाक्त वातावरण बनता जा रहा था उसने मुझे बहुत उद्वेलित कर दिया था। प्रतिवर्ष नववर्ष के ग्रीटिंग कार्ड के रूप में मैं कुछ काव्य पंक्तियाँ लिख कर छपवा कर सभी मित्रों, संपादकों, आदि को भेजता था, जो साम्प्रदायिक विषाक्तता के खिलाफ होती थीं। इससे जो फीडबैक मिलता था उससे मुझे पता चलता था कि दूसरे भी क्या सोच रहे हैं। मुझे खुशी होती थी जब उन पंक्तियों के लिए मुझे अवस्थी जी का आशीर्वाद मिलता रहता था। यह सिलसिला सन 2001 तक चला। उन्होंने अपनी प्रकाशित कविता पुस्तक भी मुझे भेजी। जब वे फेसबुक से जुड़े तो फेसबुक पर उनसे संवाद करने के अवसर निरंतर मिलते रहे। 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद तोड़ कर जो वातावरण बनाया गया था तब नववर्ष 1993 के अवसर पर भी मैंने कार्ड भेजा था, उसके उत्तर में 11 जनवरी 1993 का उनका जो लम्बा पत्र पन्ना से मिला था उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं-

"................... यह जानकर अभिभूत हूँ कि आप जैसे विज्ञ स्वजन, एक अंतराल के पश्चात् भी मुझे मन के किसी कोने में स्थान दिये हैं। ज़िंदा रहने के लिए इतनी खुशफहमी का टानिक पर्याप्त है। नूतन वर्ष पर अग्रज होने के नाते आपके लिए सुखद, समृद्ध, और समुन्नत भविष्य की परमप्रभु से कामना करता हूँ।

यह जानकर और खुशी हुई कि आपका साहित्यकार, गतिशील है, अन्यथा मुझ जैसे तथाकथित साहित्यसेवियों को तो हालात और सवालात के भँवर में उलझकर अपनापा भूल जाते हैं। आपकी यह पंक्तियाँ बड़ी सार्थक और जीवंत लगीं;- एक मन्दिर से बड़ा है आदमी एक मस्जिद से बड़ा है आदमी ....

बधाई हो इन पंक्तियों के लिए। आप साहित्य सेवा में इसी तरह निरत रहें- यही मेरी कामना है।

आज के हालात पर मैंने भी कुछ मुक्तक लिखे थे जिनमें से एक इस तरह है-

सोये दानव को जगाया- ये क्या किया तुमने

हँसते मानव को रुलाया- ये क्या किया तुमने

बीते कल तक तो रहे थे आदमी की तरह

भेड़िया उनको बनाया – ये क्या किया तुमने

उनका निधन कोरोना काल में पटना में हुआ। उसी दौरान अन्य चर्चित लेखकों का निधन भी हुआ। फेसबुक पर श्रद्धांजलि देने का एक दोष मुझे यह दिखायी दिया कि लेखकों के सभी मित्र, पाठक या प्रशंसक गूगल से फ़ोटो डाउनलोड करके एक जैसे जीवन परिचय दे कर अपना संबंध प्रकट करना चाहते हैं, इससे एक घटाटोप छा जाता है और संवेदनाओं की गहराई कम होती जाती है। इसलिए ऐसे अवसरों पर मैं संगठनों द्वारा व्यक्ति श्रद्धांजलि के साथ ही होता हूँ। यही कारण रहा कि मैं उन्हें विलम्ब से याद कर सका।

दिल की पूरी गहराइयों से उन्हें श्रद्धांजलि। वन्दना अवस्थी दुबे जी उनकी सभी बहनों और माँ जी को नमन।

000

रेडियो का देशी इलाज करते पिता

गोविन्द सेन

गोविन्द सेन
राधारमण कॉलोनी मनावर
धार म.प्र. पिन.454446
मोबाइल- 09893010439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

आकाशवाणी से मेरी कविताओं का प्रसारण होने वाला था। काव्यपाठ के प्रसारण की सूचना देते हुए मैंने फेसबुक पर लिखा था।

नशा नवागत का चढ़ा गए पुराना भूल
कहाँ पड़ा है रेडियो झाड़ो उसकी धूल

प्रतिक्रिया में अनेक मित्रों ने बधाइयाँ दीं। एक मित्र ने लिखा-

सबसे भला है रेडियो, बाकी सब हैं फेल
काव्यपाठ सुनने के लिए, डला लिए हैं सेल

एक कवि मित्र ने 'रेडियो की स्मृति' शीर्षक से 20-25 लाइनों की एक कविता ही लिख डाली। काव्यपाठ के प्रसारण के तुरन्त बाद एक शिक्षक मित्र ने नर्मदा किनारे बसे गाँव अछोदा से मोबाइल किया। बताया कि उन्हें और उनके गुरुजी को मेरे दोहे बहुत ही पसंद आए। उनके गुरुजी एक किताब लिख रहे हैं। वे कुछ दोहों को मेरे नामोल्लेख के साथ उदाहरण के रूप में लेना चाहते हैं। मैं उनकी इस ईमानदारी पर मुग्ध हो गया। आज के इस लम्पट युग में जब बिना कहे बिना नामोल्लेख के किसी की भी मौलिक रचना बेहिचक उड़ा लेने वाले शूरवीर मौजूद हैं, तब उनका यह अनुमति माँगना मर्म को छू गया। साथ ही यह भी पता लगा कि रेडियो आज भी दूरस्थ इलाकों में सुना जाता है। वह ज़िंदा है। उसकी साँसें बराबर चल रही हैं। इस सुखद एहसास के साथ रेडियो से जुड़ी अनेक स्मृतियों की परतें खुलने लगीं। यहाँ रेडियो से मेरा आशय बाद में जन्में एफएम और मिर्ची रेडियो से नहीं है। ये आज भी इस आदिवासी इलाके में नहीं आए हैं। इनका प्रसार इन्दौर, देवास और उसके आसपास के इलाकों तक ही सीमित है।

पिताजी को रेडियो सुनने का बहुत शौक था। उनके इस शौक का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनके अन्तिम एक-डेढ़ साल तक भी रेडियो हमेशा उनके तकिए के पास रहा, दवाइयों की शीशियों और गोलियों के पत्तों के साथ। सबने साथ छोड़ा लेकिन रेडियो ने साथ नहीं छोड़ा था। उन्होंने अपने जीवन में बीसियों रेडियो बदले होंगे। घर में हमने एक लकड़ी की बॉडी वाला रेडियो भी देखा है। इसका सामने वाला हिस्सा जालीदार था जो क्रीम कलर का था। इस जाली के पीछे अन्दर कोयल होती थी। स्पीकर को वे कोयल कहते थे। एक लकड़ी के खोखे में रेडियो की बैटरी रखी रहती थी। बैटरी में दो चिमटे लगे थे। इन चिमटों से वायर रेडियो में आते थे। इस तरह बिजली रेडियो को मिलती थी और वह चलता था। रेडियो के भीतरी रंग-बिरंगे वायरों और विभिन्न आकार-प्रकार के पुर्जों की सघन बस्ती को हम बड़ी उत्सुकता से देखते थे। यह अवसर तब मिलता था जब पिता जी रेडियो को सुधारने के लिए खोलते थे। अक्सर रेडियो में कोई न कोई समस्या बनी ही रहती थी।

रेडियो में खड़खड़ाहट, किसी स्टेशन का न लगना या ऐसी ही कोई भी ख़राबी उन्हें कतई बर्दाश्त नहीं थी। ऐसी स्थिति में वे खुद रेडियो खोलकर बैठ जाते थे। जब तक मनमाफिक सुधार

नहीं कर लेते, उन्हें चैन नहीं मिलता। भले ही गर्मी में पसीने से तर हो रहे हों या ठंड में ठिठुर रहे हों। वे भूख प्यास सब भूल जाते। चश्मा लगाकर वे पेंचकस या ऐसे ही कुछ घरेलू औज़ारों के साथ रेडियो पर जुटे रहते। रेडियो से लगातार घुचुर-घुचुर, घर्र-घर्र, खड़-खड़, खरड़-खरड जैसी आवाज़ें निकलती रहतीं। भीतर छोटी-छोटी ढिबरियाँ होती थीं। इन ढिबरियों के बीच एक कट होता थ। इन कटों में पेंचकस डालकर वे दाएँ-बाएँ घुमा-घुमाकर सेट करते रहते थे ताकि वांछित स्टेशन साफ-साफ सुना जा सके। सुधारने की इस प्रक्रिया में किसी पुर्जे को बाँधने या हिलने से रोकने या ऐसे ही कुछ कामों के लिए डोरों का उपयोग करते थे। वायरों के बीच यह डोरा- डस्सी हमें अजीब और मनोरंजक लगती। यह डोरा-डस्सी देख हमें लगता था मानों पिताजी बीमार रेडियो का देशी इलाज कर रहे हों। जैसे मरीज को डॉक्टर के पास ले जाने से पहले घरेलू उपचार करके देख रहे हों। यदि इस इलाज से ही मरीज ठीक हो जाए तो फिर फालतू पैसा क्यों बिगाड़ें ! इस चक्कर में उन्होंने कई रेडियो बिगाड़ भी दिये थे। हम मन ही मन कामना करते कि रेडियो जल्दी ठीक हो जाए ताकि पिताजी को आराम मिले और हम भी रेडियो के विभिन्न कार्यक्रमों का आनन्द उठा सकें। रेडियो अस्थायी रूप से ही सही, ठीक भी हो जाता। ये अलग बात है कि कुछ दिनों बाद रेडियो में फिर कोई ख़राबी निकल आती।

उन दिनों नन्दाजी-भेराजी घर भर का पसंदीदा कार्यक्रम होता था। यूँ उसका नाम खेती-गृहस्थी था, लेकिन हम लोगों के बीच यह नन्दाजी-भेराजी के नाम से ही प्रसिद्ध था। यह कार्यक्रम किसान भाइयों के लिए होता था और इन्दौर-भोपाल स्टेशन पर आता था। नन्दाजी- भेराजी का मालवी- निमाड़ी में बोलना बहुत अच्छा लगता था क्योंकि यही लोकभाषा हम भी बोलते और आसपास सुनते थे। उनकी बोली हमारे दिल में उतर जाती। कार्यक्रम के प्रारम्भ में एक धुन बजती थी। यह धुन बहुत प्यारी लगती थी। मानों एक बैलगाड़ी गाँव की चौपाल पर आ रही हो।

बैलों के गले में घुँघरू बज रहे हों। छुन-छुन, छन-छन, छुन-छुन। इसमें खेती-गृहस्थी की बातों के अलावा लोकरस में पगे गीत-भजन और कवि-सम्मेलन भी सुनने को मिलते। बई (माँ) को लोक कलाकारों द्वारा तन्दूरे पर गाए जाने वाले मालवी भजन अच्छे लगते। बाद में डोलार (झूले) पर झूलते हुए वे इन सुने हुए भगवान् के भजनों-गीतों को चाव से गाया करतीं। नन्दाजी या भेराजी का गाया हुआ बाराखड़ी गीत सबको अच्छा लगता। कवियों के मुख से मालवी-निमाड़ी में कविताएँ सुनकर सुखद आश्चर्य होता। वैसा ही कुछ लिखने का मन करता। शायद इन्हीं कविताओं को सुनकर मन में कविता के बीज पड़े होंगे। बाद में तो कवि के रूप में भी आकाशवाणी इन्दौर अनेक बार आना-जाना हुआ। शायद 82 में पहली बार युववाणी कार्यक्रम में कविता पढ़ने गया था। आज भी याद है कि गोल टोपी पहने हुए एक शख़्स मुझे स्टूडियो तक ले गए थे। पता नहीं वे उद्घोषक थे या कार्यक्रम अधिकारी। जब पत्र लेकर मैं उनके पास गया था तो वे कुर्सी पर बैठे बीड़ी पी रहे थे। उनका यह बीड़ी पीना मैं आज भी नहीं भूल पाया। जिस आकाशवाणी से बीड़ी-सिगरेट न पीने की हिदायतें प्रसारित होती थीं, वहीं किसी का बेधड़क बीड़ी पीना मैं हजम नहीं कर पाया था। मुझे यह बेहद असंगत लगा था। यही कारण है कि आज तक यह दृश्य स्मृति-पटल पर चिपका रह गया है।

ज़्यादतर हम इन्दौर-भोपाल ही अधिक सुनते। क्योंकि यह स्टेशन आसानी से लग जाता था और साफ-साफ चलता था। इस पर अनेक मनोरंजक और ज्ञानवर्धक कार्यक्रम आते थे। जैसे मनभावन, फरमाइशी गीत, कुछ बातें कुछ गीत, महिला सभा, श्रमिक जगत्, बाल सभा आदि। सुबह, दोपहर और शाम की तीन सभाएँ होती थीं। हर घंटे पर समाचार प्रसारित होते थे। नए फिल्मी गीतों को सुनने का मज़ा आता था बिनाका गीतमाला में। बिनाका गीतमाला हर हफ्ते सिलोन पर आता था। हमें इसकी बेसब्री से प्रतीक्षा रहती। कोई गाना पहली पायदान पर पहुँचता तो कोई नीचे उतर जाता। यह बहुत रोचक और दिलचस्प होता। अमीन सयानी की खनकती आवाज़ के नशे में हम डूब जाते। विविध भारती पर नए-पुराने गाने बजते ही रहते। इसमें हवा महल में हर रात एक झलकी आती थी। देर रात को आने वाले छायागीत के प्रेम और दर्द भरे नगमें सुनकर दिल में हूक सी उठती। उस समय तक बचपन की पगडंडी छूट चुकी थी और जवानी की सड़क पर पाँव जमे नहीं थे। ज़िंदगी का ठोस धरातल अभी शुरू नहीं हुआ था। मन त्रिशंकु बना रहता था। न इस पार न उस पार-तन्द्रा जैसा कुछ। भावों-विचारों के बवंडर उठते ही रहते थे। जैसे कोई गाना आता था-तेरी आँखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है-तो दो आँखें दिखायी देने लगतीं। उन आँखों की गहराई में मन डूबता-उतराता रहता। मन कहाँ से कहाँ चला जाता। गाने की कोई-कोई लाइन सीधे दिल में उतर जाती। ये लाइनें कई दिनों तक पीछा करती रहतीं। गाने सुनते-सुनते सो जाना अच्छा लगता। कभी-कभी नींद भी उड़ जाती। जैसे अति भोजन से अजीर्ण हो गया हो। रेडियो ने कानों को चटोरा बना दिया था। जैसे रोज़ उन्हें इस लज़ीज खाने की लत पड़ गई हो।

ठुस्या-असाधारण रेडियो-प्रेमी

ठुस्या का रेडियो-प्रेम मुझे आज भी याद है। वह किसी किसान के यहाँ वरसूद था। ढोर चराता था। सुबह ढोर ले जाते समय और गोधूली बेला में लौटते समय उसके कंधे पर रेडियो बदस्तूर टँगा बजता रहता। ढोर चरते रहते थे और वह किसी पेड़ की छाया में बैठा

रेडियो सुनता रहता। शाम को फुरसत में ठुस्या स्कूल के बरामदे में बैठ जाया करता था। उसके आसपास सुनने वालों का जमघट लग जाता था। वे उसे घेर कर बैठ जाते थे। रेडियो के कारण उसकी इज़्ज़त बढ़ गई थी। मुझे उसका नाम और व्यक्तित्व बहुत आकर्षित करता था। लगता था कि उसका असली नाम ठुस्या नहीं था। कद उसका बढ़ नहीं पाया था और बदन था उसका भरा-भरा और कसा-कसा। शायद ठिंगना और भरा बदन होने के कारण उसे ठुस्या कहा जाने लगा हो और बाद में यही नाम पड़ गया हो। वह प्राय: अपने-आप में खोया चुप रहता। उसकी आँखें चमकती रहतीं। बेहद अन्तर्मुखी था वह। शायद ठिंगने कद और ग़रीबी की वजह से उसकी शादी भी नहीं हो पाई थी। लेकिन लगता था उसे इस बात का कोई रंज नहीं था। उसने रेडियो के रूप में एक सच्चा जीवनसाथी पा लिया था। उसने अपना एक आभासी संसार रच लिया था जिसमें वह पूरी तरह डूबा हुआ और मस्त था। उसके चेहरे पर सदा एक शांति और निर्लिप्तता पसरी रहती। वह दूसरों से कम ही बोलता था। रेडियो ही उसकी आवाज़ था। जीवन रस उसे रेडियो से ही मिलता था। रेडियो उसके जीवन के एक अनिवार्य अंग की तरह था। ठुस्या और रेडियो एक-दूसरे के पूरक थे। रेडियो के बिना उसकी मुकम्मल तस्वीर नहीं बन पाती थी। मुझे अफसोस है कि मैं ठुस्या के बारे में कितना कम जानता हूँ। पता नहीं आज वह कहाँ होगा! होगा भी या नहीं। भला एक ढोर चराने वाले मामूली ग्वाले को कौन याद रखेगा! लेकिन मुझे आज भी उस असाधारण रेडियो-प्रेमी ठुस्या की शिद्दत से याद आती है।

रेडियो की सार-सँभाल करने वाले काकाजी

रेडियो की सार-सँभाल करने में हमारे काका जी का कोई सानी नहीं था। जितने साफ-सुथरे वे रहते थे, उससे अधिक रेडियो को रखते थे। नियत समय पर अलमारी का ताला खोलकर रेडियो निकाला जाता। बहुत एहतियात से उसे पोंछा जाता। अच्छा-खासा समय रेडियो को पोंछने में ही खर्च किया

जाता। फिर उसे नियत स्थान पर हिफाज़त से सिलाई मशीन के टॉप पर रखकर चालू किया जाता। इसी रख-रखाव के कारण रेडियो एकदम चमचमाता और नए जैसा लगता। रेडियो का कव्हर भी रेगजीन का नहीं, रेडीमेड होता। काका जी टेलरिंग करते थे। फालतू बचे हुए कपड़ों को जोड़कर रेडियो का कवर वे खुद अपने हाथ से बनाते थे। कपड़े का बना कवर भी अनगढ़ कतई नहीं बल्कि बहुत कलात्मक होता। उसमें खोलने-बंद करने की करीने से बनी बद्दियाँ, बटन वगैरह होते। जब कभी सेल डालने या ऐसे ही किसी काम के लिए कवर खोला जाता तो हम रेडियो का पूरा बदन देख पाते। मन करता इस कोरे बदन को छू लें। लेकिन हमें छूने की इजाज़त नहीं थी। हमें रेडियो से एक निश्चित दूरी पर बैठने का सख्त आदेश था। उनका वह रेडियो सुनने की ही नहीं, हमारे लिए देखने की चीज़ भी हुआ करता था। सुनने के बाद रेडियो उसी अलमारी में रखकर ताला लगा दिया जाता।

आज मनोरंजन, ज्ञान और संवाद के कई बेहतर दृश्य-श्रव्य साधन मौजूद हैं। टीवी है, नेट है। डीजे की गगनभेदी आवाज़ है। लेकिन रेडियो की उस आवाज़ को भुला पाना मुश्किल है। वह दिल में बसा हुआ है। रेडियो यादों के सहारे भूले-बिसरे नगमों की तरह कई उपेक्षित और भूले हुए पात्र स्मृति में जीवित हो उठते हैं। इसकी आवाज़ की चाबी से हमारी स्मृति के ताले खुलते रहेंगे।

000

समाचार

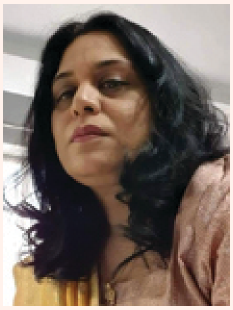

विष्णु प्रभाकर राष्ट्रीय प्रोत्साहन सम्मान, 2021

प्रख्यात साहित्यकार विष्णु प्रभाकर की 110 वीं जयंती पर उनकी स्मृति में युवाओं को प्रोत्साहित करने के लिए शुरू की गई सम्मान योजना के तहत इस बार लंदन में रहने वाली शिखा वार्ष्णेय को पत्रकारिता और साहित्य के लिए विष्णु प्रभाकर राष्ट्रीय प्रोत्साहन सम्मान 2021 देने का निर्णय किया गया है। पहली बार यह सम्मान किसी प्रवासी युवा भारतीय को दिया जाएगा। यह सम्मान विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान और गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा की सन्निधि संगोष्ठी की ओर से दिया जाएगा। इस सम्मान से पिछले दस सालों में चालीस से अधिक युवा सम्मानित किए जा चुके हैं।

यह जानकारी देते हुए विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान के मंत्री अतुल प्रभाकर ने बताया कि यह सम्मान जैसे ही सबकुछ सामान्य होगा तो दिल्ली में एक समारोह में सभी को सम्मानित किया जाएगा।

अतुल कुमार के मुताबिक उत्तर प्रदेश के अभिषेक अवस्थी को साहित्य के लिए, छत्तीसगढ़ की डॉ. मनीषा पांडेय को समाज सेवा के लिए, दिल्ली के आकाश द्विवेदी कला के लिए और शिक्षा के लिए आलोक सिंह को विष्णु प्रभाकर राष्ट्रीय प्रोत्साहन सम्मान से सम्मानित किया जाएगा। इन सभी को भी दिल्ली में होने वाले समारोह में सम्मानित किया जाएगा।

000

जन्माष्टमी

शोभा रस्तोगी

ब से बचपन... नटखट

बचपन की फुहारें वृद्ध होने तक भी भिगोती हैं। फुहारें -नटखट शैतानियों की, चिरौरियों की, मासूम शरारतों की, आपसी नोंक झोंक की। बचपन शब्द ही अपने आप में कितना भीगा हुआ शब्द है जो खुद तो गीला है ही दूसरों को भी नहला देता है।

बचपन की सुहानी यादें थपकी देतीं हैं तो जगजीत जी की गज़ल गुनगुना उठती है –

'ये दौलत भी ले लो, ये शौहरत भी ले लो
भले छीन लो मुझसे मेरी जवानी
मगर मुझको लौटा दो, बचपन का सावन
वो कागज़ की कश्ती, वो बारिश का पानी।'

अपार नन्हीं खुशियों का ढेर, छोटी-छोटी चाहतों के पूरा होने पर समन्दर जितनी उछालें, नीलगगन में दूर पतंग को उड़ाने पर आसमान को मुट्ठी में भरने की किलकारी, तमाम ऐसी हसरतें जो दो चार पैसे में ही सारा जहाँ हमारा होने का हौसला रखती हैं – बचपन में ही परवान चढ़ती हैं।

'भोला भाला प्यारा बचपन
नटखट चटपट सा था बचपन
खाना, पीना, घूमना निर्द्वंद्व
खेलना, झूलना, हँसना हर दम
अहा! रीत गया वो निर्झर झर झर
कहाँ गया वो बचपन चकमक।'

ऐसे ही रुनझुन करते, मनते रूठते बचपन से याद आती है श्री कृष्ण जन्माष्टमी की।

''नन्द के आनन्द भयो, जै कन्हैया लाल की
घोड़े दीन्हे हाथी दीन्हे और दीन्ही पालकी।''

हम बच्चे जन्माष्टमी पर अपने अपने घर में झाँकी सजाते थे। उत्तर प्रदेश के ब्रज क्षेत्र के कोर कहलाने वाले अलीगढ़ जिसे कुछ लोग हरिगढ़ भी कहते थे, में मेरा बचपन अपनी तमाम उछल कूद, बालपन की शरारतों के बीच सिरजा था। एक बहुत बड़े मंदिर के पास हमारा घर था। मंदिर के प्राय: प्रत्येक उत्सव में हमारा शामिल होना, उछल कूद करना तय था। मंदिर था- बद्रीनाथ भगवान् का जिसमें सारे त्योहारों की भाव भंगिमा मनोहर थी। राम नवमी हो या शिव रात्रि, अक्षय तृतीया हो या दीपावली, नव दुर्गे हों या होली, दशहरा हो या कोई और उत्सव- हम बच्चों के

शोभा रस्तोगी
सी-158, सिद्धार्थ कुंज एपार्टमेंट
प्लॉट नंबर 17, सेक्टर 7, द्वारका
नई दिल्ली 110075
मोबाइल- 9650267277
ईमेल- shobharastogishobha@gmail.com

हुडदंग के बिना कोई भी त्योहार मुस्कुराता नहीं था। मंदिर में प्रतिदिन भजन कीर्तन तो चलता ही रहता था। संध्या आरती के समय रोज़ ही हम बच्चों में घंटा बजाने हेतु नोंक-झोंक होती थी। सागर सी हिलोरें लेता हुआ बचपन था हम सब का। एक लहर आई तो इधर दूसरी आई तो उधर। होनी दोनों तरफ शरारतें ही थी, जिनमें स्वाद था चटखार उठाती इमली का, चटपटे गोलगप्पों का, अलीगढ़ की खस्ता कचौड़ियों का, शुद्ध देशी घी की लाजवाब मिठाइयों का। बालपन की दोस्ती भी इन सभी खटमिट्ठी चटकारों के स्वाद से भरी थी। हम सब यानी नन्हें शैतान -- गुड़िया, टीटू, अतुल, साधना, सविता, पप्पन, मीरा, केला -जिसका नाम कैलाश था -उसे केला ही कहते थे।

हम सबकी मंडली स्कूल से आने के बाद से रात गए तक धमाल मचाए रहती। मंदिर प्रांगण खूब बड़ा था और वहाँ खेलने पर कोई मनाही न थी। मंदिर की चारों दिशाओं में चार जीने यानि सीढ़ियाँ थीं। हम एक से चढ़ते दूसरे से उतरते। छुपम छुपाई खेलने पर सबको तलाश पाना काफी मशक्कत भरा काम होता। भरी गर्मी हो सर्दी हो या हो बरसात, हमारी मंडली के खेलकूद नहीं रुकते थे।

पहले घरों में बच्चों के खेलकूद पर इतनी टोका टाकी और रोक न थी। अड़ोस-पड़ोस पर भरोसा था, आज की तरह नहीं। आजकल बच्चे पड़ोसी को पहचानते तक नहीं। आज बच्चों की सुरक्षा खतरे में हैं। उनका बचपन समय से पहले बीत जाता है। हाथों में स्मार्ट फ़ोन, टी वी आदि में ही बिचारे ठगे से रह जाते हैं। उनकी कल्पना को वो लोक नहीं मिलता जो उनके लिए अत्यंत ज़रूरी है।

आसपास के घरों में प्रसिद्ध थी हमारी मंडली। कभी कभार थोड़ी दूर के बच्चे भी आ जाया करते हमारे साथ खेलने। पूरी दोपहर नीचे तल पर प्रांगण में हमारा ही शोर होता। जब घरों में मम्मियों की दोपहर सुस्ता रही होती, हम बेआवाज़ खिसक लेते और बस मंदिर के खुले आँगन में हमारी अपनी ही सरकार होती। हम सब एक दिन भी एक दूसरे से न मिले ऐसा दिन तो कोई उगा ही नहीं था।

ब्रज क्षेत्र में त्योहारों पर रंग बिखरे होते। कमोबेश हर तीज त्यौहार हमारी खिलखिलाहटों से गुलज़ार रहता। फिर चाहे वह दिवाली, होली हो या राखी, तीज। ऐसा ही एक त्यौहार हम पूरी श्रद्धा और जोश से मनाते और वह था श्री कृष्ण जन्माष्टमी। कुछ दिन पहले से ही उसकी तैयारियाँ शुरू हो जातीं। आस पास के बाज़ार में मिलने वाले छोटे छोटे खिलौने हम सब दस बीस पैसों में खूब खरीदते। तब पॉकिट मनी यही मिला करता था। दस, बीस पैसे, चवन्नी या कभी कभार अठन्नी। रुपया तो कोई घर आने वाला मेहमान दे जाता तो बहुत समझो। पहले घरों में रिश्ते-नातेदार आते रहते थे और बच्चों को छोटे उपहार मिल जाया करते थे। वे उनमें ही खुशियों का संसार ढूँढ़ मारते। आजकल की तरह सूखा नहीं पड़ता था। आजकल जबकि उससे ज़्यादा मिलता है, ऑनलाइन उपहार भेज दिया जाता है या पैसे पे टी एम कर दिए जाते हैं। किन्तु जो खुश्बू अठन्नी या एक रुपये के नोट मिलने पर आती थी, अब वह सुगंध कहाँ? उस पैसे को खर्च करने की बड़ी बेसब्री रहती थी। डर भी लगता था कि कहीं मम्मी न ले लें। सो अपना पैसा अलग रख देते छुपाकर। गुल्लक में डालने से तो नहीं हाथ आते। बस इसी तरह छोटे खर्च का व्यापार चलता और खुशियों की आमद होती।

जन्माष्टमी वाले दिन अल्लसुबह से ही हम सब अपने अपने घरों में झाँकी सजाने में जुट जाते। बड़े-बड़े सन्दूकों में से मम्मी की पुरानी साड़ियाँ निकाली जातीं। जिन साड़ियों पर पूरे जाल की कढ़ाई होती, जिन पर भरे-भरे छापे होते, वे साड़ियाँ हमारी लिस्ट में शामिल होतीं। पहले तो अधिकतर साड़ियाँ ऐसी ही होती थीं। चमचम चमकती सलमा सितारों जड़ी, बनारसी, हाथ की कढाई की, गोटा पट्टी के वर्क वाली साड़ियों को तरजीह दी जाती। उन दिनों की साड़ियों पर चाँदी के धागे से कढ़ाई हुआ करती थी। जब साड़ियाँ पुरानी हो जातीं या पहनने लायक न रहतीं तो उनकी कढ़ाई वाले हिस्सों को साड़ी से अलग कर जला दिया जाता जिससे चाँदी के तार मिल जाते और उन्हें बेचकर कुछ पैसे हाथ लग जाते। मेरी मम्मी के पास दो-चार ऐसी साड़ियाँ थीं जिन्हें बार-बार पहनकर वो पूरी उम्र शादियाँ अटेंड करती रहीं। आजकल तो एक साड़ी या ड्रेस एक फंक्शन में पहन लो तो दुबारा उसे नहीं पहना जाता। फैशन भई फैशन! पहले के लोग बहुत मितव्ययी होते थे। मोटा खाना मोटा पहनना। जितनी वेस्टेज आज के ज़माने में होती है बस पूछो मत। रोज़ नित नए कपड़े। घर बैठे कभी फ्लिपकार्ट, अमेजन, मिंत्रा और न जाने कौन-कौन से बाज़ार दस इंच के फ़ोन में खुले पड़े हैं। एक क्लिक करते ही तुम्हारे घर।

हाँ, तो बात हो रही थी जन्माष्टमी की। सुबह से ही मम्मियाँ व्रत की मेवा पाग, सिंघाड़े का हलवा, कुटू की पकौड़ियाँ, फल चाट, मेवा खीर, धनिया पंजीरी और न जाने क्या क्या बनाने में पूरे दिन लगी रहती थीं। उन दिनों हर घर में कमोबेश पाँच या छह भाई बहन तो होते ही थे। सो सारे छोटे बड़े लग जाते अपने घर के कन्हैया को दुलारने। दो तीन बड़े छोटे सन्दूक ऐसे सेट करते कि सीढ़ियाँ सी बन जातीं। करीबन चार, पाँच फीट की जगह लेकर उसे दोनों साइड से रंग बिरंगी साड़ियों से आच्छादित कर देते। ऊपर साड़ी की छत, दोनों तरफ साड़ियों के गिरते खुले परदे। तीन तरफ़ से साड़ियों से ढके वो पाँच फिट की जगह जहाँ अभी बहुत कारस्तानी होनी होती। साड़ियों को ठीक करने के बाद संदूकों से बनी सीढ़ियों पर चादरें बिछाई जातीं। मम्मी के हाथ से कढ़ाई की हुई चादरें। पूरी जगह पर चादर बिछाकर सजावट का काम शुरू हो जाता। घर में इस्तेमाल होने वाले स्टूल, बक्से, पट्टे सभी की आज बहुत पूछ होती। कम से कम चार या तीन सीढ़ियाँ तो बनती ही थीं। और पास में भी कुछ ऐसे सेटिंग की जाती कि कुछ ऊँचा सजा दिया जाए। सबसे ऊपर बीचोंबीच ठाठ से सजता नटखट कान्हा का हिंडोला। जिसे पालना या झूला भी कहते हैं। उधर सभी इसे हिंडोला ही कहते। एक गीत भी गाया जाता है-

"हिंडोला कुञ्ज वन डालो रे
झूलन आईं राधिका प्यारी रे।"

हिंडोले के ठीक दाहिने तरफ महादेव का

कैलाश पर्वत बसाया जाता, जिसमें घर की सारी रुई काम आ जाती। जब रुई कम पड़ती तो तकिए को खोलकर उसमें से रुई निकाल लेते। रुई को ऐसे सेट किया जाता कि वहाँ सफेद रंग ही दिखे। उसके ऐन मध्य में शंकर भगवान् की चवन्नी में खरीदी मिट्टी की मूर्ति रख देते और उसके ऊपर रबड़ का साँप उनके गले से लिपटा देते ताकि वो असली का प्रभाव दे। बीच में सफेद पाइप का बहुत छोटा टुकड़ा लगा देते कि लगे गंगा का पानी आ रहा है। रेडिओ पर कृष्ण भजन धूम मचा रहे होते।

कृष्ण के हिंडोले को रंगीन अबरी से लेई की सहायता से खूब सजाते। उन दिनों फेविकोल या ग्लू नहीं होता था। आटे को पकाकर लेई बनाई जाती। नाना तरह के डिज़ाइन पतंगी काग़ज़ के बनाते और झूला मुस्कुरा उठता। घर के लड्डू गोपाल को उसमें बिठाकर उन्हें झूला झुलाने के लिए एक सुंदर सा रिबन बाँध देते या सुंदर सी राखियों से बनाई डोरी जो रक्षाबंधन उपरांत सँभाल कर रख दी जातीं।

बाकि सीढ़ियों पर घर में रखे दूसरे बड़े खिलौने, दूसरे भगवान् की तस्वीरें, प्लास्टिक के फूलों के गुलदान रखे जाते जिन्हें माँ, बड़ी बहन बनाया करतीं। प्लास्टिक के रंगीन तार तथा फूलों से बने गुलदस्ते जिनमें रंग बिरंगे मोती पिरोए जाते। फ़्यूज बल्ब और स्टोव में इस्तेमाल आने वाली पीतल की कटोरी भी स्टेंड का काम करती। ऐसे फूलदान अपने सुंदर पुष्पों के साथ हँसी ठठ्ठा करते। उन दिनों स्टोव पर भी खूब खाना बना करता। राशन दुकान से केरोसिन मिलता जो स्टोव का ईंधन होता। फिर बारी आती सीढ़ियों के नीचे के मैदान की। बीचोंबीच एक चौराहा बनाया जाता उसकी चार दिशा निकाली जाती और उन पर स्कूटर, साईकिल बस, कार के छोटे खिलौने दौड़ पड़ते। चौराहे पर तिरंगा ट्रैफिक लाईट खड़ी कर दी जाती। इन चौराहों, और चारों सड़कों को बनाने के लिए आस पास की सड़क पर पड़े बिल्डिंग मैटिरियल में से थैली भर बजरी, रोड़ी, लाल ईंट का टुकड़ा ले आते जिसे पीस कर लाल सड़क तैयार होती। नस नस में शरारत भरे बच्चे कब इतनी मेहनत कर लेते, भान ही न होता। अपने आस-पास के वतावरण को झाँकी में ला खड़ा करते।

घर के आलों में रखे सजावटी सामान जैसे पशु- पक्षी, कबूतर के जोड़े, तोते, बिल्ली, खरगोश, हाथी आदि भी आज झाँकी में मस्त रहते। घर में कोई भी खिलौना चाहे नया हो या पुराना आज शान से यहाँ बैठा अपना रौब झाड़ता। चार हिस्सों में से एक भाग में युद्ध का मैदान बनता जिस पर लकड़ी का बुरादा बिछा कर अलग लुक दिया जाता। उस बुरादे पर प्लास्टिक के छोटे सैनिक खड़े कर दिए जाते जो अपने हाथों में बंदूक सँभाले होते। अब बारी आती उसकी जिसके लिए सारी कवायद हो रही होती। नन्हें गोपाल को सिर पर रख मथुरा से उफनती यमुना के बीच से होकर गोकुल ले जाते वसुदेव। उनके लिए यमुना भी बनानी होती और उसमें आ रही बाढ़ भी। सो एक परात में पानी भरा जाता और उसमें कपड़े धोने का डिटर्जेंट पाउडर मिलाकर उसे हाथ से हिलाकर उसमें खूब झाग बनाए जाते। वे यमुना के उठते फेनिल बन जाते। परात के ठीक बीच में एक चपटे तले की मध्यम आकार की कटोरी को उल्टा कर रख दिया जाता जिस पर वसुदेव की बीस पैसे में खरीदी मिट्टी की मूर्ति विराजती। जब झाग थोड़ी देर में बैठने लगते तो हलके से हाथ हिलाकर उन्हें फिर से उठाया जाता।

इन सबमें यदि फूल पत्ते नहीं हों तो क्या मज़ा! सो अशोक के पत्ते तोड़ कर लाते जिसकी बन्दनवार बनती। खूब सारे गेंदे के फूलों से लड़ियाँ बनाई जातीं। इन सब कामों में माँ पापा भी हाथ बँटाते। पापा बेसिक कामों में हमारी मदद करते जैसे छत बनाना। साड़ियों को तरतीब से फैलाना, लाइट्स लगाना आदि।

दिवाली की रंगीन लाइट्स से पूरी झाँकी में चकाचौंध हो रहती। इस पूरी प्रक्रिया में हम बच्चे फलाहारी पकवान खाते रहते। भगवान् का बड्डे जो ठहरा। बीच-बीच में चुपके से एक दूसरे के घर में झाँकने जाते कि उन्होंने नया क्या सजाया है। कोई भी अपना काम पहले से दिखाना न चाहता था। किन्तु देखने से मना भी न करता। 'ये नकल कर लेंगे', यह सोचकर मसोस कर रह जाता। रेडियो पर कान्हा जन्म के भजन अपना अलहदा रंग बिखेर रहे होते। सब अड़ोसी पड़ोसी आते, झाँकी की तारीफ करते और हम ख़ुशी से प्रशंसा पाकर दोहरे हुए जाते। हमारी झाँकी में आए लोग पैसे चढ़ाते, हम खुश हो जाते।

झाँकी पूरी लगने के बाद हम मंदिर में चले जाते जहाँ कीर्तन हो रहा होता। वहाँ हम बच्चों की टोली ढोलक, मंजीरे, खड़ताल, चिमटा आदि सँभाल लेते। हम सभी को बहुत से भजन याद रहते। सब एक-एक भजन तो गाते ही थे। फिर कीर्तन होता। हरे कृष्ण हरे राम। राधे राधे। हरी बोल पर तो अद्‌भुत नृत्य होता। सारे बच्चे खड़े होकर झूम-झूम कर नाचते। बाकि के बड़े लोग भी साथ ही होते।

पूरे दिन जिसका नाम सुमिरते आधी रात उसके जन्म की घोषणा पंडित जी शंख ध्वनि से करते। रात 12 बजे कन्हैया को पंचामृत से स्नान कराया जाता। आरती होती और भोग लगता। और इस तरह सजती हमारे बचपन में जन्माष्टमी की झाँकी जो अब के बच्चों की सोच में भी नहीं है। उसका अतुलनीय आनन्द उनकी किस्मत में कहाँ? वह महा आनन्द तो अनिर्वचनीय है।

इस आनन्द में सिर्फ मौज ही मौज होती किनारों का कोई अस्तित्व नहीं। गहरे खूब गहरे उतरते बचपन के सिन्धु में और हाथ आते मोती, भर भर झोली। मोती ऊर्जा के, खुशियों के, उल्लास से चमकते मुखों के, आनन्द के।

अब बच्चों के बचपन में परिवर्तन आ गया है। आज के भयावह समय ने उनसे छीन लिया है उनका मौलिक अधिकार खेलना। बाहर खेलना। बच्चों की टोली में खेलना। मिलजुल कर खेलना, हँसना-खिलखिलाना, एक दूजे संग छोटी-छोटी खुशियों को जीना, नन्हीं चाहतों को बड़ी जीत में तब्दील करना।

जब वे खेल ही नहीं पाते तो कैसे सजाएँगे जन्माष्टमी की झाँकी जो हमारे बचपन का एक ज़रूरी और खुशनुमा दस्तावेज़ था। बचपन जिसे फिर से जीने की सभी की हसरत रहती है।

बिना समझ के भी हम कितने सच्चे थे।
वो भी क्या दिन थे, जब हम बच्चे थे।

000

पहली कहानी

आख़िरी ख़त

अदिति सिंह भदौरिया

अदिति सिंह भदौरिया
साहिल सिद्धिविनायक टावर, फ़्लैट नम्बर 404 ब्लॉक A, बांगोळी स्क्वायर, मयंक व्यू वॉटर पार्क के करीब, बिचौली मरदाना, इंदौर, मध्य प्रदेश -452016
मोबाइल- 8959361111
ईमेल- aditisingh9977@gmail.com

आज विनोद बाबू बहुत उदास हैं। अपनी पत्नी संध्या की तेरहवीं को अभी-अभी पूर्ण करके अपने कमरे में आँखें मूँद कर कुछ देर बैठना चाहते हैं, पर जैसे ही आँखें बंद कीं, उनकी आँखों के आगे अपनी बेटी दिव्या का चेहरा आ गया। आज विनोद जी को अपने अकेलेपन से ज़्यादा अपनी बेटी के अकेलेपन की चिंता हो रही है। वह उठे और दिव्या के कमरे में गए, वहाँ जाकर उन्होंने दिव्या को अपने बिस्तर में उदास लेटे देखा और उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरते हुए कहा, "मैं जानता हूँ कि तुम आज क्या महसूस कर रही हो! यह मेरे लिये कह पाना बहुत मुश्किल है, पर बेटा तुम मेरे लिये बहुत अनमोल हो। आज तक तुम्हारे साथ जो भी नाइंसाफी हुई है, मैं भी उसके लिए ज़िम्मेदार हूँ। तुम्हारी माँ ने तुम में और तुम्हारे भाइयों में जो दूरी रखी है, एक तरह से भेदभाव किया है, अब मैं उसका प्रायश्चित करूँगा और तुम्हें किसी भी तरह की तकलीफ नहीं होने दूँगा।"

इतना कहकर विनोद बाबू अपने कमरे में लौट आए और आते ही अपनी पत्नी की तस्वीर के सामने खड़े होकर कहने लगे, "क्यों किया तुमने ऐसा, आख़िर क्या कमी थी मेरे प्यार में.....!"

वह अपनी आँखों को बंद करके बीते समय में पहुँच गए, जब वह पहली बार अपने माता-पिता के साथ संध्या को देखने गए थे। संध्या की सादगी ने विनोद बाबू और उनके परिवार का मन मोह लिया और शादी पक्की हो गई। संध्या के रूप में एक सुशील बहू पाकर विनोद बाबू और उनका परिवार में खुशियाँ छा गई थीं। विनोद बाबू अपने माता-पिता की एक ही संतान थे। लेकिन संध्या के आने के बाद उनके घर में बेटी का भी आगमन हुआ। दोनों ने मिलकर एक सुखी परिवार बनाया। इन खुशियों को चार चाँद लगे, जब घर में विनोद बाबू और संध्या के पहले बेटे का जन्म हुआ, और नाम रखा गया, मुकेश। परिवार बढ़ रहा था। मुकेश के आने के बाद छोटे बेटे रतन का जन्म हुआ।

समय अपनी गति से चल रहा था। जीवन परिवर्तन शील है। कभी -कभी बड़ी तेज़ी से करवट बदलता है। विनोद बाबू के पिता जी का अचानक देहांत हो गया। पारिवारिक डॉक्टर ने बताया शायद हार्ट फेल हो गया। विनोद बाबू के माता जी का अपने पति से बहुत लगाव था। वह यह सदमा सह नहीं पाईं। उदास रहने लगी थीं और खाना-पीना कम कर दिया। विनोद बाबू और संध्या ने उन्हें इस दु:ख से उभारने की बहुत कोशिश की। पर उनकी सेहत गिरती ही गई। जब जीने की इच्छा समाप्त हो जाए, तो डॉक्टर भी कुछ नहीं कर सकता। विनोद बाबू के माता जी अपने पति के बिना जीना ही नहीं चाहती थीं। पति की मृत्यु के तीन महीने बाद ही विनोद बाबू की माता जी ने प्राण त्याग दिए।

परिवार मुश्किल समय से गुज़र रहा था और इस मुश्किल समय में संध्या के तीसरी बार माँ

बनने की खबर ने हल्की सी ख़ुशी दी। पर संध्या का स्वास्थ्य ख़राब हो रहा था। इसलिए संध्या अपनी माँ के पास चली गई। कुछ महीनों के बाद विनोद बाबू को बेटी के होने का समाचार मिला। वह खुशी-खुशी अपनी बेटी को देखने जब पहुँचे, तो देखा की संध्या बहुत नाराज़ थी। जब विनोद बाबू ने कारण पूछा तो संध्या ने कहा, "मैं बेटी की माँ नहीं बनना चाहती थी; कितनी मुसीबत की बात है।" संध्या की बात सुनकर विनोद बाबू हैरान तो बहुत हुए पर उनको लगा कि शायद संध्या थकी हुई हो। संध्या ने उन्हें बच्चों से भी नहीं मिलने दिया। वे बच्चों से मिले बिना ही लौट आए।

जब कुछ महीनों बाद भी न तो संध्या घर वापिस आई और न ही विनोद बाबू को मिलने आने दिया तो विनोद बाबू परेशान हो गए। उन्होंने कारण जानना चाहा और एक दिन संध्या की माँ के घर पहुँच गए। संध्या के स्वभाव में आए परिवर्तन को विनोद बाबू समझ ही नहीं पा रहे थे।

संध्या से कारण पूछा तो उसने कहा, 'मैंने आगे की पढ़ाई शुरू कर दी है, आप तो मुझे बच्चे पैदा करने की मशीन बना रहे हैं और हाँ अब मैं सिर्फ बच्चों को ही नहीं पालूँगी, अपने लिए भी कुछ करूँगी।'

विनोद बाबू ने संध्या को समझाना चाहा - 'संध्या, तुम घर तो चलो, हम घर के कामों के लिए सहायक रख लेंगे। तुम जो करना चाहती हो करना।'

संध्या ने विनोद बाबू की बात को अनसुना करके भाव रहित चेहरे से कहा-'लड़कों को हॉस्टल में भेज दीजिये, मैं बेटी संग अपनी माँ के साथ रहूँगी।'

यह सुन विनोद बाबू का गला भर गया- 'तलाक चाहती हो।' रुआँसे होकर उन्होंने पूछा।

'नहीं अलगाव... ' कह कर संध्या ने घर का दरवाज़ा बंद कर लिया।

भारी मन से विनोद बाबू अपने घर लौट आए। माँ-बाप के देहांत के बाद वे पहले ही बहुत टूट चुके थे, और अब पत्नी से अलगाव। वह इस मानसिक स्थिति में नहीं थे कि, लड़कों की देखरेख स्वयं कर सकें। अत: लड़कों को हॉस्टल में डाल दिया गया।

कुछ ही समय में हँसते-खेलते परिवार को नज़र लग गई। सब कुछ बिखर गया। संध्या अपनी बेटी के साथ माँ के घर में रहने लगी। पहले अपने बेटों को वह मिलने जाती थी पर नौकरी लगने के बाद अब समय नहीं निकाल पाती। विनोद बाबू ने भी अब उसे समझाना छोड़ दिया। उन्होंने बेटों और काम में स्वयं को व्यस्त कर लिया। काम में बढ़ती ज़िम्मेदारियों के कारण अपनी बेटी से भी अधिक मिल नहीं पाते थे। दरअसल संध्या को देखते उनका मन दुखी होता। संध्या दिन-ब-दिन बदलती जा रही थी।

लम्बा समय बीत गया। विनोद बाबू ने अकेलेपन से दोस्ती कर ली थी। दोनों बेटे पढ़ - लिख गए और उनकी अच्छी जगह नौकरियाँ लग गईं।

एक ख़ूबसूरत सुबह दोनों बेटों ने अपनी पसंद की लड़कियों से शादी करने का प्रस्ताव जब विनोद बाबू के सामने रखा तो वे बेहद खुश हुए, पर साथ ही उनके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ भी उभर आईं। अगर शादी में संध्या और दिव्या शामिल नहीं हुईं तो?

दोनों बेटों की शादियाँ बहुत सादा तरीके से सम्पन्न हुईं। बेटे धूम-धाम की शादियाँ नहीं चाहते थे। संध्या और दिव्या आईं ज़रूर पर बड़ी आत्मसंयमी-सी दूर-दूर रहीं। दिव्या माँ के साथ ही अधिकतर रही। पिता और भाइयों से उसने कम ही बात की।

विनोद बाबू जब भी संध्या और दिव्या की समीपता देखते, तो उन्हें बहुत दुविधा होती, असमंजस हो जाते। संध्या के शब्द उनके कानों में गूँज जाते- "मैं बेटी की माँ नहीं बनना चाहती थी; कितनी मुसीबत की बात है।" वे सोचने लगते, अगर संध्या को बेटी नहीं चाहिए थी, तो वह दिव्या को पलकों पर बैठा कर कैसे रख सकती है? उसे बेटों से भी अधिक प्यार करती है। दिव्या के प्रति उसका प्यार उसके तन -बदन में झलकता है। सारी उम्र दिव्या को भाइयों और पिता से दूर रखने का कारण भी वे समझ नहीं पाए!

समय के गर्भ में क्या छुपा होता है, किसी को कुछ मालूम नहीं...अचानक ख़बर आई, संध्या को कैंसर हो गया है और लास्ट स्टेज है, अस्पताल में है। सब अस्पताल पहुँचे। संध्या के हाथ में दिव्या का हाथ था और दोनों के चेहरे पर डर था। विनोद को देखते ही संध्या के चेहरे पर डर की जगह शांति आ गई।

उसने बड़े यत्न से अपने सिरहाने के नीचे पड़ा एक लिफ़ाफ़ा निकाला और विनोद के हाथ में देते हुए कहा, 'मेरे जाने के बाद पढ़ना।' कह कर संध्या ने आँखें मूँद लीं।

दिव्या अपने में खो गई, माँ का यूँ चले जाना उसके लिए बड़ा आघात था। वह किसी से बात नहीं करती। बस संध्या की तस्वीर के पास खामोश बैठी रहती है। माँ-बेटी सहेलियों की तरह रहती थीं। विनोद बाबू को उनका संबंध खटकता भी था, जो प्यार संध्या अपनी बेटी को देती थी, बेटों के नसीब में वह प्यार नहीं था। यही कारण था वे बेटों की ओर अधिक झुक गए।

अतीत से छूटकर विनोद बाबू ने आँखें खोलीं। उन्हें कुछ याद आया। वह उठे और अपनी अलमारी के पास पहुँचे। अलमारी खोल कर संध्या का दिया लिफ़ाफ़ा निकाला जो वह वहाँ रख कर भूल गए थे। लिफ़ाफ़ा निकाल कर उसे देखने लगे। संध्या ने अस्पताल में उन्हें यह कहकर दिया था कि मेरे बाद पढ़ना। विनोद बाबू ने लिफ़ाफ़ा खोला। उसमें संध्या का लिखा एक पत्र था, पत्र संध्या की सुंदर लिखाई में था, वह पढ़ने लगे-

प्रिय विनोद,

मैं जानती हूँ कि आप मुझसे नाराज़ हैं। आपने मुझे सब कुछ दिया, जिसकी कल्पना लड़की करती है। ढेर सारा प्यार और सम्मान। दोनों बेटों के बाद जब माँ बनने की ख़बर सुनी तो मैं भी बहुत खुश हुई। मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। मैं माँ के पास आ गई, पर मैं नहीं जानती थी कि यह विधाता की मर्ज़ी थी, मैं इस बच्चे को माँ के पास जन्म दूँ। दिव्या के जन्म के बाद मैंने आपसे कहा-'मैं बेटी की माँ नहीं बनना चाहती थी; कितनी मुसीबत की बात है।' और कि मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ और बेटों को भी दूर कर दिया। किसी विशेष कारण से। दिव्या को भी आपसे या किसी से भी नहीं

मिलने दिया। मैंने किसी रिश्तेदार से भी अच्छा व्यवहार नहीं किया, जिससे सब दूर हो गए। सब मुझे घमंडी, स्वार्थी और न जाने क्या - क्या समझने लगे। आप भी मेरे बारे में ग़लत ही सोचते रहे। मैंने सारे दोष स्वीकारे। जानना चाहेंगे क्यों ?

मैंने यह सब अपनी बेटी के लिए किया, जब मुझे यह पता चला कि दिव्या न तो हमारी बेटी है और न ही हमारा बेटा। मैं डर गई थी कि, कहीं लोग उसे अपने मनोरंजन का साधन न बना लें। मुझे यही सही लगा कि मैं सबकी नज़रों में बुरी बन जाऊँ, पर अपनी बेटी को बचा लूँ। मेरी माँ ने भी मेरे इस वचन को निभाने में अपना पूरा जीवन लगा दिया। मुझे माफ़ कर दीजिये। मुझे आपसे भी यह बात छिपानी पड़ी, पर मैं बहुत डर गई थी। आप भी इसे किसी को मत बताना। आप चाहें तो इसे ज़हर दे देना। आज जब मुझे पता चला है, मैं ज़्यादा दिन तक नहीं बचूँगी, तो मेरे अंदर दिव्या को लेकर असुरक्षा आ गई, अब इसका क्या होगा? विनोद बाबू के हाथों से खत नीचे गिर गया। आज वह अपनी ही नज़रों में गिर गए। उन्होंने अपने बेटों को बुलाया और संध्या का पत्र सबको पढ़ाया। सबकी नज़रों में अपनी माँ के लिए सम्मान था।

तभी बड़ी बहू ने कहा, 'हम माँ की क़ुर्बानी को व्यर्थ नहीं जाने देंगे, दिव्या दीदी हमेशा हमारे साथ ही रहेगी।' दिव्या को बुलाया गया। विनोद बाबू ने दिव्या के सिर पर हाथ रखकर कहा-' मुझे सब पता चल चुका है, तुम घबराओ मत बेटा। यह तुम्हारी माँ की तपस्या का ही फल है, आज से तुम कभी उदास नहीं होगी।'

विनोद बाबू के छोटे बेटे ने अपनी नौकरी छोड़ दी और अपने बड़े भाई के पास ही आकर अपना कारोबार शुरू किया, जिसमें दिव्या को भी शामिल किया गया। जिससे दिव्या अपने पैरों पर खड़ी हो सके। अब दिव्या की आँखों में उदासी नहीं बल्कि उम्मीद की एक रोशनी थी। अपनी माँ के प्रति आदर और स्नेह था। उसकी माँ के आख़िरी ख़त ने उसके जीवन की दिशा बदल दी।

000

लघुकथा

खेती

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज

"अरे वह आदमी गिरकर बेहोश हो क्या ! "

"अरे हाँ... । देखो-देखो ..... ।" यह भी दौड़ा, वह भी दौड़ा और अगल-बगल के लोग भी दौड़े। कुछ ने अपने-अपने तरीके से होश में लाने का प्रयत्न किया। पर असफल। फिर दो आदमी आपस में सलाह लेकर एक गाड़ी से अस्पताल ले भागे ।

"मैं कहाँ हूँ?" होश में आने के बाद बेहोश बोला।

"जी भाई साहब, आप ...... ।"और पूरी कहानी बताई दो में से एक आदमी ने।

"आप सब का बहुत ऋणी रहूँगा भाई साहब ..... ।" हाथ जोड़कर कृतज्ञता जताई उस रोगी ने। फिर आगे बोला, "तो अब हमें चलना चाहिए ? "

"नहीं भाई साहब, डॉक्टर के अनुसार कल तक आपको यहाँ ठहरना होगा।" एक दूसरा आदमी बोला।

"तो लीजिए इस नम्बर पर मेरे घर फ़ोन कर दीजिए। लड़का तो नहीं, पर बहू घर पर होगी।" जेब से एक नंबर निकालकर दिया रोगी ने उस आदमी को।

मुश्किल से 40- 45 मिनट का रास्ता होगा अस्पताल से रोगी के घर का, पर लगभग 3 घंटे बाद उस घर की बुआ आई एक रिक्शा लेकर।

"चच्चा ....." देखकर फफक पड़ी बूआ। लोगों ने समझा - यही पतोहू है।

"मत्त रो सुगिया। मैं एकदम से ठीक हूँ। पर बहू...?"

"घर ही पर हैं। फ़ोन तो गया था, बोलीं - उन्हें तो रोज़ कुछ-न-कुछ होते ही रहता है। जल्द से काम निपटा लो सुगिया, अस्पताल जाना होगा।"

इन शब्दों ने बूढ़े की आँखों से झर-झर आँसू बहवा दिए । होंठ फरकने लगे।

000

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज, शेखपुरा, खजूरी,
नौबतपुर, पटना-801109
मोबाइल:9334884520

ग़ालिब अंड गोएटे

मूल रचना – हाजी लक़ लक़

अनुवाद – अखतर अली

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल, आमानाका,
रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 9826126781
ईमेल- akhterspritwala@gmail.com

जहाँ जिस भाषा का कोई जानकार मौजूद न हो, वहाँ उसके लिये भी उस भाषा का विद्धान हो जाना आसान काम है जिसे बोले जाने वाले विषय का अंश मात्र भी ज्ञान नहीं है। जिन्हें अंग्रेज़ी बिलकुल नहीं आती उनके सामने ग़लत सलत अंग्रेज़ी बोल कर प्रभाव पैदा किया जा सकता है। जिसे अंग्रेज़ी ज़रा भी नहीं आती वह भी अंग्रेज़ी इस अंदाज़ में सुनता है मानों समझ रहा हो।

किस्सा यह है कि बर्लिन की बार में मिर्ज़ा कासिम और सरदार प्रीतम सिंह अपने-अपने ग्लास से चुस्किया ले रहे थे। प्रीतम सिंह ने मिर्ज़ा कासिम से कहा – मैं इटली जाना चाहता हूँ, वहाँ मेरे लिये बहुत संभावनाए हैं ; लेकिन मेरे पास इतने पैसे नहीं है।

मिर्ज़ा कासिम ने कहा – पैसे तो मेरे पास भी नहीं है वरना मैं ही दे देता।

प्रीतम सिंह ने निवेदन किया – किसी जर्मन से कर्ज़ ही दिला दो।

मिर्ज़ा ने कहा – इनसे उधारी तो नहीं लिया जा सकता पर इनसे कुछ पैसा कमाया जा सकता है।

प्रीतम सिंह की आँखें चमक उठी और उसने पूछा – कैसे ?

मिर्ज़ा कासिम बोले – यह बताओ तुम मिर्ज़ा ग़ालिब को जानते हो ?

प्रीतम सिंह ने याद करते हुए कहा - मिर्ज़ा ग़ालिब जिनकी चूने की दुकान थी।

अब इसी तरह के किसी जवाब की उम्मीद में मिर्ज़ा कासिम ने पूछा - गोएटे को जानते हो ?

प्रीतम सिंह ने याद करते हुए – एल.आई.सी. एजेंट थे क्या ?

मिर्ज़ा कासिम ज़रा भी नाराज़ नहीं हुए और कहा – बर्लिंग में चार दिन बाद तुमको एक कार्यक्रम में ग़ालिब अंड गोएटे के काम की तुलना करना है, अंग्रेज़ी का एंड यहाँ पहुँचते-पहुँचते अंड हो जाता है।

प्रीतम सिंह ने कहा – लेकिन मैं इन दोनों के बारे में जानता नहीं तो बोलूँगा क्या ?

मिर्ज़ा कासिम ने कहा – घबराओ मत, अगर बोलने वाले और सुनने वाले भाषा और विषय से अनभिज्ञ हो तो कार्यक्रम की सफ़लता निश्चित है। तुमको हिन्दी में बोलना है और सुनने वालों को हिन्दी समझ नहीं आती वो बस तुम्हारी भाव भंगिमाएँ समझेंगे। तुम्हारा वक्तव्य पूरी तरह तुम्हारी बॉडी लेंग्वेज के माध्यम से सुना जाएगा और अंगों की भाषा में व्याकरण की त्रुटि नहीं

होती है। यह साहित्य अकादमी का कार्यक्रम है इससे साहित्य के जानकार दूर ही रहते है, इसमें चंद अफ़सरान अपनी बेगम के साथ बतौर फ़ैशन आते है। सजे सँवरे ये लोग एक दूसरे से हाथ मिलाते है, नज़रें मिलाते हैं, एक दूसरे का अभिवादन करते हैं, कार्यक्रम को छोड़ इनका ध्यान चारों ओर रहता है कि कौन कहाँ क्या कर रहा है।

प्रीतम सिंह ने परेशान होकर कहा – लेकिन भाई मेरे ग़ालिब एंड गोएटे के संबंध में कुछ बोलना भी तो होगा ?

मिर्ज़ा कासिम ने कहा – सब से पहले तो यह बात अपने ध्यान में बिठा लो कि वह एंड नहीं अंड है।

प्रीतम सिंह ने अपनी ग़लती स्वीकारते हुए कहा – ठीक है अंड को अब अंड ही बोलूँगा पर इसके आगे क्या बोलूँगा ?

मिर्ज़ा कासिम ने कहा – एंड को अंड बोलना है और फिर अंड बंड संड बोलना है। अच्छा यह बताओ लड़कपन में तुम्हारा शौक क्या रहा है ?

प्रीतम सिंह ने कहा – मैं शुरू से हिन्दी फिल्मों का शौकीन रहा हूँ।

सुनते ही समस्या का समाधान हो गया और मिर्ज़ा कासिम ने कहा मंच से तुम भाषण के अंदाज़ में फ़िल्मी गाने गाना जिसकी हर लाइन के अंत में बोलना होगा ग़ालिब अंड गोएटे। अब यह तय रहा कि रविवार को होमबर्ग हाल में ग़ालिब अंड गोएटे पर केन्द्रित एक आयोजन होगा जिस पर तुम सरदार प्रीतम सिंह जो हिन्दी के प्रसिद्ध विचारक है इसके प्रमुख वक्ता होगे।

रविवार को होमबर्ग हाल लगभग पच्चीस श्रोताओं से खचाखच भरा था। कार्यक्रम अपने नियत समय पर आरंभ हो गया। उद्घोषक महोदय ने एक-एक कर प्रमुख लोगों को मंच पर बुलाना आरंभ किया। अध्यक्ष, मुख्य अतिथि, विशेष अतिथि, वरिष्ठ संपादक, प्रमुख पत्रकार, मिनिस्टर, मेयर, सांस्कृतिक सचिव, वक्ता एक, वक्ता दो, वक्ता तीन इस तरह मौजूद पच्चीस लोगों में से पन्द्रह लोग तो मंच पर विराजमान हो गए। हर आयोजक के समक्ष यह बहुत गंभीर संकट है कि जब तक मंच पर न बिठाओ वरिष्ठ लोग कार्यक्रम में आते ही नहीं है।

अब सम्मान का सिलसिला आरंभ हुआ। सब को बुके देकर सम्मानित किया गया, फिर सबने दो-दो शब्द कहे इसमें इतना वक्त ज़ाया हो गया कि जब प्रमुख वक्ता के बोलने का समय आया तो उद्घोषक महोदय ने निवेदन किया कि समय बहुत हो गया है इसलिये आज के प्रमुख वक्ता सरदार प्रीतम सिंह जी से निवेदन है कि वे अपनी बात कम से कम शब्दों में कहे। अब तक किसने किस भाषा में क्या-क्या बोला यह तो प्रीतम सिंह को समझ में नहीं आया लेकिन उद्घोषक की भाव भंगिमा से वह यह समझने में सफ़ल रहे कि अब माइक पर उन्हें बुलाया जा रहा है। अब ग़ालिब अंड गोएटे पर बोलने के लिये माइक पर सरदार प्रीतम जी आ चुके थे, अपने अंदर के पूरे आत्मविश्वास को समेट कर उन्होंने अपनी ज़बान पर रख दिया, सुनने वाले उसी मुद्रा में पैर पर पैर रख बैठ गए जैसे किसी बुद्धिजीवी को सुना जाता है। उन्होंने उस दिन सुना और खूब दाद दी और साबित कर दिया कि सुनने का समझने से कोई संबंध नहीं।

प्रीतम सिंह ने माइक सँभालते ही कुशल वक्ता की तरह गंभीर मुद्रा में कहना शुरू किया–

भाईयो और बहनों –

प्यार हुआ इकरार हुआ प्यार से फिर क्यों डरता है दिल, कहता है दिल ग़ालिब अंड गोएटे।

ग़ालिब अंड गोएटे सुन कर श्रोता खुश हो गए और उन्होंने भरपूर तालियाँ बजाई। जब ताली बजना रुक गईं तब प्रीतम सिंह ने उसी अंदाज़ में बात आगे बढ़ाते हुए कहा – सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था मुझे तुमसे प्यार आज भी है और ग़ालिब अंड गोएटे कल भी रहेगा।

यह सुनते ही श्रोताओं ने आसमान सिर पर उठा लिया और एक दूसरे की तरफ़ देख कर कहने लगे क्या बात कही है मज़ा आ गया।

प्रीतम सिंह ने कुशल वक्ता की तरह श्रोताओं को शांत होने का इंतज़ार किया और फ़िर उसी प्रवाह में कहने लगे – एक प्यार का नगमा है, मौजों की रवानी है, ज़िंदगी और कुछ भी नहीं ग़ालिब अंड गोएटे की कहानी है।

इस बार तो कमाल हो गया लोग मंच पर जाकर प्रीतम सिंह से हाथ मिलाने लगे। प्रीतम सिंह ने भी उनके प्यार को उनके अभिवादन को स्वीकारा और बोल पड़े – जो तुमको हो पसंद वही बात कहेंगे, तुम दिन को अगर रात कहो रात कहेंगे, देते न आप साथ तो मर जाते हम कभी के, पूरे हुए हैं आप से अरमान ज़िंदगी के, हम ज़िंदगी को ग़ालिब अंड गोएटे की सौग़ात कहेंगे।

यह सुनते ही प्रेक्षागृह में शोर बरपा हो गया जिसका अर्थ था वाह वाह वन्स मोर।

अब तो प्रीतम सिंह को भी मज़ा आने लगा था और वह पूरे जोश-खरोश के साथ कहने लगे –

कितने आदमी थे ? वो दो थे और तुम तीन फिर भी लौट आए वह भी खाली हाथ, क्या सोच कर आए कि सरदार खुश होगा, शाबाशी देगा ? वे दो थे और तुम तीन। वे दो थे, वो दो थे, वे दो थे ग़ालिब अंड गोएटे।

अब तो श्रोता स्वयं को रोक नहीं सके और प्रीतम सिंह के सम्मान में लोग अपने स्थान पर खड़े होकर तालियाँ बजाने लगे। प्रीतम सिंह होमबर्ग के मंच से कुछ और कहते तभी उद्घोषक महोदय माइक पर आए और अपनी मातृ भाषा में कहने लगे – साथियो प्रीतम सिंह का ओजस्वी वक्तव्य सुनने की अभी और इच्छा थी। मन तो यही कह रहा है कि ये बोलते जाएँ और हम सुनते जाएँ। ग़ालिब अंड गोएटे के विचारधारा का यह तुलनात्मक अध्ययन हमेशा याद रहेगा। हम भविष्य में एक बार फिर यहाँ प्रीतम सर को आमंत्रित करेंगे और उन्हें सुनेंगे लेकिन अभी समय को देखते हुए आज के कार्यक्रम के समापन की घोषणा करता हूँ।

दो दिन बाद मिर्ज़ा कासिम सरदार प्रीतम सिंह को इटली रवाना करने एयरपोर्ट गए। सरदार प्रीतम सिंह को अकादमी की तरफ़ से बतौर पारिश्रमिक सम्मानजनक राशि मिली थी इसलिये उनकी जेब भारी थी।

000

कविताएँ

खेमकरण 'सोमन' की कविताएँ

2020

बहुत उदास हैं बस की सीटें
जैसे पार्टी बदलने के बाद भी
न मिला हो विधायकी का टिकट
या हो गईं हों बुरी तरह बेरोज़गार
छिन चुकी हो चेहरे की रौनक
उजड़ गया हो युद्ध में घर-परिवार,
आशियाना
जैसे खो गया हो ज़िंदगी जीने का पासपोर्ट

मन बेचैन है इतना कि
बार-बार झाँकने लगती हैं खिड़कियों से
बाहर
कि आ सके कोई यात्री
तो हो जाए उनके जीवन में भोर का
आगमन
या कुछ चहल-पहल, कुछ हरीतिमा

हाथों में हाथ डालकर
पूछ रही हैं एक-दूसरे से कि- सखियाँ !
कब होगा दूर- दु:ख का कालापक्ष
कब आएँगे यात्री जिनसे हो सके
घर-परिवार, समाज-राजनीति की बातें

सीटें हैं खाली
जैसे भूखों के सामने खाने की खाली
थालियाँ
जैसे इन दिनों पढ़े-लिखे व्यक्तियों का
दिमाग,
जैसे खेलने-कूदने के मैदान,
जैसे धूप-गर्मी में दोपहर की सड़कें,
जैसे वायरस के कारण कंप्यूटर,
जैसे बेटी की शादी के बाद पिता के हाथ

सीटें जानना चाहती हैं-
2020 में क्या हुआ कि यात्रियों को देखने
के लिए
तरस गईं उनकी स्वस्थ आँखें।
000

ज़रा मुझे भी बता दो

मैंने पंखे से पूछा-
प्रेम क्या है?
मेरी बात सुनकर वह बोला कुछ नहीं
बस ज़ोर-ज़ोर से घूमते हुए
देने लगा ठंडी हवाएँ

पर बात अटकी हुई थी
जैसे अटके हों गले में मछली के काँटे
इसलिए अब मैंने हिरनी से पूछा-
प्रेम क्या है? कुछ कहो सखी

हिरनी ने लम्बी साँसें लीं
फिर लम्बी कुलाँचे भरती हुई
खो गई जंगलों में

अब मैंने पूछा
नदी, आकाश और बादलों से
कि प्रेम क्या है? ज़रा मुझे भी बता दो!

नदी मुस्कराने लगी
तभी उसमें से पानी की कुछ बूँदें
गिर पड़ीं मेरे चेहरे पर
यकीन कीजिए मैं तर,
बेहतर होता चला गया

आकाश भी हँस पड़ा
तो देखा बहुत गहराई है उसकी हँसी में
बादल ने बारिश करके
नहला दिया सबको
कि पवित्र हो गई यह दुनिया
लहलहा उठे खेत-खलिहान, जंगल
फिर मैंने सोचा
एक बार धूप से भी पूछ लूँ
कि क्या सोचती है वह प्रेम पर
तो वह लिपटती चली गई मुझसे!

मुझे लगा किसी लड़की से भी पूछना
चाहिए
तो पूछ बैठा उससे जो पढ़-लिख रही थी
समाज को!

मैंने पाया कि
उसके लिए तो धर्म, जाति, ऊँच-नीच,
श्वेत-अश्वेत का
कोई अर्थ ही नहीं प्रेम के सामने!
मैं सोच में पड़ गया

बहरहाल...बरसों बाद
कल एक बच्चे ने पूछा मुझसे-
क्या है प्रेम
क्या बता सकते हो तुम मुझे?

मैंने उसके सिर पर हाथ रखा,
फिर कुछ टॉफियाँ दी,
कुछ पेन, बिस्कुट
कुछ किताबें दीं,
कुछ घर के लिए उपहार

वह मुस्कुराने लगा
फिर धन्यवाद-धन्यवाद कहते हुए
दौड़ पड़ा अपने घर की ओर

जहाँ प्रेम की अनूभूति नहीं होती
वहाँ अनुभूति होती है ऊँच-नीच,
दंगे और युद्ध की।
000

खेमकरण 'सोमन'
हिन्दी विभाग, गोपाल बाबू गोस्वामी
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय चौखुटिया, अल्मोड़ा,
उत्तराखण्ड-263656
मोबाइल- 09045022156
ईमेल- khemkaransoman07@gmail.com

एकता कानूनगो बक्षी की कविताएँ

लाइमलाइट

चकाचौंध का अपना तिलिस्म है,
हर चीज़ चमकने लगती है रोशनी में,
कोयला भी जगमगाता है हीरे की भाँति।

रोशनी की चाह ललचाती है हमें,
सब कुछ पा लेने की
असमाप्त इच्छा पैदा करती है।

जब गिरती है कोई रोशनी
स्वयं पर,
बैचेन होने लगता है मन,
गौर से देखें
तो एक अनजान शख्स
नज़र आता है अपने सामने,
आत्ममुग्ध,
आत्मप्रशंसा का चोगा धारण किए,
घुटने टेके हुए, डरा हुआ
एक व्यक्ति नज़र आता है आईने में।

चौंध और जगमगाहट से परे
अपने हिस्से के अँधेरे में,
छिटकती चाँदनी तले,
कोई अपने संघर्ष शुरू करता है,
जहाँ से सितारा बनने की यात्रा
शुरू होती है।
000

सरोकारी लेखक

नई परिभाषाएँ गढ़ रहा वह
अपने शब्दों से
रच रहा एक नई दुनिया
पन्नों पन्नों से निकल रहे शब्द
जैसे जनवाणी, जनघोष में बदलने को
आतुर विचारधाराओं की गूँज
और सभ्यता की खुशबू से भरे
रोटी के इंतज़ाम में संघर्षरत आदमी की
आवाज़
तो कहीं बन जाते
हौसले में पसीने की बूँदें

बेसुध है अपने आप से
सृजन में लीन सुधी लेखक
बदल देगा कई जीवन
चिंतन और ज्ञान की विरासत दे जाएगा
आने वाली पीढ़ी को

वर्षो बाद जब कोई शोध होगा
तब मिलेगा
फटा धूमिल सा कोई चित्र
कहीं किसी जगह
छुपता झिझकता हुआ
महान् शब्दों
और विचारों की ओट में
जानेंगे हम तब शायद
लेखक के सरोकार।
000

स्ट्रेंथ ट्रेनिंग

अपनी महँगी 'स्ट्रेंथ ट्रेनिंग' के पहले दिन
अकड़ी हुई मांसपेशियों
और थकान के बीच
तुम्हारी बड़ी याद आई।

तुम्हारा 'वार्म अप' तो
उसी वक्त हो जाता होगा
जब माँ के साथ-साथ
छोटी सी हांडी में
बड़ी दूर से पानी लादे
अपनी झोपड़ी में लौटती होगी।
इस तरह आ ही जाती होगी
भविष्य में बोझा उठाने लायक
थोड़ी सी स्ट्रेंथ।
जंगल के खट्टे मीठे फल
तुम्हें देते होंगे ऊर्जा,
बकरियों के झुंड
और तुम्हारे दोस्तों की खिलखिलाहट
तुम्हारे जोश को बनाए रखते होंगे,
जैसा मेरा यह काम 'प्रोटीन ड्रिंक्स' और
'म्यूजिक बीट्स' करते हैं।

कैसा महसूस हुआ होगा तुम्हें?
जब पहली बार
उठाई होगी रेत से भरी तगारी,
किसी जुलूस को रोशन करते
भारी लैंप का संतुलन
बनाया होगा सिर पर,
अपने दोनों हाथों की मदद से।

सोचती हूँ
पहले थोड़ा ही उठाया होगा
तुमने भी बोझ,
'स्ट्रेंथ ट्रेनिंग' के नियमानुसार
धीरे-धीरे ही बढ़ाना पड़ती है
भार की मात्रा,
यही होता है
मांसपेशियों की मजबूती के लिए लाभदायी।

होना तो यही चाहिए था
कि तुम भी धीरे-धीरे बढ़ाती
अपने ऊपर भार।
पर नियम के उलट
तुमने एक साथ ही उठा लिया
जीवन का सारा बोझ।

हमसे बहुत आगे रही तुम
खेलते कूदते ही ले ली तुमने
'स्ट्रेंथ ट्रेनिंग'।
000

एकता कानूनगो बक्षी
फ्लैट नम्बर - 3, अथर्व रेसिडेंसी,
आशियाना पार्क लेन 2
औंध पुणे 411007
मोबाइल- 7799000940
ईमेल- ektaindia21@gmail.com

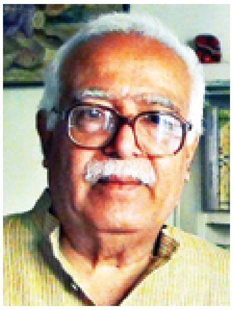

प्रकाश मनु की कविता

इन दिनों

आज सुबह से ही माथा भारी-भारी
जैसे पत्थर
जैसे पत्थर के भीतर
चलती हो चक्की
दगड़-दगड़

पिसता आटा गरम-गरम
जैसे तपा हुआ वजूद
रेशा-रेशा
झड़ रहा जो
झड़ रहा बुरादा

पत्थर पर रगड़ खाता
पत्थर
बार-बार
एक ही लय में क्यों दोहराता है—
दुर-दुर-दुर...
दुर-दुर-दुर...
दुर-दुर-दुर...!

कौन है जो चक्की में पिस रहा लगातार
कैसी भय की चक्की
जिसमें अंदर और बाहर की दुनियाओं
का
अब कुछ भी नहीं बचा साबुत

झूठ झूठ और बस झूठ
अफवाहें अफवाहें
और बस अफवाहें
और उन पर फेंक दिए जाते हैं अखबारों के
भारी पुलिंदे

हर सुबह बेशर्मी से

हर सुबह काली
सँवलाई हुई
जलती भट्ठी सी

इन दिनों खो गए हैं सारे रास्ते
खो गईं दिशाएँ
पैरों के नीचे की सड़क तक
बेपहचानी

मैं कहाँ जाऊँ,
किधर
मन-मन भर के हाथ-पैर
जैसे जूते ने हो काटा,
जैसे बिल्ली ने हो चाटा
ऐसे बजे मुँह पर बारह

ऐसा बुरा सा बिगड़ा मुँह लेकर मैं कहाँ
जाऊँ
कहाँ रख दूँ
यह बदरंग चौखटा
जहाँ मुझे समझा न जाए पागल न उन्मादी

मैं कहाँ जाऊँ
किधर
जहाँ इंसान को इंसान
बस,
इंसान समझा जाए
अपने सच्चे आवेश में थरथराता

न रँगा जाए उसके हर शब्द हर आशय को
लाल पीले हरे गेरुआ रंगों में

न लटकाई जाए उसके गले में कोई पागल
घंटी
कोई फूटा ढोल
बेसुरे नाद का

एक परदा है
झीना सा परदा
जिसके अंदर
खेल चल रहा है खुल्लमखुल्ला
और लोग हैं जो कठपुतलियों की तरह नाच
रहे हैं
नाचे जा रहे हैं बरसों से

मैं सिर उठाकर देखने की कोशिश करता हूँ
काली नफरत
और उपेक्षाओं के अंतहीन धुँधलके के उस
पार
टटोलता हूँ संभावनाएँ
सादा बहुत सादा
निष्कवच संसार की
जहाँ आदमी
बस आदमी बनकर जिए
न उठें
उस पर सवाल
न उँगलियाँ

न हो उसका आदमी होना
एक गाली
और मुझे नज़र आता है
गर्मी की जलती दोपहर में
प्यास से हलकान कुत्ते का तरलाकर देखना
कि जैसे करुण आँखों से बेधना
और अपनी बेचारगी
एक साथ।

000

प्रकाश मनु, 545 सेक्टर-29, फरीदाबाद
(हरियाणा), पिन-121008,
मोबाइल- 09810602327,
ईमेल- prakashmanu333@gmail.com

प्रतिभा चौहान की जंगल और आदिवासियों को समर्पित कविताएँ

जहाँ आज़ादी के मायने हैं कुछ और

यहाँ आज़ादी के मायने हैं
कुछ और
और क़ैद के मायने
जुड़े हैं सम्पूर्ण दुनिया की आज़ादी से
जब चलने की उम्र में
उसने सीख लिया दौड़ना
और
तेज़ गति पकड़ने के समय
दे बैठा धड़कनों को शांत रहने का आदेश
यानी कि वह चाहता
कुछ और था
किया कुछ और
भावनाओं के नश्तर से
काट दिए कितनों के पर
और ऊँची उड़ानों के पक्षियों का
करता रहा शिकार
उसके इस रहस्य को उजागर करने में
पीढ़ियाँ हुईं नाकाम
वह इंसानी भेष में
कोई जंगली आदमी था
हालाँकि वह जंगल में
कभी नहीं रहा...
000

नदी अब न वो नदी है

नदी
अब न वो नदी है
न तितलियाँ
न फूलों के अंबार
नदी को चीरती हुई कोई मज़बूत चीख
रोक देती है
उस का बहना
चलना मचलना
एक अक्षय दीवार देती है उसे फ़िक्र

वह छुपाती है अपनी आँखों का पानी
और उमड़ती है भीतर ही भीतर

एक भारी दर्द के शोक को मनाने से पहले
बन जाती है
हरे-हरे आकाश की पंछी
स्वच्छंद मगन मस्त

तोड़ देती है गुनाहों का पिंजर
फूटती है ज्वाला सी
प्रबल वेग सी बह उठती है
करती है तहस-नहस
तोड़ती है सारी बेड़ियाँ

एक निरीह मनुष्य की जोड़ी भर आँखें
देखती हैं बस
दम भर तबाही को ...
000

उसका हिस्सा

वह चुनती है जंगल से
अपने हिस्से का सामान
मसलन
लकड़ी, पत्ते और अपनी स्वतंत्रता
वह स्वतंत्र है
देवदार के पत्तों और
तेंदु के पत्तों में वह करती है फ़र्क़
घर से बाहर तक
अपनी मर्ज़ी से बनाती है
घर के नियम
वह चलती है गुनगुनाती है
जीवंत हो उठता है
जंगल सारा उसी के इशारों पर
वह डरती नहीं
सभ्य समाजों की स्त्रियों की तरह
न ही ठहरती है
गुलामों की तरह सिर झुकाए
न ही मोहताज
किसी निर्णय के लिए जाने से पूर्व के समय
पर ...
000

झूमता है जंगल तुम्हारी तानों पर

कई बार देखना चाहा
तुम्हारा वह रूप
जिसमें तुम अपने सबसे प्रसन्न क्षणों में
नाचते गाते हो
हथेलियों में लिए हुए एक भविष्य
और बाँधे हुए गले व सिरों पर
अपनी संस्कृति की पहचान
तुम्हारी हाथों की रेखाएँ
इस जंगलों का सौभाग्य है
विभिन्न आवाज़ों में रची बसी
प्रेम की भाषा
सुनाई देती है

जंगलों के हर कोने और आठों दिशाओं में
हवाओं से होती हुई
वापस आती है

लिखती है बार-बार तुम्हारी संस्कृति के गीत
झूमता है जंगल तुम्हारी तानों पर
और ख़ुशियाँ महकती हैं

तुम जानते हो अपनी सीमाएँ
माँगते हो बस उतना ही
जितने में होती है ज़िंदगी की बसर ..
000

हरे दिन काली रातें

ऊँचे वृक्षों से आती हुई लम्बी धूप
ज़मीन पर पसर जाती है
अपने रेशमी अहसासों से
बना देती है
हर एक कोने को खुशनुमा
लम्बी दोपहरें काटती हैं जीवन
शाम की ढलान तक

धीरे-धीरे होती है धरती शीतल
आने वाली रात से करती हुई संवाद
ये हरे दिन कुछ ज़्यादा हरे
और रातें कुछ ज़्यादा काली होती हैं
रातों में बेफिक्र नींद
बिना किसी सपनों की जुगलबंदी के साथ
ठहरती है
मिटाती है दिन भर की थकान
और घुलती जाती है
काली रात की रोशनाई में

कोई अंसतोष जन्म नहीं लेता
इस तरह होता है एक सच्ची सुबह का
आगाज़
अगली सुबह
एक नए दिन के साथ करती है स्वागत
फिर से हरियाली का

ये फलसफा चलता है उम्र भर
बिना किसी तंज, भय, द्वेष के
नि:सकोच .अनवरत ...
000

कोई असंतोष नहीं

मील के पत्थर सरीखे
सबसे प्राचीन
व्याप्त हैं धरा पर दोनों ही -
जंगल और उनकी हरियाली

स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के मध्य
चलती है जीवन रेखा
पूरी होती हर आवश्यकताएँ

जीवन
जिसकी जड़ें ऊर्ध्वमुखी
और शाखाएँ अधोमुखी हैं
आध्यात्मिक आकाश में
सदैव रहती हैं उपस्थित

वास्तविकता का प्रतिबिंब हैं
हमारी उपाधियाँ और असक्तियाँ
जो करती हैं आसक्त
जिनकी जड़ें आ बैठती हैं
भौतिक आकाश में

जमाती हैं
खुद को अत्यंत गहरे तल में कहीं
मानसिक तंतुओं के बीच
रच बस जाती हैं
क्या आप जानते हैं ?
मृग मरीचिकाएँ नहीं होती जंगलों के
भीतर...
000

दुनिया के सबसे खूबसूरत लोग

दुनिया के सबसे खूबसूरत लोग
रहते हैं
जंगलों के मध्य
जहाँ बहती हैं प्रेम की नदियाँ
जिनके रंग हरे
और किनारे आसमानी हैं...

जड़ों से सबसे ऊपरी सिरे तक
पसरा है आकाश
अपने फैलाव को
कभी नहीं समेटता जंगल
नदियाँ करती है संवाद
एक हरी सी सुगंध
घूमती फिरती है
चारों ओर...

एक मौन का संगीत
गुनगुनाता है हर पेड़
प्रकृति करती है श्रृंगार
प्रकृति परमेश्वर है
देती है अशेष
झोली भर-भर
नहीं करती निराश

सदियों से
मुठ्ठियों में भरती है
एक पूरा ब्रह्मांड...
000

जीवंतता का नहीं लेते कोई प्रशिक्षण

वे सबसे अलग
एक पूरी विकसित दुनिया से दूर
रहते हैं अपनी शर्तों पर
वे नहीं मानते
विकास के फ़लसफ़े
न ही चाहते हैं किसी का हिस्सा होना
अपनी पहचान को अपनी धड़कनों
और खामोशी में संजोये
खड़े हैं मजबूत पैरों के साथ
उनका मौसम अपना है
बादल अपने हैं बारिश भी अपनी है
भाषा और विधान अपने हैं
अपनी हैं कहानी और कविताएँ
नहीं हैं मोहताज
किसी बाहरी आडंबर के विज्ञान से
न ही खोखले वादों की चमकती इबारतों से
न ही रखते हैं कोई सरोकार
उठते हुए झूठे दम्भ के गुबार
और
बेशकीमती असबाबों से
कुछ है उनमें
जो और कहीं नहीं है
तुम जो जीने से पहले मर जाते हो
या तिल तिल किसी झूठे डर में
पिघलते रहते हो पल-पल
क्या कर सकोगे जीवंत नायकों का
मुकाबला
जिनकी नस-नस में बहता है जीवन
और जीवन की नस-नस में जीवंतता
जीवन की अंतिम साँस तक
वे जीवंतता का
नहीं लेते कोई प्रशिक्षण
बस बचाए रखते हैं
एक पूर्ण जीवन
और जीवन जीने के आसार...
000

प्रतिभा चौहान
संप्रति- बिहार न्यायिक सेवा
संपर्क- 8709755377
cjpratibha.singh@gmail.com

चंचला प्रियदर्शिनी की कविताएँ

अपरिचित कौन

माँ मैं कौन हूँ –
कर्ण या अर्जुन
तू कर्ण नहीं है –
कर्ण सूर्यपुत्र जन्मा
और राधेय बन कर पला
दानवीर बनकर जीवन जीया
और वह परशुराम शिष्य था-
जिसकी मृत्यु हुई।
तो मैं अर्जुन ही हूँ ना माँ
नहीं तू अर्जुन भी नहीं है
कौन्तेय जन्मा -
द्रोणशिष्य
वह सव्यसाची
एक महायुद्ध का
बस निमित मात्र था
पाँचाली को कुरु कुल की वधू बनाने
से लेकर
अग्रजहंता बनने तक –
एक महायुद्ध का बस
निमित मात्र ही था वह

फिर कौन हूँ मैं माँ
तू है वह जो
जन्म से मृत्यु तक बस एक रहा
ना किसी गुरु की शिक्षा का अधिकारी
तू ना किसी माँ के नाम का
उत्तराधिकारी
तू अतीत, वर्तमान और भविष्य में –
बस एक
– एकलव्य।
000

मातृभूमि - के नाम

बहुत दूर भी हूँ -
और
कुछ मजबूर भी -
जानती हूँ -
तुम मुझे -
माफ़ कर दोगी -
कितनी बार जैसे - तुमने
कर दिया पहले भी -
यह समय गुज़र जाएगा
किंतु वक्त के
गुज़र जाने के
बावजूद भी -
ज़ख्मों के निशान
तो रह ही जाते हैं -
मगर
इस बार मैं अपनी
मजबूरी के नाम पर -
बैठी नहीं रह जा सकती -
मैं तुम्हें अपना
खून नहीं दे सकती - क्योंकि
उसकी तो मैंने सियाही बना ली है
और
अपनी लेखनी में भर लिया है
मैं अब मजबूर नहीं महसूस कर रही
मैं
तुम्हारी बेटी
000

माँ बस ऐसी ही होती है

वह ढूँढ़ लेती है-
मेरे किंडरगार्टेन की नोटबुक में खिंची
आड़ी टेढ़ी लकीरों में
-इक सुंदर तस्वीर
और संजो लेती है उसे
अपनी यादों की अलमारी में बड़े जतन से
फिर दे देती है मुझे इक विस्तृत संसार –
मापने को
माँ कुछ ऐसी ही होती है
वो सुन लेती है -मेरी खामोशी की कहानी
उससे आँखें चुरा कर जब मैं चुपचाप
दाल में रोटियाँ भिंगो कर खाने का उपक्रम
कर रही होती हूँ -तो
वो पढ़ लेती है वो कहानी
जो मैंने लिखा तो नहीं अभी बस जिया है
और फिर जाने कैसे वह सुलझा देती है
मेरे उलझे सपनों के बेतरतीब धागे
फिर उनसे बुन देती है -इक नरम रजाई
जिसमें लिपटी मैं सो जाती हूँ – गहरी नींद
माँ फिर से दे देती है मुझे इक विस्तृत
संसार – जोखने को
000

प्रेमचंद आज के परिप्रेक्ष्य में

मानसरोवर की धरती पर
गोदान को गबन किया
नमक के दरोगा ने।
बड़े घर की बेटी चली
कफ़न ओढ़े, सेवासदन को
जो थी, आत्माराम की रंगभूमि।

दो बैलों की कथा को
पंच परमेश्वर ने ऐसे सुलझाया –
गुल्ली डंडा के खेल में
जो जीते, वो हैं – शतरंज के खिलाड़ी।
000

Chanchala Priyadarshini
123 Hayward Road, Acton MA
01720 USA
chanchalapriyadarshini1000@gmail.com

दीपक शर्मा 'दीप' की कविताएँ

मौन मत साधो हे साधो!

यह घड़ी निर्माण की अनिवार्य और पावन
घड़ी है
मंत्र साधो
और उच्चारो दसों-दिग्पाल जागें
डीह उट्ठें और उठकर दूब लाने तुरत भागें
चौक पुरवाएँ दिशाएँ सारी नदियाँ गीत गाएँ

फूल की मालाएँ बनवाएँ शिवाले
मस्जिदें गेंदे पिरोने मुर्शिदों को झट बुलाएँ
सारे नबियों को लगाएँ बोल दो अर्शे-बरीं से
आज तक के जितने भी ईसा हुए हैं सारे
आएँ
रोट, चरणामृत, फलों का कार्य अब आगे
बढ़ाएँ

पर्वतों की चोटियाँ उल्टी हों जाकर खाइयों
में
जो मसाले कूटने हैं तितलियाँ लाकर
दिखाएँ
इस तरह भँवरों से बस गलचौर से क्या
रीतना है
इस समय को जीतना है
इस समय से हार जाना हार जाना है विषय
से
यह परीक्षा की घड़ी है

मुद्राराक्षस को बता दो
किस तरफ़ और किस तरह से भोज को
डेरा तनेगा
किस तरफ़ तंबू गड़ेगा
जिस जगह पर पाँत बैठे वो जगह सुघरी
बना दो
दु:ख की यह लुगरी हटा दो
अप्सराओं से कहो आँगन बुहारें
देवता गायों को जाकर चारा डालें
दोनों को तकने को इक चिड़िया बिठा दो
मुँह-मटक्का से तनिक दूरी बना दो

क्षेत्रपालों को नहीं भेजा गया हो पान लाने
कह दो भेजें चींटियाँ
इस विलंब का भोग फिर भारी पड़ेगा

ये गिलहरी अब बुलौआ देने जाए टोले भर
को
इंद्र को दौरी थमा दे
हाथ में इक फावड़ा दे
पोखरे के किस तरफ़ मिट्टी भली है यह
बता दे
काम पर लगवा दे आते ही सुरों को
और लिपवा दे घरों को
आज श्री-श्री मानव-जू की जन्म की पहली
शती है
यज्ञ है फिर आरती है
ढोल बजवाएँ हवाएँ
ऋषि, मुनि, ऋतुराज, वेदों की ऋचाएँ
पुष्प की वर्षा कराएँ
इस तरह संकल्प बाँधो

मौन मत साधो हे साधो!
000

मैं चलूँगा अकेला ही चलूँगा

चलते हुए मिलने वाले हरेक से जोड़ूँगा
हाथ
करूँगा निवेदन साथ चलने को

लड़ने को इंसानियत के लिये बनाऊँगा एक
दल
जिसका सेनापति होगा चूहा
चूहे के पीछे होंगे कतारों में अनगिनत घुन
घुन से कंधे से कंधा मिलाकर चलते होंगे
दीमक
दीमकों के ठीक पीछे होंगे कुछ कनस्तर
लिये घोड़े
जिनमें बैठीं होगी इल्लियाँ

मैं इल्लियों को बतला दूँगा वो सब
जो बतलाया है मुझे उनके पीछे की क़तारों
में बैठे कबूतरों ने
जो बैठे हुए होंगे कौओं की पीठ पे
और उनके बगल में टिटिहरी के दस्ते गा
रहे होंगे
'हम होंगे कामयाब एक दिन'

हम यकीनन होंगे कामयाब
जब होगी हमारे साथ बंदरों की टोलियाँ
टिटिहिरियों से ठीक नब्बे के कोण में
भालुओं के साथ चलते खरगोश

सबसे पीछे की पंक्तियों में शेर, चीते, बाघ,
हाथी
उसी चूहे के साथ खेलते लड़ियाते
जो है मेरे दल का सेनापति
जो तितलियों से कर रहा है बात
बना रहा है रणनीति
और कहेगा कनेर के फूलों से
बिगुल फूकों और आगे बढ़ो आज जीत
हमारी है
हम जीतेंगे

और एक ज़रूरी बात
कि कोई जगह नहीं होगी इस दल में
सियार, बिल्ली, लोमड़ी और साँपों के लिये
एवं तथाकथित इंसान तो सोचें भी मत इधर
आने की
नहीं तो बोल दूँगा
बिच्छू भाईयों से देख लेंगे

मैं चलूँगा अकेला ही चलूँगा
000

दीपक शर्मा 'दीप', 343 - पेप्टिक सिटी
कॉलोनी, पन्ना रोड, सोहावल - 485441,
सतना (मध्य प्रदेश)
मोबाइल- 9540749166
ईमेल- deepaksharma434@gmail.com

भाषांतर

शंख घोष की कविताएँ

अनुवादक - रोहित प्रसाद पथिक

रोहित प्रसाद पथिक
के. एस. रोड, रेल पार डीपू पाडा क्वार्टर नम्बर:(741/सी), आसनसोल-713302 (पश्चिम बंगाल)
मोबाइल: 8101303434/8167879455
ईमेल: poetrohit2001@gmail.com

शंख घोष (5 फरवरी 1932 - 21 अप्रैल 2021) एक प्रमुख भारतीय बंगाली कवि और साहित्यिक आलोचक थे। वह एक प्रमुख रवीन्द्र विशेषज्ञ और एक शक्तिशाली लेखक थे। बंगला भाषा में लिखित "दिनगुली-रातगुली", "निहित पाताल छाया", "मुर्ख बोड़ो, सामाजिक नोय", "बाबरेर प्रार्थना" आदि प्रमुख किताबें। पुरस्कार पद्म भूषण (2011), ज्ञानपीठ पुरस्कार (2018), साहित्य अकादमी पुरस्कार (1977)।

बादल के जैसा मनुष्य

मेरे सामने से टहलते हुए जाता है
वह एक बादल के जैसा मनुष्य
उसके शरीर के भीतर प्रवेश करने पर
मालूम पड़ता है कि
सारा पानी धरती पर झड़ जाएगा।

मेरे सामने से टहलते हुए जाता है
वह एक बादल के जैसा मनुष्य
उसके सामने जाकर बैठने पर
मालूम पड़ता है कि
पेड़ की छाया आ जाएगी मेरे पास

वह देगा कि लेगा?
वह क्या आश्रय चाहता है?
ना कि आश्रय में है...?
मेरे सामने से टहलता हुआ जाता है
वह एक बादल के जैसा मनुष्य

उसके सामने जाकर खड़े होने पर
मैं भी संभवत: कभी किसी दिन हो सकता हूँ बादल...?
000

तबाह

हे! भगवान्,
तबाह हो जाने वाले रास्ते पर चला था
आप मेरे तबाह हो जाने के पूरे ऋणी हो
जो कटोरे में भर कर रखा था
लेकिन
आप की विस्तृत मुट्ठी को पकड़कर
मैंने हृदय की आपा-धापी के मध्य
शाम के समय
आप एकदम से " बिखर जाते हैं... बिखर जाते हैं"
जैसे शब्दों से तबाह कर देते हो
मेरे भगवान् ...!
000

यौवन

दिन रात के मध्य
पक्षियों के उड़ने की छाया
बीच-बीच में याद आता है
हमारा अंतिम मिलना-जुलना।
000

प्रतिहिंसा

युवती कुछ नहीं जानती
सिर्फ प्रेम की बातें बोलती है
शरीर मेरा सजाई भी तुम
बीते समय में...

मैंने भी प्रतिक्रिया में रखी थी सब बात;
शरीर भरकर उड़ेल दिया हूँ
तुम्हारे ऊपर
अग्नि और प्रवणता।
000

मेरी लड़कियाँ

लिख रहा हूँ
जल के अक्षरों से 'मेरी लड़कियाँ'
हर घर में
आज भी भीख माँगने के हाथों में पड़ी हुई हैं।
000

बातों के भीतर बातें

सभी नहीं, फिर भी
बहुत कोई बातों के भीतर बातें खोजते हैं

सहज भाषा तुम भूल गए हो
इस मूसलाधार बारिश में
आओं नहा लें।

पानी के भीतर कितने मुक्तिपथ है...?
कभी सोच कर देखो
अब बाधित होकर बैठे रहकर,
बहुत ज़्यादा देर बैठे रहकर...सिर्फ बैठे
रहकर

हृदय बहुत कुंठित हो चुका है
मालूम पड़ता है
अब क्या...?

तुम्हारी कोई निजी गरिमामई भाषा नहीं...?
क्यों आज प्रत्येक समय इतना
अपने विरुद्ध बातें बोलते हों।
000

तुम

मैं उड़ता फिरूँ
मैं घूमता फिरूँ
मैं सभी दिनमान रास्तों पर
जलता फिरूँ...

लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगता
जब घर लौटूँ तो
न देख पाऊँ तुम्हें
"कि तुम हो...?"
000

देह

आ रहा था
सनातन मैदान से निकलकर
हृदय के ऊपर
बहुत ज़्यादा दबाव
धीरे-धीरे सुलगती आग
जिसे सामने से ग्रहण कर रहा हूँ।

मेरे सामने खड़े हैं नगरवासी
जो हड़बड़ाकर चिल्लाए जा रहे हैं;
"शरीर कहाँ है ?....शरीर कहाँ है ?..."

अब मैं यह सब कुछ नहीं सुन सकता हूँ,
पॉकेट में हैं एक धुँधला आइना,
टूटी कंघी, चादर, मुड़ी और नौका चप्पल
(रबड़ हवाई चप्पल)
आ रहा था
मैं तुम्हारे लिए...!
000

तुम बोले थे - 'जय होगा, जय होगा !'

तुम बोले थे ; 'जय होगा, जय होगा'
इस तरह का दिन हमेशा नहीं होगा
यह सुनकर न जाने कितने धमाके हुए
आश्चर्य से मन ही मन नाचता हूँ।

उत्सव से भराकर दु:ख देखकर
स्वाभाविक ही सोचता हूँ भयावह दृश्य।
व्यथित मन से--- हाथ में पकड़ा गए----
मैं पीकर गया हूँ तीव्र ज़हर।

तुम बोले थे; 'दल होगा, दल होगा'
दल के बाहर नहीं होगा कुछ और
निवेदन होने पर सब कुछ बाहर होगा
दुर्लभ चोटी की तरह हर जगह...!

भूमंडल की मट्टी भुरभुरी होकर गिर रही है
हम लोग किसी गड्ढे के नीचे दबने से
बचेंगे।
हर मित्रों के हृदय में विषाद भरा हुआ हैं,
फिर भी कोई हमारे पास आने को तैयार
नहीं!

तुम बोले थे;
'इसका होगा, उसका होगा'
तुम्हारे रास्ते पर
चल पड़े हैं संसार
यह 'असमय' कभी भी सोचा भी नहीं था
कि
जय के भीतर इतना 'गहरा हार' भी होता
है...!
000

ग़ज़लें

दौलतराम प्रजापति

इतने फ़ितने दिमाग से निकले
रोज़ इक जिन चराग़ से निकले
सारा आलम धुआँ-धुआँ सा है
बर्फ़ सी सर्द आग से निकले
कोठरी से जनाब काजल की
कौन बेदाग़, दाग़ से निकले
मसअला है अजीब, हल इसका
जोड़ बाक़ी न भाग से निकले
विप्लवी धुन किधर गई 'दौलत'
साज! गुणगान राग से निकले
000

फ़लक धरती सितारे सब, हरेक मीज़ान की हद है
कहाँ तक चुप्पियाँ साधे, अजी इंसान की हद है
कहा तुमने-सियासत हैं, सदाएँ आम लोगों की
तुम्हारे झूठ की हद है, मेरे ईमान की हद है
तुझे दिल में बिठाते हैं, तेरा सम्मान करते हैं
मगर सच्चाई ये भी है, तेरे सम्मान की हद है
सुने हैं खूब हम सबने, तुम्हारे मर्सिये अब तक
बग़ावत हो तो हो लेकिन, सुनो गुणगान की हद है
कभी पप्पू, कभी मौनी, कभी पोपट बुलाते हो
रखो शीरीं ज़ुबाँ साहब, हरेक उन्वान की हद है
नए जुमले बनाते हो के मन की बात करते हो
हमारी भी सुनो बन्धु तुम्हारे ज्ञान की हद है
सुनो मेहमान हो, आये हो, इज़्ज़त से रहो 'दौलत'
न भूलो बात इतनी सी, कहाँ मेहमान की हद है
000

दौलतराम प्रजापति
वार्ड 05 कुम्हार गली सिरोंज रोड लटेरी
जिला विदिशा मध्यप्रदेश पिन 464114
मोबाइल- 9893388470
ईमेल- daulatramparajapati2017@gmail.com

ग़ज़लें

धर्मेन्द्र गुप्त

कभी मेरी कहानी हो
मगर उनकी ज़ुबानी हो
कभी वो शादमानी हो
मेरी आँखों में पानी हो
बहुत ही नर्म लहजे में
कोई भी सच बयानी हो
हो भूरा रंग अम्बर का
धरा का रंग धानी हो
हो हर पल शे'र के जैसा
ग़ज़ल सी ज़िन्दगानी हो

000

ज़ख़्मों की गहराई देख
और मेरी तनहाई देख
ख़ुद को ख़ुदा कहने वाले
देख तू अपनी ख़ुदाई देख
मुझसे शोहरत पाकर अब
देख मेरी रुसवाई देख
हर दम दुखड़ा रोने वाले
पीर कभी तो पराई देख
मेरा अफ़साना सुनके
आँख तेरी भर आई देख

000

धूप से फिर छाँव में हम आ गए
ज़िंदगी के अर्थ फिर धुँधला गए
आपको बचना था सच्चाई से जब
आईने के सामने क्यों आ गए
मुद्दतों के बाद वो मुझसे मिला
लफ़्ज़ मेरे जाने क्यों पथरा गए
आये थे सुलझाने को वो उलझनें
उलझनों को और भी उलझा गए
कुछ तो हम दुनिया से शर्मिन्दा रहे
कुछ हम अपने आप से शरमा गए

000

अभी तू और मेरा कितना इम्तहाँ लेगा
कि इम्तहाँ के बहाने तू मेरी जाँ लेगा
मेरे बदन का हर इक ज़ख़्म दे रहा है बयाँ
मगर वो फिर भी मेरा हलफ़िया बयाँ लेगा
न बख़्शना तू किसी को ज़मीन अब यारब
ज़मीन दी तो वो थोड़ा सा आसमाँ लेगा
ज़मीं पे ज़ुल्मो सितम कर रहे हो जितने भी
कल एक -एक का बदला वो आसमाँ लेगा
तुझे भी लग ही गई शायरी की लत आख़िर
कि तू भी दर्द की बस्ती में अब मकाँ लेगा

000

तब हक़ीक़त वो मान जाएगा
वक़्त जब आईना दिखायेगा
डूबना चाहता हो जो ख़ुद ही
कोई कैसे उसे बचायेगा
ज़र्द मौसम में जा रहा है वो
सब्ज़ मौसम में लौट आयेगा
आज सबको नचाले जी भरके
कल तुझे वक़्त ही नचायेगा

000

जब से हम बेवफ़ा हो गए
वो वफ़ा के ख़ुदा हो गए
हर तरफ़ ज़ख़्म ही ज़ख़्म है
फूल सारे वो क्या हो गए
ढंक लिया चाँद को अब्र ने
चाँदनी से ख़फ़ा हो गए
आप हमसे मिले भी तो कब
जब इरादे हवा हो गए
आके मिलते हैं वो अलसुबह
गोया बादे सबा हो गए

000

दर्द मेरा जब गहराया
रिश्तों को हल्का पाया
आ तो गया महफ़िल में पर
ख़ुद को साथ नहीं लाया
कौन भला अब ये सोचे
क्या खोया और क्या पाया
याद के सब्ज़े उगने लगे
बारिश का मौसम आया
जब टूटा पत्ता कोई
कोई रिश्ता याद आया

000

आदमी जो ग़म उठाता जा रहा है
अपने होने की सज़ाएँ पा रहा है
याद वो पीरी में कितना आ रहा है
उम्र भर जिससे तू कतराता रहा है
तू समझता है कि उसको पा रहा है
अस्ल में तू उसको खोता जा रहा है
आज तक ख़ुद को ही जो समझा न पाया
बात वो औरों को तू समझा रहा है
भूलके भी भूल ये जीते जी मत कर
मिलिकियत बेटों को देने जा रहा है
क्यों न हो तेवर में उसके तल्ख़ियाँ ही
उम्र भर जो तल्ख़ियाँ पीता रहा है

000

दिन तमन्नाओं के गुज़ार आये
फ़र्क अब क्या अगर बहार आये
वो घड़ी कितनी पाक होती है
माँ को बच्चे पे जब दुलार आये
दे रहे हैं दुआ तो बस ये दें
घर में कुछ भी न अब उधार आये
सामने बैठे थे वो दरपन के
हम भी छुपके उन्हें निहार आये
यूँ ही चलती रहे वफ़ा -कश्ती
आर आये कभी न पार आये

000

सुनहरा उसका पैकर हो गया है
मगर अहसास पत्थर हो गया है
नए रस्ते पे मैं तनहा चला था
मगर अब साथ लश्कर हो गया है
लिखा हर ईंट पर है नाम जिसका
वो कैसे घर से बेघर हो गया है
कहीं तो आग पानी हो गई है
कहीं तो फूल पत्थर हो गया है
भटकता था जो आवारा सा कल तक
समय का वो सिकन्दर हो गया है
तुम्हारी याद चादर हो गई है
तुम्हारा दर्द बिस्तर हो गया है
अभी आई थीं गुलशन में बहारें
तो कैसे ज़र्द मंज़र हो गया है
दिये हैं आज को दुख दर्द तो क्या
हमारा कल तो बेहतर हो गया है

000

धर्मेन्द्र गुप्त
के 3/10 ए, माँ शीतला भवन
गायघाट, वाराणसी -221001
मोबाइल - 8935065229

ग़ज़लें

सुभाष पाठक 'ज़िया'

ऐ चाँद माँग तीस दिनों को ज़िया का साथ
जैसे दुल्हन ने माँगा सदा को पिया का साथ
तू माँगना ख़ुदा से मुझे उस यक़ीन से
बाती ने जिस यक़ीन से माँगा दिया का साथ
वनवास में भी साथ रहें हम, महल में भी
हो साथ यूँ हमारा कि रघुवर सिया का साथ
मिसरे मेरे नसीब के हो जायेंगे ग़ज़ल
बस तू रदीफ़ बनके निभा क़ाफ़िया का साथ
हर रोज़ मत बदलना मेरे दिल तू ख़्वाहिशें
मैं दे सका नहीं किसी बहरूपिया का साथ
जैसे गुलों में गंध है, तितली में रंग हैं
वैसे ही साँस साँस 'ज़िया' 'अर्ज़िया' का साथ

000

महरूमियों का साथ निभाना पड़ा मुझे
मजबूरियां थीं ज़िद पे तो जाना पड़ा मुझे
मैं कश्मकश में सोच न पाया कि क्या करूँ
हाँ रास्ते में एक ठिकाना पड़ा मुझे
ज़ख़्म ए जिगर को देख के हँसने लगी थी रात
बस इसलिये चराग़ बुझाना पड़ा मुझे
वो तितलियां बना रहा था इक वरक़ पे सो
इक फूल इक वरक़ पे बनाना पड़ा मुझे
दिल साफ़ था मगर ये ज़ुबाँ जब फिसल गई
इल्ज़ाम ए बेहयाई उठाना पड़ा मुझे
वो कह रहा था ख़्वाब हूँ ख़्वाबों का क्या वजूद
फिर यूँ हुआ कि ख़ुद को जगाना पड़ा मुझे

000

शाम समेट रही है आँचल मेरे पास रहो,
फैल रहा है रात का काजल मेरे पास रहो
चाँद सितारों ने ओढ़ा है बादल का कम्बल
कूक उठी है दिल में कोयल मेरे पास रहो
तुम बिन जीना भी मुश्किल है मरना भी मुश्किल,
हर मुश्किल का है ये इक हल मेरे पास रहो
वक़्त हुआ क्या, क्यूँ सोचूँ इतवार शनीचर को
मुझको ही चाहो तुम हर पल मेरे पास रहो
ज़ख़्मों को सेको साँसों से फिर मरहम रक्खो
फिर डालो तुम अपना आँचल मेरे पास रहो
सब अपने अपने जैसों के पास ही बैठे हैं
तुम पागल हो मैं भी पागल मेरे पास रहो

000

कुछ देर तो रुकूँ कि अभी गुल नहीं खिले
तितली को रोक लूँ कि अभी गुल नहीं खिले
मौसम बहार का है चमन में खिज़ां है पर
रो रो के मैं हसूँ कि अभी गुल नहीं खिले
इक उम्र में तो आये हैं शाख़ों पे ख़ार ही
इक उम्र फिर जियूँ कि अभी गुल नहीं खिले
रंगत है मेरी सुर्ख़ महकता मिज़ाज है
सो ख़्वाब ही तो हूँ कि अभी गुल नहीं खिले
मुद्दत के बाद बाग़ से माँगी हैं ख़ुशबुएँ
फिर भी वही सुनूँ कि अभी गुल नहीं खिले
तन्हाइयों में ख़र्च न करिये 'ज़िया' शबाब
बाक़ी रखो जुनूँ कि अभी गुल नहीं खिले

000

तितली ने जब से चूम लिये होंट फूल के
तब से हरेक शाख़ तके झूल झूल के
तन्हा सफ़र की सिर्फ़ यही यादगार है
दामन से झाड़िये नहीं कंकर ये धूल के
ज़िंदा रहे हैं इश्क़ में मर मर के उम्रभर
यानी कि याद करते रहे भूल भूल के
उसने तो हमसे इश्क़ का इज़हार कर दिया
हम तीन हर्फ़ बोल न पाये क़ुबूल के
सौदा किया था दिल का मगर जान ले गया
वो सूद ले गया है मुनाफ़ा वसूल के
रहमत हुई 'ज़िया' पे मगर हाय क्या हुई
राहों में पेड़ आये हमेशा बबूल के

000

है कुछ अजीब सा आज़ार,दिल धड़कता है
हरिक सदा पे हरिक बार, दिल धड़कता है
करे न ज़िक्र भरी बज़्म में कोई उसका
मेरे हबीबो ख़बरदार, दिल धड़कता है
हमारा यार तो रहता है झील के उस पार
सदा जो आती है इस पार, दिल धड़कता है
कोई निगाह लगातार देखती है मुझे
सो यूँ समझिये लगातार, दिल धड़कता है
है आज उससे मुलाक़ात की तमन्ना भी
कि उस पे आज है इतवार, दिल धड़कता है
लिखा था जिस पे मेरा नाम चॉक से तुमने
जो देखता हूँ वो, दीवार दिल धड़कता है
नये ख़याल की आमद से जेहन है रौशन
कि होंगे कुछ नए अशआर, दिल धड़कता है
'ज़िया' के साथ शजर को उदास रहने दे
सो ऐ परिंदे न 'पर' मार, दिल धड़कता है

000

हमारा दर्द ज़रा सख़्त था कि जैसे बर्फ़
ग़मों की आँच से गलने लगा कि जैसे बर्फ़
बला की आग जिगर में छुपाई थी उसने
वो शख़्स शक्ल से जो सर्द था कि जैसे बर्फ़
रखे है हाथ वो कुछ देर हाथ पर हँसकर
मगर फिर ऐसे उसे छोड़ता कि जैसे बर्फ़
तू सर्दियों में किसी झील का सा आबे सर्द,
मैं जमअ झील के ऊपर रहा कि जैसे बर्फ़
हरेक मोड़ पे वो रंग रूप बदले है
अभी है आब कभी संग था कि जैसे बर्फ़
तुम्हारा दर्द था भारी सो दिल में बैठ गया
ये ग़म तो आंख में ही तैरता कि जैसे बर्फ़
'ज़िया' कभी तू चमकता था आइने जैसा
मगर अभी हुआ है खुरदुरा कि जैसे बर्फ़

000

न बैठ चुप तू सुना दर्द, दर्द का क़िस्सा
किसी बहाने उठा दर्द, दर्द का क़िस्सा
मैं दास्तान तलक ही रहूँ तो अच्छा है
न कर दे मुझको मुआ दर्द, दर्द का क़िस्सा
बहार ने लिखी है दास्तान ख़ुशियों की
ख़िज़ाँ की रुत ने लिखा दर्द, दर्द का क़िस्सा
शबे फ़िराक़ उतरने लगी ढलान से जब
जवान होने लगा दर्द, ...दर्द का क़िस्सा
अलाव जिस पे गुजारीं ख़ुशी ख़ुशी रातें
उसी अलाव में था दर्द, दर्द का क़िस्सा
सुना किसी को इसे बाँट ले किसी के साथ
कि बढ़ गया है 'ज़िया' दर्द, दर्द का क़िस्सा

000

सुभाष पाठक 'ज़िया' ग्राम/ पोस्ट- समोहा
तहसील -करेरा ज़िला -शिवपुरी ,
मध्यप्रदेश, पिनकोड 473660
मोबाइल- 8878355676
ईमेल- subhashpathak817@gmail.com.

आख़िरी पन्ना

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

हालाँकि कोरोना ने हमारे जीवन की रफ़्तार को कुछ धीमा किया है, तथा हमें भी समझ में आ गया है कि बढ़ी हुई गति से कुछ भी हासिल नहीं होता अगर दिशा ग़लत हो। मगर फिर भी ऐसा लगता है कि अभी हमारे साहित्यकार इस कड़वे सच को मानने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हैं। साहित्यकार पिछले दस-पन्द्रह साल से बहुत जल्दी में हैं और हड़बड़ी में भी। कभी-कभी तो यह डर भी लगता है कि जल्दी-जल्दी में कहीं ऐसा न हो कि मंज़िल से भी आगे निकल जाएँ। यह जो हड़बड़ी है, यह है स्थापित हो जाने की। साहित्य के इतिहास में अमर हो जाने की। अमरता ही इन सारी परेशानियों का मूल कारण है। ये चाहते हैं कि इनका लिखा हुआ जो कुछ भी है, वह जाना जाए मील के पत्थर के नाम से। मील का वह पत्थर जो इन्होंने ही गाड़ा। कोरोना ने साहित्यकारों की इस हड़बड़ी को और गति प्रदान कर दी है। बाक़ी दुनिया जहाँ कोरोना में थम गई, वहीं साहित्यकार और तेज़ हो गया। तेज़ इसलिए हो गया कि वह जो कुछ कार्य करता था, उसके लिए उसे कहीं आने-जाने की ज़रूरत ही नहीं थी। रचनाएँ लिखो और पत्रिकाओं को भेज दो, साथ में सोशल मीडिया पर भी तुरंत डाल दो। पत्रिकाओं में जब छपेगी तब छपेगी, मगर सोशल मीडिया पर तो तुरंत ही प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होना प्रारंभ हो जाएँगी। अच्छा, और एक बात जानिए कि एक ही रचना को भारत से प्रकाशित होने वाली सारी साहित्यिक पत्रिकाओं को भेज दो। और इस प्रकार भेजो कि संपादक को भी ईमेल खोलते समय एड्रेस बार में ही दिख जाए कि उसके अलावा और किस-किस को भेजी गई है रचना। अब वह पहले वाला सब्र नहीं है कि एक पत्रिका में रचना भेजी, वहाँ से स्वीकृत या अस्वीकृत होने का इंतज़ार करते रहे। वहाँ से वापस आई तो दूसरी पत्रिका में भेजी। नहीं, यह तो पुराने ज़माने की बात है, अब तो एक साथ एक ही मेल में संलग्न कर सबको भेज दो, जिसकी ग़रज़ होगी वह ख़ुद ही छाप लेगा। मतलब यह कि वह जो एक पहले सबर अली होते थे, वह अब लेखकों के अंदर से विदा ले चुके हैं। फिर एक और हड़बड़ी है, वह हड़बड़ी है कि अगर किसी पत्रिका ने आपकी रचना प्रकाशित कर दी, तो आपको रास्ता मिल गया। संपादक ने आपकी रचना प्रकाशित कर जैसे आफ़त ही मोल ले ली है। उसके बाद फिर आपको चैन नहीं। लाख कहता रहे संपादक कि एक अंक में रचना प्रकाशित होने के बाद कुछ समय बाद ही अपनी रचना भेजिए, लेकिन आपको उससे क्या, जैसे ही पत्रिका का अंक सामने आया, आपने तुरंत अगले अंक के लिए रचना भेज दी। और वह भी हर विधा की रचना। कविता, व्यंग्य, कहानी, समीक्षा, ग़ज़ल, लघुकथा, संस्मरण, सब कुछ। आशय यह कि यह नहीं तो वह तो आपका प्रकाशित करनी ही पड़ेगी। यह जो हड़बड़ी है, इसका ख़ामियाज़ा संपादक को और संपादक के मेल बॉक्स को भुगतना पड़ता है। वह मेल बॉक्स इसी प्रकार के संदेशों से भरा रहता है। पता यह चलता है कि एक ही लेखक के क़रीब पन्द्रह-बीस मेल पड़े हैं मेल बॉक्स में। और इस तरह के कई लेखक। कितनी जल्दी है भाई ? समय का चक्र इतना क्रूर होता है कि वह सब कुछ किनारे पर लाकर छोड़ देता है, समुद्र की लहरों की तरह। वह कुछ भी अवांछित को रहने नहीं देता। और जो वांछित है उसे नष्ट भी नहीं होने देता। यदि आपकी रचना सचमुच मील का पत्थर है, तो समय उसका सम्मान करेगा। और फिर इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि आपने अपने जीवन काल में कितना लिखा, फ़र्क़ तो इससे पड़ता है कि कैसा लिखा। गुलेरी की एक कहानी 'उसने कहा था' समय के कई पड़ावों को पार करती हुई चली ही आ रही है। केवल एक कहानी। हालाँकि उनकी और भी कहानियाँ हैं, लेकिन बहुत ज़्यादा भी नहीं हैं। यह तो एक प्रत्यक्ष उदाहरण है सामने, कम से कम इस पर तो भरोसा कीजिए। और अंत में बस यह कि हमें बचपन से कुछ बातें सिखाई गई हैं जैसे 'जल्दी का काम शैतान का काम' या फिर 'धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय' इन्हें याद रखिए। **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

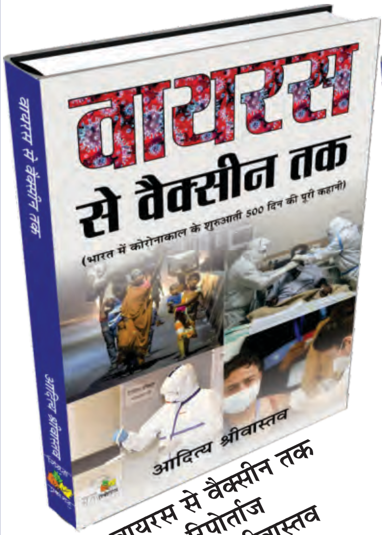

वायरस से वैक्सीन तक
रिपोर्ताज
आदित्य श्रीवास्तव

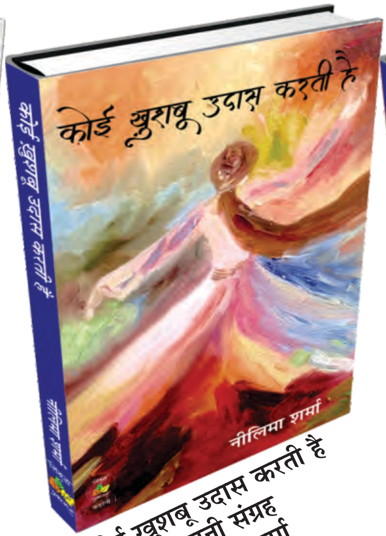

कोई ख़ुशबू उदास करती है
कहानी संग्रह
नीलिमा शर्मा

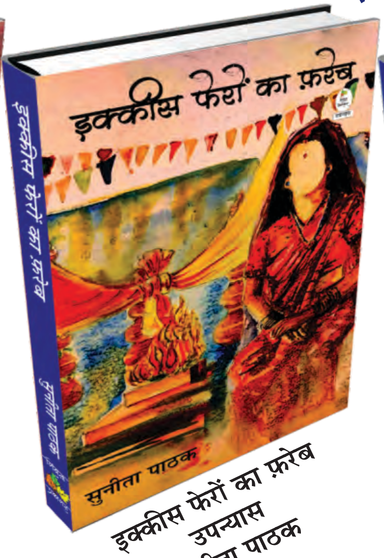

इक्कीस फेरों का फ़रेब
उपन्यास
सुनीता पाठक

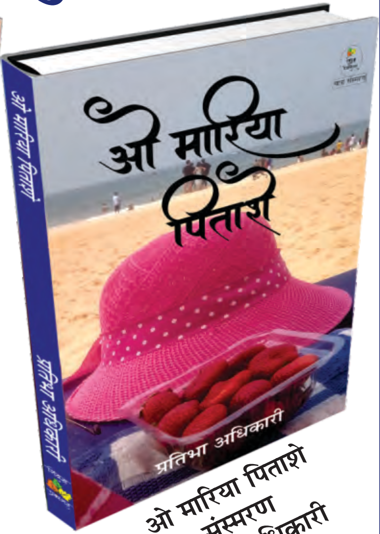

ओ मारिया पिताशे
संस्मरण
प्रतिभा अधिकारी

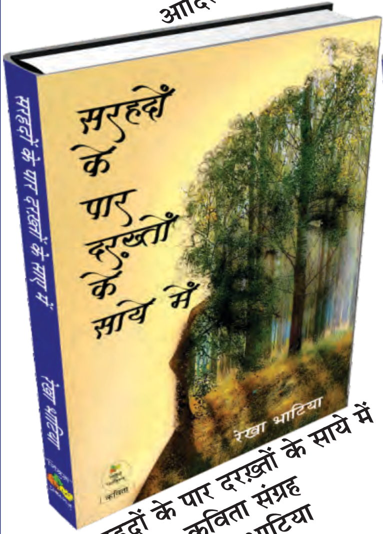

सरहदों के पार दरख़्तों के साये में
कविता संग्रह
रेखा भाटिया

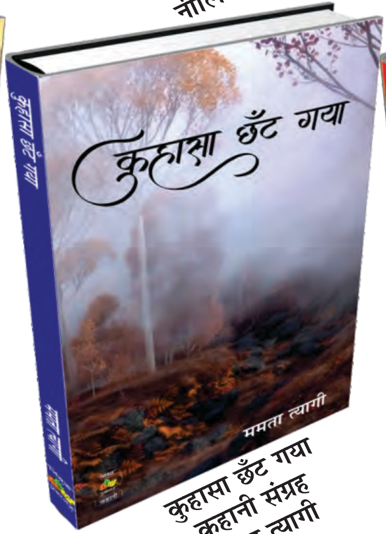

कुहासा छँट गया
कहानी संग्रह
ममता त्यागी

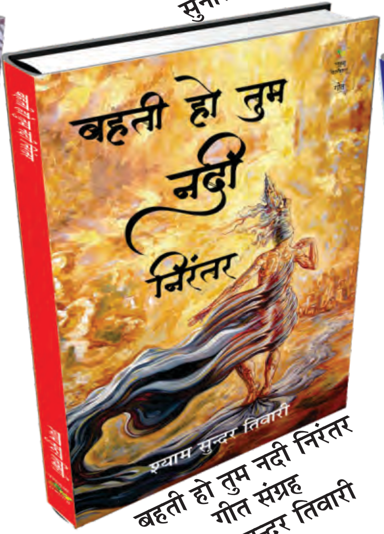

बहती हो तुम नदी निरंतर
गीत संग्रह
श्याम सुन्दर तिवारी

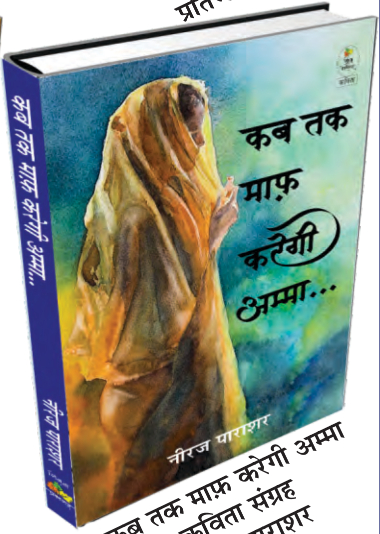

कब तक माफ़ करेगी अम्मा
कविता संग्रह
नीरज पाराशर

अपनी सी रंग दीन्हीं रे
कहानी संग्रह
सपना सिंह

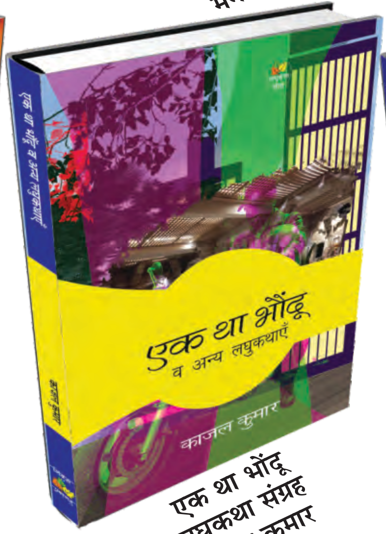

एक था भौंदू
लघुकथा संग्रह
काजल कुमार

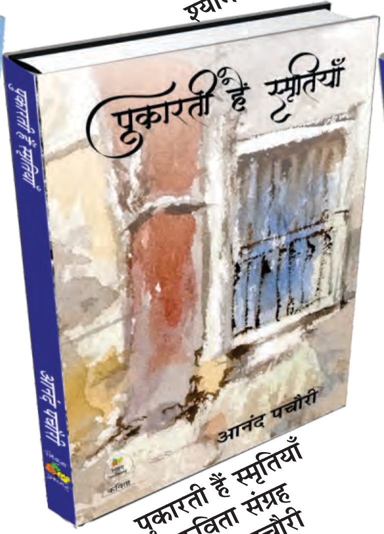

पुकारती हैं स्मृतियाँ
कविता संग्रह
आनंद पचौरी

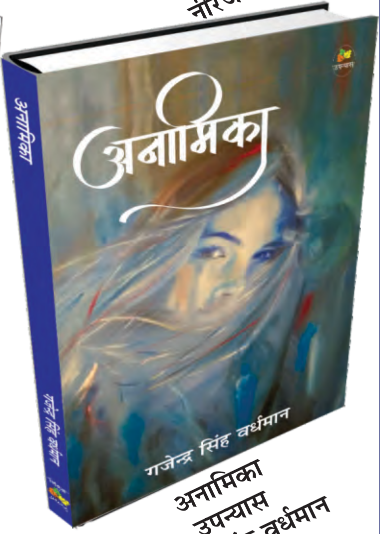

अनामिका
उपन्यास
गजेन्द्र सिंह वर्धमान

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

http://www.amazon.in
http://www.flipkart.com
https://www.paytm.com
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ●July-September 2021● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन का चर्चित उपन्यास

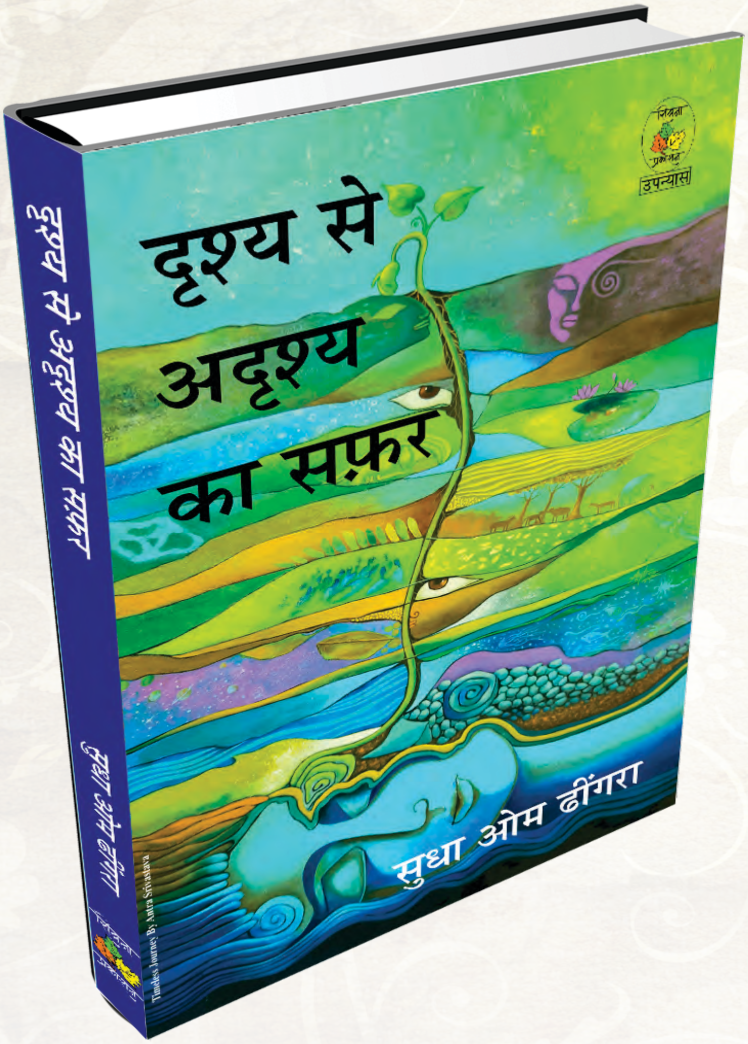

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

सुधा ओम ढींगरा

उपन्यास अच्छा लगा। उस में कई सूचनाएँ दिलचस्प हैं जो दूसरे देश का वह चेहरा हमारे सामने लाती हैं जहाँ रौशनी के बावजूद अँधेरे इलाक़े भी हैं जिसको हम नहीं जानते हैं। आप भी समय निकाल कर ज़रूर पढ़ें।

- नासिरा शर्मा

आश्चर्य है, आप कैसे इस आपदा समय की भयावहता से स्त्री जीवन के अति दारुण, कुत्सित पक्षों को समेटते हुए इतनी मार्मिक और प्रवाही कृति रच पाई! ...मेरे लिये, एक बार प्रारंभ करने के बाद इस पुस्तक को छोड़ पाना कठिन था।

-सूर्यबाला

स्त्री जीवन की घुटन, विद्रोह और खुली हवा में साँस। मनुष्यता और सिस्टरहुड के प्रति गहरे सरोकार, लेकिन कोई नारा नहीं उछालता उपन्यास। नये संसार और अनुभवों से रचा-बसा है यह उपन्यास। मस्ट रीड उपन्यास है यह।

- मनीषा कुलश्रेष्ठ

कथा की तीनों उप मुख्य पात्र की रचना उपन्यास की विशेषता हैं। इन तीनों स्त्री-पात्रों के द्वारा लेखिका ने तीन मनोविज्ञानों को पकड़ा है। स्त्री-जीवन की दशा और दिशा को पकड़ा है जो उपन्यास की जान है।

-लक्ष्मी शर्मा

उपन्यास अपने आप में कुछ कहानियाँ समेटे है। मगर सभी की पीड़ा लगभग समान है। उपन्यास की ये नायिकाएँ बहुत बहादुरी से हर परिस्थिति का सामना करती हैं और वीरांगनाओं की तरह उठ खड़ी होती हैं।

-ओम वर्मा

कोरोना काल की विषम स्थितियों और स्त्री-मन की उथल-पुथल को दर्शाता यह एक नए तरह का उपन्यास है। हर युग के अशांत समय में सकारात्मक ऊर्जाओं ने मानवता को बचाए रखा है। यह उपन्यास उन्हीं ऊर्जाओं को समर्पित है।

-गोविंद सेन

उपन्यास के केंद्र में वैश्विक महामारी कोरोना के साथ तीन स्त्रियों की त्रासद कथाएँ गुँथी हुई हैं। महामारी और नारी उत्पीड़न से उत्पन्न मानव मनोदशा के साथ प्रकृति एवं मानवेतर जीव-जंतुओं के व्यवहार की गहराई इस उपन्यास में पढ़ने को मिलती है।

-हरिराम मीणा

उपन्यास में अमेरिकी जीवन शैली, उसमें भारतीय प्रवासियों का सामंजस्य, उनकी विसंगतियाँ, अमेरिकी राजनीति की कमज़ोरियाँ व करोना योद्धाओं की कार्य क्षमता, भारतीय समुदायों में सेवा भाव, कई अन्य पहलू हैं जो कृति को पठनीय बनाते हैं।

-अमृतलाल मदान

उपन्यास के सभी पात्र अपनी जिजीविषा से मुश्किलात का मुकाबला करते हुए आगे बढ़े। खुद को सँभाला,सहेजा, नई राह पर ज़िंदगी को ले गए। जो सबसे ज़रूरी बात मुझे लगी, वह है मेंटल हेल्थ व कॉउंसलिंग, जो आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है।

-विभा रानी

ऐसा बहुत कम बार हुआ है कि किसी की कहानी आपको किताब बंद न करने दे। आपकी सहज भाषा और यथार्थ से जुड़े पात्र.... बहुत रोचक और डिस्टर्ब करने वाला उपन्यास। वायरस ही नहीं पर हर भाव भी तो अदृश्य ही है।

-चित्रा देसाई

उपन्यास में सभी पक्ष इतनी सहजता से निभाए गए हैं कि कहीं नहीं लगता कि वे बेवजह ठूँसे गए हैं। अक्सर दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान जैसे भारी तत्व किसी कृति को बोझिल बना देते हैं किंतु इस उपन्यास में कहीं भी वह गरिष्ठ नहीं हुए हैं।

-डॉ. गरिमा संजय दुबे

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।